संस्कृत विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला का 126वाँ पुष्प

ऋग्वेदीय शाखा-संहिताओं का समीक्षात्मक अध्ययन

प्रधान सम्पादक
प्रो. मुरली मनोहर पाठक
कुलपति

लेखक
डॉ. अमलधारी सिंह

सम्पादक
प्रो. शिवशङ्कर मिश्र

शोध प्रकाशन विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-16

संस्कृत-विश्वविद्यालय-ग्रन्थमाला का 126वाँ पुष्प

ऋग्वेदीय शाखा-संहिताओं का समीक्षात्मक अध्ययन

प्रधानसम्पादक

प्रो. मुरलीमनोहर पाठक

कुलपति

लेखक

डॉ. अमलधारी सिंह

सम्पादक

प्रो. शिवशङ्कर मिश्र

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय

(केन्द्रीयविश्वविद्यालय)

नई दिल्ली-16

प्रकाशक
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
बी–4, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, शहीद जीत सिंह मार्ग,
कटवारिया सराय, नवदेहली–110016

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

प्रकाशन वर्ष : 2023

ISBN : 978-81-966663-6-1

मूल्य : ₹ 350.00

मुद्रक
डी.वी. प्रिन्टर्स
97–यू.बी., जवाहर नगर, दिल्ली–110007

अक्षयानन्तसुविमलसुकीर्तिमण्डितानां
सम्पूज्यगुरुदेवानां सपर्यायां सश्रद्धं

समर्पणम्

पद्मश्री प्रो. आद्याप्रसाद मिश्र

सत्कीर्तिर्भूषितो लोके विद्यावैभवमण्डितः।
आद्याप्रसादमिश्रो मे गुरुर्जयति भूतले।।
ग्रन्थरत्नमिदं दिव्यं वेदविद्यासमन्वितम्।
भक्तया समर्पये तुभ्यं प्रसादात्ते भवेच्छुभम्।।

अमलधारीसिंह गौतम

अमृता-सृष्टि

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक भारतरत्न
सम्पूज्य महामना मदनमोहन मालवीय जी महाराज

सनातनी संस्कृति-शिक्षा के संरक्षक सम्पोषक अक्षय यशोमूर्ति
भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्रीलालबहादुरशास्त्री जी

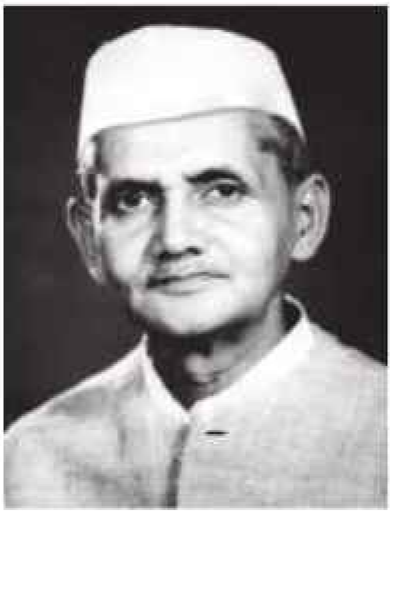

प्ररोचना

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः संस्कृतं च संस्कृतिश्च श्रेयसेऽनुपास्यताम्। संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में प्रमुख है। भाष्यते जनैर्या सा भाषा, पर यह संस्कृत भावप्रकाशन परस्पर लोकव्यवहार की साधनभूता केवल एक भाषा ही नहीं है, अपितु यह विद्या है। मानव जीवन से सम्बद्ध समस्त विद्याएँ=परा-अपरा इसमें सन्निहित हैं। इसीलिए यह देववाणी अमरभारती है। सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय का प्राचीनतम ग्रन्थ सर्वाधिक मूल्यवान् महत्तम ज्ञान-निधि वेद इसी भाषा में विद्यमान है और इसी वेद के कारण भारतीय संस्कृति विश्ववारा वन्दनीया है। तपोनिधि ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत यह विमल ज्ञानराशि सर्वथा अनवद्य प्रामाणिक तथा त्रैकालिक समस्त विषयों की सुप्रकाशिका है।

महनीया इस संस्कृतविद्या के संरक्षणार्थ तथा इसके व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय इस विशिष्ट शिक्षण संस्थान की वर्ष 1965 में स्थापना हुई और अपने प्रयोजनों की संसिद्धि में यह दृढ़रूप से अग्रसर है अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों से अभिमण्डित है। बहुविध कार्यकलापों के अन्तर्गत प्रकाशन योजना प्रमुख है और अब तक 120 से अधिक उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है। इसी के अन्तर्गत विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला के 121वें पुष्परूप में भारत आजादी के अमृतमहोत्सव पर्व पर वेदों की सर्वप्राचीन चार संहिताओं के स्वरूप-प्रकाशक ग्रन्थ 'ऋग्वेदीय शाखा-संहिताओं का समीक्षात्मक अध्ययन' का प्रकाशन करने जा रहा है।

उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय का उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ है। श्रुति-परम्परा में ई०पू० द्वितीय शताब्दी में यह 21 शाखाओं से समृद्ध था। वैदिक विद्वान् प्रो. मैक्समूलर ने इसकी एक

संहिता शाकल का सायणभाष्य सहित 6 भागों में आक्सफोर्ड लन्दन से 1849 से 1873=24 वर्षों में प्रकाशन कराया, अन्य शाखाएँ अनुपलब्ध रहीं और कालकवलित मान ली गईं, पर प्रयाग विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र रहे आचार्य अमलधारी सिंह को वर्ष 1968 में राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में सुरक्षित इसकी दो शाखाओं आश्वलायन तथा शाङ्खायन की लगभग 12000 पृष्ठों की 63 पाण्डुलिपियाँ मिली थीं, जिनकी ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया था। इन्होंने अनेक निबन्धों का प्रकाशन कराया तथा विद्वत्सङ्गोष्ठियों में विद्वानों का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट किया। फलस्वरूप विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के परम यशस्वी निदेशक वेदमनीषी प्रो. ब्रजबिहारी चौबे द्वारा सम्पादित आश्वलायन संहिता का दो भागों में वर्ष 2009 में इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र ने प्रकाशन किया तथा स्वयं आचार्य अमलधारी सिंह द्वारा सम्पादित पदपाठसंवलित शाङ्खायनसंहिता का 4 भागों में वर्ष 2012-13 में महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान ने प्रकाशन किया। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही। वर्ष 1968 से अनवरत चल रहा परिश्रम फलीभूत हो गया।

पुनः आचार्य अमलधारी सिंह जी ने ऋग्वेद की चार संहिताओं 1. शाकल 2. वाष्कल 3. आश्वलायन तथा 4. शाङ्खायन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसी शीर्षक से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने संस्कृत में डी.लिट्. उपाधि से इनको विभूषित किया। इसी प्रबन्ध के परिवर्द्धित रूप को प्रकाशित करने का गौरव इस विश्वविद्यालय को है क्योंकि इन संहिताओं का स्वरूप प्रथमतः विद्वज्जगत् के समक्ष प्रकाश में आ रहा है। इनके गहन अध्ययन के आधार पर आचार्य ने सुस्पष्ट किया है कि-

इन संहिताओं में पाठभेद नहीं है, मन्त्रों की संख्या तथा क्रम में भेद है। मन्त्रों की संख्या शाकल में 10,552, बाष्कल में 10,548, आश्वलायन में 10,761 तथा शाङ्खायन में 10627 है। मुख्य भेदक तत्त्व खिलमन्त्र हैं। पर शाखीय मन्त्रों की संज्ञा 'खिल' है। मन्त्र-भाग के

व्याख्यात्मक ग्रन्थ ब्राह्मण हैं। ऐतरेय ब्राह्मण तथा आरण्यक में अनेक मन्त्र हैं वे मूल मन्त्र-भाग शाकल में नहीं हैं, अतः इन मन्त्रों को खिल मान लिया गया है, पर इन मन्त्रों की मूलरूप में इन संहिताओं में स्थिति है अर्थात् इन संहिताओं में ये खिलमन्त्र नहीं है। यथा सुप्रख्यात एकादश वालखिल्य सूक्तों में से आदिम 7 सूक्त बाष्कल में, दशम को छोड़कर 10 सूक्त आश्वलायन में तथा सभी 11 सूक्त शाङ्खायनसंहिता में विद्यमान हैं। इसी प्रकार 'तच्छंयोरा वृणीमहे अतिरिक्त संज्ञानसूक्त बाष्कल की तथा महानाम्नी ऋचाओं से आश्वलायन तथा शाङ्खायन की परिसमाप्ति होती है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि खिल मान लिए गए सभी मन्त्र भी ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत हैं, अतः सभी मूल हैं, खिल नहीं। इनकी संहिताएँ अब तक उपलब्ध नहीं रहीं। इन मन्त्रों को भी अपना मूल आधार मिल गया तथा ब्राह्मणग्रन्थों में बतलाया गया इनका विनियोग भी सुसंगत हो जाता है।

आचार्य अमलधारी सिंह 85 वर्ष से अधिक आयु में भी युवा अध्येता की तरह अध्ययन कार्य में संलग्न हैं। प्रयाग तथा काशी की वेदाध्ययन की उदात्त परम्परा के समन्वित रूप हैं। विलुप्त शाखाओं की खोज में प्रयत्नशील हैं। मैं इस मङ्गल प्रयोजन की सफलता की कामना करता हूँ। ऋषियों की धरोहर का उद्धार होता रहे और दिव्यभाषा संस्कृत की समृद्धि होती रहे।

प्रो. मुरलीमनोहर पाठक
कुलपति
श्री ला.ब.शा.रा.सं. विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110016

सम्पादकीय

भारत देश आजादी के अमृतमहोत्सव पर्व पर इस विश्वविद्यालय की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत ग्रन्थमाला के 121वें पुष्परूप में विद्वज्जगत् की सेवा में 'ऋग्वेदीय शाखा संहिताओं का समीक्षात्मक अध्ययन' संज्ञक ग्रन्थ समर्पित करते हुए अतिशय आह्लाद की अनुभूति कर रहा हूँ। भारतीय वाङ्मय में ही नहीं, अपितु विश्ववाङ्मय में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद हैं इसकी चार संहिताओं के स्वरूप का प्रथमतः प्रकाशक यह ग्रन्थ आचार्य अमलधारी सिंह द्वारा लिखित है तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 2022 में संस्कृत में डी.लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध का परिवर्द्धित रूप है।

ऋग्वेद की शाकल-बाष्कल-आश्वलायन-शाङ्खायन=चार संहिताओं के स्वरूप को प्रथमतः प्रकाशित करने का वैदिक वाङ्मय के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ने का गौरव इस विश्वविद्यालय को है, क्योंकि प्रो. मैक्समूलर महोदय द्वारा वर्ष 1849 से 1873 तक = 24 वर्षों में 6 भागों में प्रकाशित इसकी केवल एक ही संहिता शाकल का अब तक अध्ययन-अनुशीलन होता चला आ रहा था। अन्य संहिताएँ अनुपलब्ध रहीं और कालकवलित मान ली गई थीं। पर भगवान् वेद की ही इच्छा से आचार्य अमलधारी सिंह को वर्ष 1968 में राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में सुरक्षित इसकी दो शाखाओं=आश्वलायन तथा शाङ्खायन की लगभग 12000 पृष्ठों की 63 पाण्डुलिपियाँ मिली थीं, जिनको इस राज्य के महाराजा सवाई विनय सिंह हैदराबाद तथा अहमदनगर से ले आए थे-

श्रीमन्ममहाराजाधिराजमहारावराजाश्रीसवाईविनयसिंहदेववर्मणा पुस्तक-मदः हैदराबाद आयातम्.... अहमदनगरात्पुस्तकमिदमायातम्।।

ऐसा सभी पाण्डुलिपियों पर उल्लेख है।

महाराजश्री ने बहुमूल्य ऋषियों की इस धरोहर से अपने पुस्तकालय को समृद्ध बनाया, पर किसी विद्वान् का ध्यान इनकी ओर नहीं गया। सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं. भगवद्दत्त जी का लाहौर से अलवर आगमन तो हुआ पर उन्होंने इनका अवलोकन नहीं किया, जबकि वह वैदिक वाङ्मय का इतिहास ग्रन्थ ही लिख रहे थे।

अलवर के राजकीय पुस्तकालय में ऋग्वेद के कुछ कोष हैं, उन्हें शाङ्खायन कहा गया है, हम उन्हें देख नहीं सके।

वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 209, वि.सं. 2013

वस्तुतः भाग्यशाली हैं अमलधारी सिंह, उस समय जोधपुर विश्वविद्यालय की सेवा में संलग्न थे, निमित्त बनाकर वेदभगवान् ने अपना उद्धार कर लिया।

आश्वलायन तथा शाङ्खायन इनकी पाण्डुलिपियाँ अष्टकक्रम में आठ भागों में संहिता तथा पदपाठ की पृथक्-पृथक् व्यवस्थित थीं। आश्वलायन की (20+18) = 38 तथा शाङ्खायन की (8+17)=25 संहिता तथा पदपाठ दोनों को एक साथ व्यवस्थित करना, पुनः प्रकाशित शाकलसंहिता से इनकी तुलना करना, इनके वैशिष्ट्य का प्रकाशन, मन्त्रों की वर्णानुक्रमणी तैयार करना इत्यादि श्रमसाध्य समयसाध्य कार्यों को आचार्य अमलधारी सिंह ने एक विद्यार्थी की तरह सम्पन्न किया, अनेक निबन्धों का प्रकाशन कराया, विद्वत्सङ्गोष्ठियों में विद्वानों का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट किया, फलस्वरूप विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर के निदेशक वेद मनीषी डॉ. ब्रजबिहारी चौबे जी द्वारा सम्पादित पदपाठसंहिता आश्वलायनसंहिता का दो भागों में वर्ष 2009 में इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र ने प्रकाशन किया और स्वयं इनके द्वारा सम्पादित पदपाठ संवलित शाङ्खायनसंहिता का चार भागों में महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान ने अपने रजतजयन्ती वर्ष 2012-13 में प्रकाशित किया। इस तरह ऋग्वेद की दो संहिताओं का उद्धार हो गया और आचार्य अमलधारी सिंह का वर्ष 1968 से चला आ रहा परिश्रम

फलीभूत हो गया। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में यह महत्तम उपलब्धि है।

पुनः आचार्य अमलधारी सिंह ने ऋग्वेद की चार संहिताओं 1. शाकल 2. बाष्कल 3. आश्वलायन तथा 4. शाङ्खायन का तुलनात्मक अध्ययन विषयक शोध प्रबन्ध पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने इनको संस्कृत में डी.लिट्. उपाधि प्रदान की है।

इस अध्ययन का फल इस प्रकार है–

1. इन संहिताओं में कोई पाठभेद नहीं है, मन्त्रों की संख्या तथा क्रम में भेद है मन्त्र संख्या क्रमशः 10552, 10548, 10761, 10627 है।

2. मुख्य भेद खिलमन्त्रों का है। पर शाखीय मन्त्रों को खिल कहा जाता है जो अपनी संहिता में विद्यमान नहीं होते। मन्त्रभाग की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थ करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में यज्ञीय विधानों में विनियुक्त अनेक मन्त्र हैं जो शाकल संहिता में नहीं है, अतः इनको खिलमन्त्र माना गया है। पर ये सभी मन्त्र इन संहिताओं में मिलते हैं। यथा तच्छंयोरा वृणीमहे–पञ्चदशमन्त्रात्मक अतिरिक्त संज्ञान सूक्त से बाष्कल संहिता की तथा महानाम्नीऋचाओं से आश्वलायन तथा शाङ्खायन की परिसमाप्ति होती है। सुप्रसिद्ध एकादश वालखिल्य सूक्त हैं, जो वज्रवत् अत्यधिक शक्तिसम्पन्न हैं, इनके प्रयोग से देवों ने बल नामक असुर द्वारा अपहृत निरुद्ध गायों को मुक्त कराया था। इन एकादश सूक्तों में प्रथम 7 की बाष्कल में, दशम को छोड़कर 10 सूक्तों की आश्वलायन में तथा सभी 11 सूक्तों की शाङ्खायन में मूलरूप में स्थिति है। इस अध्ययन से यह सुस्पष्ट होता है कि ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत सभी मन्त्रों का मूलस्वरूपत्व है खिलरूपत्व नहीं। संहिता उपलब्ध न होने से इनको खिल मान लिया गया था। इसी प्रकार खिल माने गए श्रीसूक्त, रात्रिसूक्त मेधाजननसूक्त पवमानीसूक्त, 28 मन्त्रात्मक शिवसंकल्प सूक्तों की स्थिति आश्वलायन संहिता में अर्थात् ये सभी सूक्त खिल न होकर मूल हैं।

इस प्रकार इन चार संहिताओं का यह तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इनके स्वरूप को प्रथमतः प्रकाश में ले आने का

गौरव इस विश्वविद्यालय को है आचार्य अमलधारी सिंह का यह प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है आप वेदों की विलुप्त संहिताओं की खोज में सतत् प्रयत्नशील हैं। सफल होवें, ऋषियों की धरोहर का उद्धार तथा प्रकाशन होता रहे, क्योंकि वेद ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत प्रतिष्ठा है इन्हीं के कारण हमारी संस्कृति विश्ववन्दनीया है-

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। शुक्ल.यजु. 1.14

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ मनः 2.20

जयतु संस्कृतम्।

प्रो. शिवशङ्करमिश्र
शोधविभागाध्यक्ष
श्री ला.ब.शा.रा.सं. विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110016

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय BANARAS HINDU UNIVERSITY

प्रो०विजय कुमार शुक्ल
कुलगुरु
Prof. Vijay Kumar Shukla
Rector

Telephone: 0542-2368938
Fax: 0542-2369100
Email: rector@bhu.ac.in
Website: www.bhu.ac.in

05th September 2023

Message

Vedas are the earliest and richest treatise of the entire world. These are realized lore by the seers, so are fully authentic, self-evident, repositories of all kinds of learning. Due to *oral* tradition these Vedas assumed innumerable forms. In these the Rigveda was embellished with 21 branches during 2nd century B. C. Prof Max Muller published its one branch शाकलसंहिता in 6 volumes from 1849 to 73 from Oxford, London under the patronage of Queen Victoria, other branches remained untraceable.

A. D. Singh, a student of this university was very fortunate in procuring 63 MSS comprising of nearly 12000pp in 1968 preserved at Alwar Palace library(Rajasthan) of its 2 branches = आश्वलायन and शांखायन.

He edited शांखायन which was published by महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन in 4 volumes in 2012-13. Again he presented a critical and comparative study of 4 branches of this Rigveda and BHU has admitted his thesis for the award of D.Litt degree in Sanskrit.

Now it is matter of great pleasure that श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय is publishing this thesis and this will be the most commendable significant contribution to the history of Vedic Literature after Prof. Max Mullar, as for the first time the nature and contents of four branches have been presented here.

(V.K. Shukla)

महर्षि-सान्दीपनि-राष्ट्रिय-वेदविद्या-प्रतिष्ठान उज्जैन
(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय भारत सरकार के अधीन)
MaharshiSandipaniRashtriyaVeda VidyaPratishthan
(An authonomous Organisation under the Ministry of HRD Govt of India)

आमुख

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, सर्वज्ञानमयो हि सः।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति।।

मनु. 2.6; 7; 12.97

वेद तपोनिधि ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत समस्त विद्याओं के पूर्ण अनुपम निधान हैं, विश्ववारा भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा हैं। सम्पूर्ण मानव जीवन इन वेदों से ओतप्रोत परिव्याप्त है, कुछ भी वेदबाह्य नहीं है। त्रैकालिक समस्त विषयों के प्रकाशक अप्रतिहत सनातन चक्षु हैं। इसीलिए वेदाध्ययन तथा इनके अर्थबोध हेतु विधान किया गया है—

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च

–व्याकरण महाभाष्य

वेदो रक्षति रक्षितः—वेदरक्षा का अभिप्राय है संस्कृति की रक्षा, राष्ट्र की रक्षा और इस प्रकार स्वयं अपनी रक्षा। ऋषियों की इस बहुमूल्य अनुपम धरोहर निधि के रक्षणार्थ तथा इनमें निहित विद्याओं के व्यापक प्रचार प्रसार हेतु इस वेदविद्या प्रतिष्ठान की वर्ष 1987 में स्थापना हुई और यह प्रतिष्ठान विविध योजनाओं के माध्यम से इन प्रयोजनों की संसिद्धि में पूरी तरह संलग्न है। इन योजनाओं में प्रकाशनयोजना प्रमुख है और अब तक 60 से अधिक उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है। आचार्य अमलधारी सिंह एक समर्पित वेदाध्यायी है, वर्ष 2004 से इस प्रतिष्ठान परिवार से सम्बद्ध हैं। इनके द्वारा सम्पादित शाङ्खायनशाखीयो रुद्रपाठसंग्रहः तथा पदपाठसंवलिता शाङ्खायनशाखीया ऋग्वेदसंहिता को प्रकाशित करने का गौरव इस प्रतिष्ठान को ही है। इस संहिता की पाण्डुलिपि अब तक उपलब्ध पाण्डुलिपियों में सर्वप्राचीन विक्रम संवत् 1659 की है, जबकि प्रो. मैक्समूलर द्वारा प्रयुक्त शाकल की वि.सं. 1771 की है। इस वेद की आश्वलायन तथा शाङ्खायन दो संहिताओं का वर्ष 1968 में उद्धार करने का श्रेय इन्हीं आचार्य को है। पुनः इन्होंने इसकी चार संहिताओं 1. शाकल 2. बाष्कल 3. आश्वलायन तथा 4. शाङ्खायन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। वेदाध्ययन के इतिहास में यह

प्रथम है। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय इस अध्ययन को ग्रन्थ रूप में प्रकाशित कर रहा है। यह एक नया इतिहास बनने जा रहा है। ऋग्वेद की चार संहिताओं के स्वरूप का प्रथमतः प्रकाशन हो रहा है। इनमें पाठभेद नहीं है, मन्त्रों की संख्या तथा क्रम में भेद है। शाकल में 10552, बाष्कल में 10548 आश्वलायन में 10761 तथा शाङ्खायन में 10627 मन्त्र है। शाकलसंहिता की दृष्टि से खिलमन्त्रों का मूल इन संहिताओं में विद्यमान है तथा सुप्रख्यात एकादश वालखिल्यसूक्तों में से 7 को बाष्कल, 10 को आश्वलायन तथा सभी 11 सूक्तों की शाङ्खायन में मूलरूप में स्थिति है। तच्छंयोरा वृणीमहे अतिरिक्त संज्ञानसूक्त से बाष्कल की तथा महानाम्नी ऋचाओं से आश्वलायन तथा शाङ्खायन की समाप्ति होती है। इस अध्ययन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि ऋषियों द्वारा दृष्ट सभी मन्त्रों का मूलस्वरूप है, खिलरूपत्व नहीं, खिल माने गए इन मन्त्रों की संहिताएँ अब तक उपलब्ध नहीं थी। इन मन्त्रों को अपना मूल आधार मिल गया है। आचार्य अमलधारी सिंह विलुप्त संहिताओं की खोज में तत्पर प्रयत्नशील है। मैं सफलता की कामना करता हूँ। भारतीय संस्कृति की महत्तम निधि का उद्धार प्रकाशन होता रहे।

प्रो. विरूपाक्ष वी. जड्डीपाल

राष्ट्रपति-सम्मानित,महामहोपाध्याय
प्रो॰अभिराज राजेन्द्रमिश्र
पूर्वकुलपति,पद्मश्री
मो॰ - 9418041537

Mahamahopadhyaya
Prof. Abhiraj Rajendra Mishra
Ex Vice Chancellor, PADMASHRI
Date-

नान्दीवाक्

स्वर्गीय पं. बालगंगाधर तिलक के **वसन्तसम्पात-सिद्धान्त** से पूर्व वेदों के कालनिर्धारण में विद्वानों ने प्रभूत स्वैराचार के साथ यत्न किये। वस्तुतः ठोस प्रमाण किसी के पास नहीं था। सबके सब **अत्यात्मविश्वास** तथा भ्रमात्मक ज्ञान से प्रेरित थे। परन्तु तिलक एवं हरमन जैकोबी ने ज्योतिश्शास्त्र के प्रमाणों से वैदिक-संकेतो का मूल्यांकन एवं समय-निर्धारण कर निश्चय ही, अन्यान्य मतों की तुलना में अपनी विश्वसनीयता एवं स्वीकरणीयता सिद्ध की। मैत्रायणी-संहिता में सूर्य की पुनर्वसु-संक्रान्ति की प्रामाणिक ज्योतिश्शास्त्रीय व्याख्या कर तिलक ने पहली बार संसार को बताया कि यह समय ई.पू. 6500 का है। चूँकि पुनर्वसु नक्षत्र का देवता **अदिति** है अतः तिलक ने इसे **अदितियुग** बताया और कहा कि **अदितियुग ही विश्वसाहित्य का प्राचीनतम ज्ञात युग है। यह युग भारतवर्ष में था।**

सब जानते हैं कि महाभाष्यकार पतञ्जलि के युग में—**ग्रामे-ग्रामे काठकं कापिष्ठलं च प्रोच्यते** (महा.) गाँव-गाँव में कठ-कपिष्ठल वेदशाखाओं का पाठ होता था। महाभाष्य के प्रमाणानुसार उस समय वेदों की 1131 शाखायें उपलब्ध तथा प्रोक्त थीं। परन्तु नृशंस इस्लामी आक्रमणों के ग्रन्थागार-दाह में विश्व की अमूल्य निधि नष्ट हो गई। सौभाग्य है कि **राष्ट्र की विशालता तथा वेदरक्षण की कण्ठस्थीकरण प्रक्रिया** (विकृतियाँ) के कारण थोड़ा बहुत बच गया जो आज विश्वविद्वज्जगत् को विस्मित कर रहा है। वेदमंत्रों का प्रतिपाद्य, भाषा तथा उनकी प्राविधिक पहचान को पढ़कर हम विस्मित हो उठते हैं। सहसा विश्वास नहीं होता कि ऐसा **परिष्कृत सारस्वत-युग** भी इसी भारत में कभी रहा होगा।

वेदों में, ऋग्वेद सर्वप्रधान है। यह मूलतः देवस्तुतियों का संकलन है। श्रीमद्भागवत (प्रथमस्कन्ध) के प्रमाणानुसार भगवान् कृष्णद्वैपायन ने लोकहिताय अपने **पाँच शिष्यों** को वेद एवं पुराणेतिहास (पंचमवेद) की शिक्षा दी। पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को साम, सुमन्तु को अथर्ववेद तथा लोमहर्षण को पुराणेतिहास पढ़ाया उन्होंने। कालान्तर में महर्षि पैल के पाँच शिष्यों ने ऋग्वेद की पाँच शाखाओं का विस्तार किया—

अपने-अपने क्षेत्रों (जनपदों) में। ये शिष्य थे— शाकल्य, आश्वलायन, शाङ्खायन, माण्डूकाचन तथा वाष्कल।

इनमें मात्र शाकल शाखा ही अभी तक प्रकाशित थी पाश्चात्य वेदर्षि प्रो. मैक्समूलर के सारस्वतोद्योग से! लोग मान बैठे थे कि अन्य शाखायें, यथाकथञ्चित् सदा-सदा के लिये, लुप्त हो चुकी हैं। परन्तु हमारी पीढ़ी के **सर्वाधिक युवा वृद्धमित्र** तथा **यावज्जीवमधीते विप्रः** के सविग्रह निदर्शन प्रो. अमलधारी सिंह जी ने महाराजा अलवर के ग्रन्थागार में आश्वलायन तथा शाङ्खायन शाखाओं को भी प्राप्त कर लिया तथा स्वयं को पुरोडाशवत् अर्पित कर दिया शाङ्खायनशाखा के **प्रकाशन-मख** में। **एतदर्थं न केवल भारत प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व का विदग्ध-सम्प्रदाय उनका अधमर्ण है।**

ऋग्वेदीय शाखा-संहिताओं का समीक्षात्मक अध्ययन—प्रो. अमलधारी सिंह की उसी उद्‌गीथयात्रा का मानकविवरण है। यह ग्रंथ प्रकाशनोन्मुख है।

महर्षि शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य में सविस्तर बताया है कि एक ही वेद की विभिन्न शाखा होने का कारण क्या था? उन्होंने चार प्रमुख कारण बताये हैं—1. सूक्तों अथवा मंत्रों की आनुपूर्वी (Sequence) में अन्तर, परिवर्तन, 2. बालखिल्य, कुन्ताप, महानाम्नी, द्विपदा-चतुष्पदा ऋचाओं का आदान अथवा परिहार 3. सूक्त के विनियोग में परिवर्तन (जो सूक्त एक शाखा में '**राजन्यस्य वधाय**' में विनियुक्त है वही अन्य में 'भ्रातृव्यस्य वधाय' में। 4. पदविशेष के उच्चारण में अन्तर। उदा. 'सरट्ह' पद विभिन्न शाखाओं में भिन्न रूपों में (सरट्ड् ह / सरट्ड्ड् ह) प्रस्तुत है।

प्रो. सिंह के ग्रन्थ से निश्चय ही शाङ्खायन-शाखा के वैशिष्ट्यों का बोध होगा। उनकी श्रुतिमहती सरस्वती महीयसी हो, यही हमारी शुभाशंसा है। वह स्वभावतः **विश्व-मित्र** हैं, परन्तु अपनी वेदचर्या से वह हमारे युग के **विश्वामित्र** भी हैं। सप्रेम !

शिमला **अभिराज राजेन्द्र मिश्र 'पद्मश्री'**

22.08.2023

अभिनन्दन = अनन्त अभिनन्दन

प्रो. ओम् प्रकाश पाण्डेय

वेदों की अध्ययन-परम्परा अनादि काल से मौखिक ही रही है। 'लिखित-पाठक' के प्रति विशेष सम्मान की भावना कभी नहीं रही। प्रारम्भ में सम्भवतः ऋचा, यजुष् और साम सभी को सम्मिलित करके एक ही वेद माना जाता है। द्वापर में महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने उसे पृथक्-पृथक् कर दिया, जैसा कि श्रीमद्भागवत (12.6.48-53) में उल्लिखित है—

ऋग्अथर्वयजुस्साम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः।
चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव॥50॥

पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु संज्ञक अपने शिष्यों में से प्रत्येक को उन्होंने एक-एक संहिता के प्रचार-प्रसार का दायित्व सौंप दिया।

भारत जैसे विशाल देश में हिमालय की समस्त शाखा-प्रशाखाओं सहित कभी तिब्बत, नेपाल, सम्पूर्ण बंगाल और स्वातन्त्र्योत्तर हुए विभाजन से बने पाकिस्तान प्रभृति सभी भाग सम्मिलित थे। प्रत्येक वेद की कई-कई शाखाएँ भी स्वभावतः हो गई। शाखाओं की अनेकता होते हुए भी सभी शाखाओं की मूल मन्त्र-संहिता एक ही रही। शाखाओं का विस्तृत विवरण भागवत के अतिरिक्त 'चरणव्यूह' प्रभृति परवर्ती ग्रन्थों में भी है। तात्पर्य यह है कि 'शाखा' और 'संहिता' शब्द समानार्थक नहीं है। जैसे वटवृक्ष की शाखाएँ फैलती है, वैसे ही सर्वत्र एक ही संहिता का उस एक वेद के रूप में अध्ययन-अध्यापन होता रहा। उसे पं. सत्यव्रत सामश्रमी ने अपने '**त्रयी-परिचय**' संज्ञक ग्रन्थ (पृष्ठ 42-43) में बहुत अच्छे ढंग से स्पष्ट कर दिया है—

वेदशाखाभेदो न मन्वाद्यध्यायतुल्यः प्रत्युत भिन्नकाललिखितानां भिन्नदेशीयानामपि बहुतरादर्शपुस्तकानां यथा भवत्येव पाठादिभेदः प्रायस्तथैव। वेदानामनुश्रवत्वं बहुप्राचीनत्वं शाखाप्रवर्त्तकानां प्रवचने किञ्चित् स्वातन्त्र्यं चेह बीजानि (पृ. 42-43)।

वेदपाठियों की स्मृति की भी अपनी सीमा थी। उसके कारण वेद-विस्तार के क्रम में, संहिताओं में कुछ मन्त्रों का न्यूनाधिक्य और कुछ का क्रम-विपर्यय भी हुआ, जो

अस्वाभाविक नहीं था। क्षेत्रीय दृष्टियों से कुछ भिन्नताएँ आयीं। इसी स्तर पर एक ही संहिता की अनेक शाखाओं का भी प्रचलन हुआ। गुरुओं की भिन्नता से भी शाखा-भेद हुआ। आश्वलायन, शाङ्खायन इत्यादि नामकरण इसी प्रकार के हैं।। ऋग्वेद की शाकल और बाष्कल के साथ माण्डूकायनी जैसी तीन शाखाएँ धीरे-धीरे 21 शाखाओं में परिणत हो गईं, जैसा कि चरणव्यूह में उल्लेख है— एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। ऋग्वेद का एक नाम बहुवृच भी है। विभिन्न शाखाओं के नामों के आधार पर वेदपाठियों की क्षेत्रीय अस्मिताएँ भी उभरीं। लिपिबद्धता का क्रम प्रारम्भ हुआ। जिस ऋग्वेद संहिता का किसी शाखा के आधार पर आश्वलायनशाखीय ऋग्वेद संहिता या 'शाङ्खायन शाखीय ऋग्वेदसंहिता' शीर्षक देना था, उसे प्रतिलिपिकारों ने प्रमाद अथवा प्रयत्नलाघव की प्रवृत्ति का अनुगमन करते हुए मात्र आश्वलायन संहिता या शाङ्खायन संहिता जैसे शीर्षक का नाम दे दिए। वेदपाठी तो इससे अधिक भ्रमित नहीं हुए, लेकिन मूलसंहिता का यथार्थ वेदपरक नाम इससे पटान्ततरित हो गया, 'ऋग्वेद' नाम गौण हो गया और 'आश्वलायन' तथा शाङ्खायन जैसे नाम प्रमुख हो गए।

राजस्थान के विभिन्न प्राचीन पुस्तकालयों में जब वैदिक ग्रन्थों की खोज हुई तो इसी शाखीय नामों से भी वैदिक पाण्डुलिपियाँ या हस्तलेख मिले। इनके संरक्षण और प्रकाशन के गम्भीर प्रयत्न भी प्रारम्भ हुए।

वैदिक हस्तलेखों के इस अनुसंधान में राजस्थान के 'प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' के पूर्व निदेशक स्व. डॉ. फतहसिंह सदृश महान् वेदानुरागियों का विशेष योगदान रहा। उन्होंने अपने प्रमुख शिष्यों तथा भक्तों को इनके उद्धार का दायित्व सौंपा। उनमें से **आश्वलायनशाखीया ऋग्वेदसंहिता** का सम्पादन किया होशियारपुर (पंजाब) के वेद मनीषी प्रो. ब्रज बिहारी चौबे जी ने जिसे इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली ने प्रकाशित किया। **शाङ्खायनशाखीया ऋग्वेद संहिता** के सम्पादन प्रकाशन का भार संभाला प्रो. (डॉ.) अमलधारी सिंह जी ने। डॉ. सिंह उस समय जोधपुर यूनिवर्सिटी में प्राध्यापक थे, अतः इस शाखा की पाण्डुलिपियों की उन्हें सप्रयत्न उपलब्धि भी हो गई। डॉ0 सिंह बहुत परिश्रमी और अध्यवसायी आचार्य रहे हैं। शाखायनशाखीया ऋग्वेद संहिता का सम्पादन उनके सम्पूर्ण जीवन का ध्येय (मिशन) ही बन गया। हम दोनों जब उज्जैन के महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान में सहयोगी थे, तो उन्हें मुझे देखने-समझने का निकट से अवसर मिला। वहाँ से बार-बार राजस्थान (विशेष रूप से जोधपुर) की यात्राएँ करते रहते थे। अब मुझे उनकी इन सारस्वत यात्राओं में निहित यात्राओं का विशिष्ट उद्देश्य समझ में आ रहा है। अन्ततः वे अपनी इस महीयसी सारस्वत साधना में सफल हुए। शाङ्खायनशाखीया ऋग्वेदसंहिता उनके अनन्त परिश्रम और अध्यवसाय से म.सा. राष्ट्रिय

वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन से प्रकाशित हो गई। उनके जीवन के अनेक दशकों के इस महत् तपस् का आकलन करके काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने उन्हें डी. लिट् की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित भी कर दिया है। अनुभव और उम्र में छोटा होने के कारण मैं उन्हें बधाई देने की धृष्टता तो नहीं कर सकता, लेकिन सम्पूर्ण निष्ठा से उनका अभिनन्दन करने का अधिकार तो मेरा है ही। उसका लाभ उठाते हुए मैं उनका बार-बार अभिनन्दन और वन्दन कर रहा हूँ। वे यशस्वी ओर दीर्घायु हों। उनका यह जीवन भर का तपस् समस्त वेदपाठियों और वेदमीमांसकों की निष्ठा को आलोक-मण्डित करे, यह कामना भी कर रहा हूँ—

ब्रह्म सत्यं च पातु माम्

दिनांक : 11.08.2023

(प्रो.) ओम् प्रकाश पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
एवं
पूर्व सचिव
महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान
उज्जैन

प्रो० देवीप्रसादत्रिपाठी
अध्यक्षः
वास्तुशास्त्रविभागः
कुलपतिचरः
उपाध्यक्षचरः

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः
(केन्द्रियविश्वविद्यालयः)
बी-4, कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदिल्ली- 110016
उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्, उत्तराखण्डः
महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानम्, उज्जैनः, म.प्र.

पुरोवाक्

विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं जो संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं। अतः वेदों की भाषा ही प्राचीनतम भाषा है। वेद भारतीय धरा पर विकसित ज्ञान विज्ञान के उत्स के रूप में सर्वसम्मति से स्वीकार किये जाते हैं। इसी से भारतीय ज्ञान परम्परा अक्षुण्ण है। भारतीय धरा पर पल्लवित एवं पुष्पित सभी दार्शनिक विचारधारायें वेद से ही परिभाषित होती हैं। भारतीय चिन्तन मनीषा के अनुरूप वेद ही समस्त शास्त्रों के आधार एवं मार्गदर्शक हैं। इस भौतिक-अभौतिक जगत् का कोई भी बिन्दु ऐसा नहीं है जिसे वेद से न जाना जा सके। **यथा— भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति।** *(मनुस्मृति। 2/97)* वेद का ज्ञान मात्र आध्यात्मिक हो ऐसा नहीं है, अपितु आधिभौतिक, आधिदैविक एवं अध्यात्मिक सभी कुछ वेद में निहित है। वेद वह ज्ञान राशि है जो विद्या-अविद्या दोनों का प्रतिनिधित्व करती है। वेद में कहा गया है कि जो तत् अर्थात् परब्रह्म परमेश्वर को इस रूप में जानता है कि वह विद्या-अविद्या एक साथ दोनों ही है। इस संसार को पार करने के लिए अविद्या और अमरत्व के लिए विद्या की आवश्यकता होती है। यथा—

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। *(शुक्लयजुर्वेद 40/14)*

भारतीय संस्कृति इसी संस्कृत में निबद्ध वैदिक वाङ्मय के कारण ही विश्ववन्दनीया है। शुक्लयजुर्वेद में कहा गया है कि

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। *(शुक्लयजुर्वेद 07/14)*

ऋग्वेद को चारों वेदों में प्रथम स्थान प्राप्त है। वैदिक विद्वानों में ऋग्वेदी को ही सर्वप्रथम सम्मान दिया जाता है। ऋग्वेद को विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है। पुरुषसूक्त में स्पष्ट कहा गया है कि परब्रह्म परमेश्वर ने ऋग्वेद को ही सर्वप्रथम ग्रहण किया। यथा—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। *(ऋ.सं. 10/90/09)*।

ब्राह्मण ग्रन्थ भी अपने अभीष्ट अर्थ के सम्पादनार्थ ''**तदेतद् ऋचा अभ्युक्तम्**''

ऐसा वाक्य प्रकाशित करते हैं। चतुर्वेद गणना अथवा अध्ययन में भी ऋग्वेद का प्राथम्य स्पष्ट प्रतीत होता है। यथा—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम् *(छा.उ. 7/1/2)*।

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः। *(मु.उ. 1/1/5)*।

ऋक् का अभिप्राय छन्दोबद्ध रचना है। ऋक् शब्द की अधोलिखित व्याख्यायें द्रष्टव्य हैं। यथा—

ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया इति ऋक्, अर्थात् जिससे देवताओं की स्तुति हो उसे ऋक् कहते हैं। पादेनार्थेन चोपेता वृत्तबद्धा मन्त्रा ऋचः, अर्थात् चरण एवं अर्थ से युक्त वृत्तबद्ध मन्त्र को ऋक् कहते हैं। जिन मंत्रों में अर्थ पूर्ण रहते हैं और अर्थवशेन पाद में निश्चित अक्षर रहते हैं। इस प्रकार की पादव्यवस्था ऋक् है। यथा—

तेषामृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। *(जै.न्या.भा. 2/1/31/10)*।

विष्णुमित्र ने भी यही कहा है कि पाद, अर्थ से युक्त छन्दोबद्ध मंत्र ऋक् है। यथा—

यः कश्चित्पादवान्मन्त्रो युक्तश्चाक्षरसम्पदा।
स्वरयुक्तोऽवसाने च तामृचं परिजानते॥

(वैदिक साहित्य का इतिहास पृष्ठ 53)।

ऋषियों को विशिष्ट प्रवचन पर तत्तद् ऋषियों के नाम पर अनेक शाखाएँ उत्पन्न हुई। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार वेद की कुल 1131 शाखाएँ हैं, जिनमे से ऋग्वेद की 21 शाखाएँ हैं। उनमें से ऋग्वेद की आश्वलायनी, शाङ्खायनी, शाकला, बाष्कला... माण्डूकायना नाम की पाँच शाखायें प्रसिद्ध हैं। यथा—

आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति।

(चरणव्यूह 1/8)।

सम्प्रति ऋग्वेद की संहिता के नाम पर शाकल संहिता ही प्रचलन में हैं। महर्षि शौनक कृत अनुवाकानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद की शाकलसंहिता या शाकलशाखा का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया गया है। यथा—

अध्यायानां चतुःषष्टिर्मण्डलानि दशैव तु।
वर्गाणां च सहस्त्रद्वे सङ्ख्याते च षड्डुत्तरे॥
सहस्त्रमेतत्सूक्तानां निश्चितं खैलिकैर्विना।
दश सप्त च पठ्यन्ते संख्यातं वै पदक्रमम्॥

(अनुवाकानुक्रमणी 32/33)।

ऋग्वेद में अर्थात् शाकल संहिता में 1017 सूक्त, 2006 वर्ग, 64 अध्याय, 10 मण्डल, 8 अष्टक, 85 अनुवाक तथा 10472 मन्त्र हैं। ऋग्वेद की शाकल संहिता में 64 अध्याय हैं जो आठ अष्टकों में विभाजित है। प्रत्येक अध्याय के अवान्तर विभाग को वर्ग कहते हैं। एक वर्ग में साधारणत: 05 ऋक् होते हैं। कुछ वर्गों में एक से नौ ऋक् भी पाये जाते हैं। ऋक्संहिता में कुल वर्ग संख्या 2006 है। अध्यायों के सौकर्य हेतु वर्ग रचना की गई है। शाकलशाखा के पाँच प्रकार थे—1. मुद्‌गल शाखा, 2. गोखल्यशाखा, 3. शालीयशाखा, 4. वात्स्यशाखा, 5. शौशिरिशाखा। इन पाँच शाकल शाखाओं की शाकल्य, शाकलक, शाकलेयक नाम की संहिताएँ थीं। भर्तृहरि भी ऋग्वेद की पन्द्रह शाखाओं का उल्लेख करते हैं।

बाष्कलसंहिता सम्प्रति प्राप्त नहीं है तथाऽपि विभिन्न विकीर्ण सन्दर्भो के आधार पर व महर्षि शौनक कृत अनुवाकानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद की बाष्कल शाखा में शाकलशाखा से 8 सूक्त, 17 वर्ग व 76 मन्त्र अधिक हैं। इस प्रकार इस शाखा में 10 मण्डल, 1025 सूक्त, 64 अध्याय, 2023 वर्ग व 10548 मन्त्र हैं। इस शाखा के भी चार प्रकार हैं। यथा—1. बोध्यशाखा, 2. अग्निमाठरशाखा, 3. पराशरशाखा, 4. जातुकर्ण्यशाखा। आश्वलायन शाखा में 10 मण्डल, 1042 सूक्त, 64 अध्याय, 2055 वर्ग व 10761 मन्त्र हैं तथा शांखायन शाखा में 10 मण्डल, 1028 सूक्त, 64 अध्याय, 2048 वर्ग व 10627 मन्त्र हैं। इस शाखा के भी चार भेद हैं—1. शांखायन, 2. कौषीतकि, 3. महाकौषीतकि, 4. शांबव्य। आश्वलायन तथा शांखायन शाखाओं में पाठ भेद नहीं है। चरणव्यूहकार ने 5 मुख्य शाखाओं का संकेत किया है, परन्तु इन पाँच शाखाओं में से माण्डूकायना शाखा के सन्दर्भ में विवरण उपलब्ध नहीं होता है। शाकल, बाष्कल, आश्वलायन तथा शांखायन शाखाओं में भेद का आधार खिलमन्त्र हैं। शाकल में जिन्हें खिल रूप में माना गया है उन्हें ही इन संहिताओं में मूलरूप में स्वीकार किया गया है। शाखान्तरीय मन्त्रों की ही खिल संज्ञा है।

आश्वलायन एवं शांखायन संहिताओं को जिन्हें सामान्यत: अप्राप्त माना जा रहा था, जिनके अन्वेषण में वैदिक विद्वान् निरन्तर प्रयासरत थे। इसी कड़ी में डॉ. अमलधारी सिंह जी को वर्ष 1968 में राजस्थान के अलवर में लगभग 12000 पृष्ठों की 63 पाण्डुलिपियाँ मिली जो महाराजा सवाई विनय सिंह जी द्वारा हैदराबाद एवं अहमदनगर से प्राप्त करके अपने ग्रन्थालय में रखी गयी थी, इन पाण्डुलिपियों में 38 आश्वालयन की तथा 25 शांखायन की है। आश्चर्य की बात है कि प्रो. पीटर्सन ने राजमहल में स्थित पाण्डुलिपियों के कैटालॉग बनाये परन्तु इन दो संहिताओं का उल्लेख कैटालॉग में नहीं किया। पद्मभूषण पं.

बलदेव उपाध्याय जी ने शांखायन संहिता की चर्चा अपने इतिहास लेखन में की है। बहुत हर्ष एवं गौरव की बात है कि डॉ. अमलधारी सिंह जी ने जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में रहते हुए इन पाण्डुलिपियों का यथाविधि अवलोकन कर राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के निदेशक डॉ. फतहसिंह के निर्देशन में ऋग्वेद की शाखाओं से सम्बन्धित दो शोधलेख 1969 एवं 1970 में प्रकाशित किये। इसके बाद आश्वलायन संहिता का प्रकाशन दो भागों में इन्दिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केन्द्र, दिल्ली से हुआ। डॉ. अमलधारी सिंह ने शांखायन संहिता का 04 भागों में प्रकाशन महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान से करने का गौरव प्राप्त किया। इस अति महनीय एवं गौरवपूर्ण कार्य के लिए डॉ. अमलधारी सिंह जी की जितनी प्रशंसा की जाय कम ही होगी। डॉ. सिंह जी का यह शोधपूर्ण कार्य से जिज्ञासुओं एवं वैदिक अध्येताओं के लिये मील का पत्थर सिद्ध होगा। मैं एतदर्थ डॉ. अमलधारी सिंह को साधुवाद प्रदान कर निरन्तर लेखन व इसी प्रकार प्राचीन मानक ग्रन्थों के सम्पादन को सतत बनाये रखने की कामना करता हूँ। समिति।

भवदीय

प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी

प्रो. विजयकुमार सी.जी.
कुलपति
Prof. Vijayakumar C.G.
Vice Chancellor

महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय
(मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित)
देवास मार्ग, उज्जैन - 456 010 (म.प्र.) भारत
Maharshi Panini Sanskrit Evam Vedic Vishwavidyalaya
(Established by Government of Madhya Pradesh)
Dewas Road, Ujjain - 456 010 (M.P.) BHARAT

क्र. 364 दिनांक 03/07/2022

आशीर्वचनम्

वेदाः सन्ति प्राचीनतमाः प्रशस्ततमा हीरकग्रन्था न केवलं भारतीयवाङ्मये अपि तु सन्ति विश्ववाङ्मये। यथा भट्टमेक्षमूलरः स्वहृदयोद्गारं प्रकाशयति—

They (Vedas) are the oldest of books in the library of mankind the oldest monument of the Indo Europeon world.
– Preface Rigveda, Ist ed. Oxford oct. 1849

ऋषिभिः साक्षात्कृतत्वात् सन्ति सर्वविधदोषविवर्जिताः अनवद्याः सर्वथा प्रामाणिकाः सर्वविधज्ञान-विज्ञानानां निधयः। सनातनिसंस्कृतेः सुप्रकाशकाः विमलदर्पण-कल्पाः। एतेषां वेदानामेव कारणाद् अस्माकं भारतीया संस्कृतिरस्ति विश्ववारा वन्दनीया—

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा

शु.यजु. 7.14

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनु. 2-20

आदौ वेदोऽयमेक एवाऽऽसीत् स एव रक्षणस्य श्रुतिपरम्परायाम् असंख्य-शाखोपशाखाभिः समृद्धो जातः। ई.पू. द्वि. शत. समये 1131 शाखाभिः संवलितो बभूव। अत्र ऋग्वेदः 21 शाखाभिः सुसमृद्धोऽभवत्। परमेताः सर्वाःशाखाः सुरक्षिता न सन्ति सम्प्रति।

ऋग्वेदस्यैका शाकलसंहिता प्रो. मैक्समूलरमहोदयेन ब्रिट्रिशसम्राज्ञिविक्टोरियायाः संरक्षणे 1349-73=24 वर्षेषु लन्दनस्थितस्य ऑक्सफोर्डयन्त्रालयतः षड्भागेषु प्रकाशिता अन्याः संहिता उपलब्धा नाऽऽसन्।

प्रयागविश्वविद्यालयस्य काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य छात्रेण अमलधारीसिंहवर्मणा 1968 वर्षे राजस्थान-अलवरपैलेसपुस्तकालयेऽस्य ऋग्वेदस्य द्वयोः शाखयोः आश्वलायन-शाङ्खायनयोः 12000 पृष्ठात्मकाः (63) पाण्डुलिपयः सम्प्राप्ताः, यदायं जोधपुरविश्व-विद्यालयस्य संस्कृतविभागे प्राध्यापक आसीत्। एताः पाण्डुलिपयः अलवरराज्याधीशैः सवाईविनयसिंहजूदेवैः हैदराबादतोऽहमदनगरतः समासादिता आसन्। 'श्रीमन्महराजाधिराज-महारावराजाश्रीसवाईविनयसिंहदेववर्मणा पुस्तकं हैदराबादतः आयातम्। अहमदनगरा-त्पुस्तकमिदमायातम्' । राजस्थानप्राच्यविद्याप्रतिष्ठानस्य निदेशकैः डॉ. फतहसिंहवर्यैः

संस्कृतविभागाध्यक्षैः स्वामिसुरजनदासवर्यैः महामहोपाध्यायगङ्गेश्वरानन्ददेवैस्तथा पंडितगोपालचन्द्रमिश्रवर्यैः सम्यङ् निरीक्षणानन्तरम् आसां प्रामाणिकत्वं प्रमाणीकृतम्, अनयोः संहितयोः प्रकाशनयोजना परिकल्पिता, सा पूर्णा न जाता। परमयम् अमलधारीसिंहः ऋषीणां महनीयनिधेः प्रकाशनं प्रति सततं संलग्न आसीत्। अनेके निबन्धाः प्रकाशिताः विद्वत्सम्मेलनेषु विदुषां ध्यानमाकृष्टं फलस्वरूपं डॉ. ब्रजबिहारीचौबेमहोदयेन सम्पादिता आश्वलायनसंहिता इन्दिरागांधीराष्ट्रियकलाकेन्द्रेण तथाऽनेन सम्पादिता शाङ्खायनसंहिता महर्षिसान्दीपनि राष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानेन प्रकाशिता। द्वयो संहितयोः समुद्धारो जातः। वैदिकवाङ्मयस्य इतिहासे प्रो. मैक्समूलरानन्तरमिदमस्ति सर्वाधिकं महत्त्वपूर्णं योगदानम्।

पुनश्च वेदविद्यासंरक्षणे परायणोऽयम् ऋग्वेदस्य शाकल-बाष्कल-आश्वलायन-शाङ्खायनसंज्ञकानां चतसृसंहितानां तुलनात्मकमध्ययनं प्रति संलग्नोऽभवत्, अध्ययनं सुसम्पन्नं जातम् यत्र काशीहिन्दूविश्वविद्यालयेन संस्कृतविषये डी.लिट् इत्युपाधिनाऽयं सभाजितः। आसां संहितानामिदमस्ति **प्रथममध्यनम्**। आसां स्वरूपं वैशिष्ट्यमनेन सुविशदरूपेण प्रकाशितम्।

आसु संहितासु पाठभेदो न विद्यते। मन्त्राणां संख्याविषये क्रमविषये च भेदोऽस्ति। यथा शाकले 10552, बाष्कले 10548, आश्वलायने 10761, शाङ्खायने 10627 मन्त्राः सन्ति। शाकलस्य परिसमाप्तिर्भवति यथा वः सुसहासतीति सुप्रख्यातसंज्ञानसूक्तेन। बाष्कले एतत्सूक्तानन्तरं विद्यते पञ्चदशात्मकम् एकमपरं संज्ञानसूक्तम्-तच्छंयोरा वृणीमहे... शं चतुष्पदे।

आश्वलायनशाङ्खायनयोः परिसमाप्तिर्भवति महानाम्निसंज्ञकैर्ऋग्भिः। आसु संहितासु समुल्लेखनीयं भेदकं तत्त्वमस्ति खिलरूपत्वम् परशाखीया मन्त्राः खिलानि उच्यन्ते ये स्वसंहितायां न तिष्ठन्ति। इत्थम् ऐतरेयब्राह्मणे आरण्यके अनेके मन्त्रा विलसन्ति येषां स्थितिः शाकले नास्ति। एषां विशिष्टं महत्त्वं प्रभावमभिलक्ष्य यागकर्मसु एषां विनियोगो विधानमस्ति। यथा सुप्रसिद्धानि एकादशवालखिल्यसूक्तानि सन्ति। एषां पदपाठस्तथैव भाष्यं न प्राप्यते। ऐतरेयब्राह्मणं तु महच्छक्तिमयं वज्ररूपं निरूप्य एषां विनियोगं प्रस्तौति। शाकले एतानि सूक्तानि खिलरूपाणि सन्ति परं बाष्कले आदितः सप्तसूक्तानि मूलरूपेण विलसन्ति। आश्वलायने दशसूक्तानि तथा शाङ्खायने सर्वाणि मूलरूपेण स्वीकृतानि सन्ति।

इत्थम् ऋषिभिर्दृष्टत्वात् सर्वेषां मन्त्राणां मूलरूपत्वमस्ति, न खिलरूपम्। शाकले ये केचन खिलमन्त्राः सन्ति ते सर्वे आसु संहितासूपलभ्यन्ते।

एवम् आचार्यः अमलधारीसिंहः प्रशंसनीयोऽस्ति येन ऋग्वेदस्य चतसृसंहितानां स्वरूपं **प्रथमतः** सुप्रकाशितं यत्र खिलमन्त्राणां मूलाधारो विद्यते। अन्यासां संहितानामन्वेषणेऽयं तत्परोऽस्ति सफलो भवतु, ऋषिरिक्थस्य समुद्घाटनं भवतु।

आचार्यः विजयकुमारः सी.जी.

कुलपतिः

महर्षिपाणिनिसंस्कृत-एवं-वैदिकविश्वविद्यालयः,

उज्जयिनी मध्यप्रदेशः

ॐ

डॉ. कामेश्वर उपाध्याय

ज्योतिषाचार्य (गोल्डमेडलिस्ट)
साहित्याचार्य, एम.ए. (गोल्डमेडलिस्ट)
सम्पादक : श्रद्धा (त्रैमासिक शोधपत्रिका)
सम्पादक : त्रिस्कन्धज्योतिषम् (त्रैमासिक)
सम्पादक : व्रत-पर्व-महोत्सव पत्रिका (त्रैमासिक)

राष्ट्रीय महासचिव
अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्
'ईशायतन' • १६, जानकीनगर,
पो.ऑ. बजरडीहा, वाराणसी - २२१००६
फोन : ०५४२-२३००४७३, ९३३९९५७१
ई-मेल : varanasiastro@yahoo.co.in

।।शुभाशंसा।।

प्रभु विश्वनाथ की नगरी काशी भारतवर्ष की सांस्कृतिक राजधानी है। साथ ही यह सर्वविद्या की राजधानी है क्योंकि यहाँ पर सभी विद्याओं के अधिपति भगवान् शिव निवास करते हैं- **ईशानः सर्वविद्यानाम्**। इस काशी के दक्षिण दिग् विभाग में प्रभु विश्वेश्वर की अनुग्रह राशि से संवलित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालय के अध्येता तपस्वी **आचार्य अमलधारी सिंह जी** ने ऋग्वेद की प्राचीनतम शाखाओं को प्रकाश में लाने का कार्य किया। **'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्'** पंक्ति के अनुसार व्याकरणमहाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि के समय ई.पू. द्वितीय शताब्दी में यह ऋग्वेद २१ शाखाओं से समृद्ध था। इनमें से एक **शाकलसंहिता** का प्रकाशन प्रो. मैक्समूलर ने ६ भागों में आक्सफोर्ड लन्दन से २५ वर्षों (१८४९ से १८७३) में किया। उन दिनों तक अन्य शाखायें अनुपलब्ध रहीं और कालकवलित मान ली गईं। इसी काशी के अध्येता श्रीमान् अमलधारी सिंह जी को वर्ष १९६८ में राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में सुरक्षित ऋग्वेद की दो शाखाओं १. आश्वलायन तथा २. शाङ्खायन की लगभग १२००० पृष्ठों की ३८+२५= ६३ पाण्डुलिपियाँ मिली थीं। इन पाण्डुलिपियों की ओर किसी विद्वान् का ध्यान नहीं गया था। उन दिनों डॉ. अमलधारी सिंह जी संस्कृत विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय की सेवा में संलग्न थे। विद्याधिपति भगवान् विश्वनाथ की इच्छा प्रेरणा से दो विलुप्त कालकवलित संहिताओं का कालान्तर में उद्धार हो सका।

शाङ्खायन संहिता की सभी पाण्डुलिपियाँ संहितापाठ तथा पदपाठ के पृथक्-पृथक् अष्टकक्रम में आठभागों में सुव्यवस्थित थीं। संहितापाठ के साथ पदपाठ को मिलान करके व्यवस्थित करना पुनः प्रकाशित शाकल संहिता के साथ तुलना करना तथा साढ़े दसहजार से अधिक मन्त्रों का अकार क्रम में वर्णानुक्रमणी बनाना इत्यादि कितना अधिक श्रमसाध्य और समयसाध्य कार्य रहा। इस दुरूह सारस्वत कार्य को विद्याव्यसनी सरस्वती पुत्र डॉ. अमलधारी सिंह जी ने बिना किसी सहयोग और सहायता के अपनी आन्तरिक ऊर्जा और सत्संकल्प के बल से पूर्ण किया। छन्दों की दृष्टि से इन्होंने संहितापाठ को दो तथा पदपाठ को तीन पंक्तियों में अर्थात् एक मन्त्र को पाँच पंक्तियों में व्यवस्थित किया है। इनके द्वारा पदपाठ संवलित शाङ्खायन संहिता का ४ भागों में महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान

क्रमशः.......

ग्रन्थ- ज्योतिषशास्त्र, सूर्य आराधना, हिन्दू जीवन पद्धति, श्रीमहामृत्युञ्जयमंत्रसाधना,
नवग्रह विज्ञान, हिन्दू अंक प्रतीक, भारतवर्ष, श्रीमहामृत्युञ्जयमंत्रसाधना, प्राक्जन्मसंस्कार,
वास्तुविद्या, स्वप्नविद्या, कालसर्प/नागबाधाशान्ति, अग्निशिखा (काव्यसंग्रह), प्रज्ञा (निबन्धसंग्रह)

उज्जैन ने अपने रजत-जयंती वर्ष २०१२-१३ में प्रकाशन किया। इसकी पाण्डुलिपि अबतक उपलब्ध पाण्डुलिपियों में सर्वप्राचीन और काशी में नागरब्राह्मण द्वारा लिखी गई है। **विक्रम संवत् सहस्र षट् नवपञ्चाशत् १६५९ वर्षे मार्गशीर्ष शुदि ५ सोमे श्रीमद्वाराणसीमध्ये नागरज्ञातीय दवे केशवपुत्र रघुनाथेन धर्मदत्तेन लिखापितम्,** जबकि प्रो. मैक्समूलर महोदय द्वारा प्रयुक्त **शाकलसंहिता** की पाण्डुलिपि वि.सं. १७७१ की है।

जीवन के पश्चिमवय ८४ वर्ष की अवस्था में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डी.लिट्. शोधच्छात्र के रूप में पंजीकृत, विद्वद्भूषण, महामहोपाध्याय आदि उपाधियों से विभूषित आचार्य अमलधारी सिंह जी ने ऋग्वेद की ४ संहिताओं १. शाकल, २. बाष्कल, ३. आश्वलायन तथा ४. शाङ्खायन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर एक अपूर्व इतिहास का निर्माण किया। इस सारस्वत कार्य के लिए आपको काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट्. की उपाधि प्रदान की गयी। यह अब तक का अपने ढंग का अपूर्व सारस्वत कार्य है। इसे वैदिक वाङ्मय के इतिहास में महान् श्रम से सम्पादित महत्तम कार्य कहा जा सकता है। इन चार संहिताओं के तुलनात्मक अध्ययन का वैशिष्ट्य निम्नवत् है-

इनमें पाठभेद नहीं है। मन्त्रों की संख्या तथा क्रम में भेद है, यथा इनमें क्रमशः १०,५५२; १०,५४८; १०७६१; १०६२७ मन्त्र हैं। वस्तुतः उल्लेखनीय प्रमुख भेद खिलमन्त्रों का है। परशाखीय मन्त्रों की संज्ञा **खिल** है जो अपनी संहिता में नहीं है। मन्त्रभाग की ही व्याख्या ब्राह्मणग्रन्थ करते हैं। ऐतरेयब्राह्मण में अनेक मन्त्र हैं जिनकी स्थिति **शाकलसंहिता** में नहीं है, इसलिए इनको **खिल** माना गया है। पर ये सभी मन्त्र अन्य संहिताओं में विद्यमान हैं, यथा वालखिल्य, श्रीसूक्त, रात्रिसूक्त, महानाम्नी, मेधाजनन, २८ मन्त्रात्मक शिवसंकल्पसूक्त इत्यादि।

इस अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत होने से सभी मन्त्र मूल हैं, खिल नहीं। अबतक इनकी संहितायें उपलब्ध नहीं थीं। इस तरह ऐतरेय ब्राह्मण द्वारा प्रस्तुत मन्त्रों का विनियोग सुसंगत हो जाता है।

आज भी आचार्य प्रवर महामहोपाध्याय अमलधारी सिंह अन्य विलुप्त संहिताओं के अन्वेषण में सतत लगे हुए हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि उन्हें सफलता प्राप्त हो। काशी की गरिमा में सारस्वत समृद्धि होती रहे और ऋषियों की धरोहर का उद्धार होता रहे, क्योंकि वेदों के कारण ही हमारी यह संस्कृति विश्व वन्दनीया है-

सा प्रथम संस्कृतिर्विश्ववारा। शुक्लयजु. ७.१४

अखिल भारतीय विद्वत् परिषद् की ओर से आचार्य प्रवर को उनके महनीय कार्यों के लिए विद्वद्भूषण एवं महामहोपाध्याय उपाधि से अलंकृत भी किया गया है। आप स्वस्थ एवं दीर्घायु होकर भगवान् वेद की निरन्तर साधना करते हैं। इतिशम्।

राष्ट्रीय महासचिव

[illegible] उपाध्यायः

अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्

डॉ. रामजी सिंह

[illegible]

DR. RAMJEE SINGH

Ph.D., D. Litt. (Phil. & Pol. Sc) Emeritus Fellow Ex. Member of Parliament; Former Vice Chancellor, Jain Viswa Bharati; Former Director, Gandhian Institute of Studies, Varanasi; Ex. President, Indian Society of Gandhian Studies; Secretary Afro Asian, Philosophy Ass. (Asia); National Convener - Santi Senа; President - Bihar Sarvodaya Mandal Address: Bhikhanpur, Bhgalpur -812001 (INDIA)

Rgveda : Most Ancient Sanskrit Treatise

Vedas are the earliest treatise of the entire world.

Says Prof. Max Muller

They (Vedas) are the oldest of books in the library of mankind ....the oldest monument of the Indo-European World.

Preface : Rgveda, Ist ed. Oxford, Oct. 1849

These vedas are not composed by any mortal, but have been realized by the great seers, Rsis. So are fully authentic, Self-evident and repositories of all kinds of learning.

These vedas have been handed down to us through an uninterrupted and unique oral tradition. Due to this tradition these Vedas assumed numerous innumerable forms known as Sakhas, branches. In 2nd century. B.C. there were 1131 branches. In these the Rgveda was embellished with 21 branches, among these celebrated vedic scholar Prof. Max Muller published one branch Sakala Samhita in 6 Vols. from 1849 to 73 from Oxford Press London under the patronage of Queen Victoria, other branches remained untraceable and have been presumed as lost with the passage of time.

Amal Dhari Singh, a student of Banaras Hindu University was very fortunate in procuring 63 MSS comprising of nearly 12000 pp of its two branches आश्वलायन & शांखायन preserved at Alwar Palace lib (Raj.) in 1968 while serving the University of Jodhpur, which were brought from Hyderabad and Ahmadnagar by Maharaja SawaiVinay Singh Judev, the ruler of this state. He enriched his personal palace library with the treasure and appointed Pt. Gangadhar Joshi as its librarian in 1848, but no scholar studied this most valuable heritage of our culture. A. D. Singh along with his teaching and research work constantly remained engaged in the study of this material and presented so many research paper. His first paper, Sakhas of the Rgveda was published in All India Oriental Conference Journal Jadavpur University in Oct 1969 and second paper ऋग्वेद शाखा विमर्श in प्रज्ञा Research Journal B.H.U. in OCT. 1970.

He edited शांखायनसंहिता with pada text which was published by महर्षिसान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्याप्रतिष्ठान उज्जैन in 4 Vols on occasion of its Silver Jubilee year 2012-13

This is the most commendable and significant contribution to the History of Vedic literature after Prof. Max Muller. He is an energetic scholar, devoted to sanskrit studies. At the age of 84 years he completed a critical and comparative study of 4 branches of this Reveda and BHU has admitted his thesis for the award of D.Litt. degree in Sanskrit. This is first study regarding 4 branches of this veda before this only one branch शाकलसंहिता was available since its first publication by Max Muller.

Thus A.D. Singh has created a new History is the field of research work. Now he is engaged in the search of other branches of the Vedas. He may get success in his cherished mission, publication of the most valuable heritage of our great Rsis.

Ramjee Singh

वाग्देवी

सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।। ऋ० १-८९-३

आत्म-निवेदन = सपर्या

ॐ नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः।
श्रीमद्गुरुदेवेभ्यो नमो नमः॥

भारत-आजादी के अमृतमहोत्सव पर्व की सम्पूर्ति पर श्रीभगवान् वेद की उपासना-सपर्या में वर्ष 1968 से अनवरत चल रहे ऋषियों की धरोहर के रक्षणरूप कर्मानुष्ठान की सम्पूर्ति पर फल=प्रसाद की कामना से '**ऋग्वेदीय शाखा-संहिताओं का समीक्षात्मक अध्ययन**' रूप ग्रन्थपुष्प को भगवत्स्वरूप वेदमनीषियों विभूतियों की सेवा में समर्पित करते हुए अतिशय आह्लाद की अनुभूति कर रहा हूँ। भगवदिच्छा प्रेरणा से प्रारम्भ किया गया यह मङ्गलानुष्ठान उन्हीं की इच्छा से और सम्पूज्य गुरुदेवों के आशीर्वचन प्रेरणा से तथा सुहृज्जनों के प्रोत्साहन से सम्पूर्णता को प्राप्त हुआ है। इस अनुष्ठान के फलप्रदाता हैं सनातनी संस्कृति तथा भारतीय विद्याओं के संरक्षक, सम्पोषक संवर्द्धक विद्या-वैभव-विभूषित श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नव देहली के परम यशस्वी कुलपति मा. प्रो. मुरली मनोहर पाठक जी। सुदीर्घकालीन मेरे परिश्रम को इन्होंने फलीभूत कर दिया है।

वस्तुतः वेद भारतीय संस्कृति की शब्दात्मिका आद्या सृष्टि हैं और पूर्णब्रह्म के साक्षात् शब्दविग्रह हैं। इनमें ऋग्वेद प्रथम है। यह भारतीय वाङ्मय किं वा विश्ववाङ्मय का प्राचीनतम ग्रन्थ है, इसी की शाकल-बाष्कल-आश्वलायन-शाङ्खायन संज्ञक चार संहिताओं के स्वरूप का प्रथमतः प्रकाशक यह ग्रन्थ है। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में इसका महत्तम योगदान होगा। इसको प्रकाश में ले आने वाले अभिनन्दनीय कुलपति मा. पाठक जी का सादर अभिनन्दन कर रहा हूँ, संस्कृत भारती की समृद्धि करते रहें और इस तरह इनके समुज्ज्वल यश में अभिवृद्धि होती रहे।

शोध विभाग के विद्याधनी अध्यक्ष मा. प्रो. शिवशंकर मिश्र जी ने विश्वविद्यालय की ग्रन्थमाला के अन्तर्गत इस ग्रन्थपुष्प को संग्रथित संगुम्फित करने की महती कृपा की है, इस विशेष अनुग्रह हेतु मैं इनका सादर वन्दन कर रहा हूँ। अपने महत्त्वपूर्ण परामर्शों से इस ग्रन्थ को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने में तथा अत्यन्त आकर्षक साजसज्जा के साथ इसके प्रकाशन में मा. डॉ. ज्ञानधर पाठक जी का महनीय योगदान है, मैं इनको सादर प्रणाम कर रहा हूँ। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अत्यन्त तेजस्वी विद्याधनी परम यशस्वी वरिष्ठ आचार्य प्रो. राजेश्वर प्रसाद मिश्रजी ने विशेष रुचि लेकर इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का अनुशीलन करके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण

संशोधनों तथा परामर्शों द्वारा इसके स्वरूप को विशिष्ट समृद्धि प्रदान की है, आचार्यप्रवर का सम्मानपूर्वक वन्दन कर रहा हूँ।

वेद समष्टि-हित सम्पादिका कल्याणी वाणी हैं, सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है—**यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्=**हमारे ऋषियों का यह है उदात्ततम चिन्तन। इस वेदविद्या, भारतीय प्रज्ञा की महनीयता का पश्चिमी देशों में प्रतिपादन स्थापना करने वाले तथा इस ग्रन्थ हेतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परामर्श देने वाले कैलीफोर्निया स्थित मूर्धन्य मनीषी आचार्य प्रो. माधवमुकुन्द देशपाण्डे जी के प्रति बहुत-बहुत सम्मान एवम् आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ। प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद की चार संहिताओं के स्वरूप का प्रथमतः प्रकाशक यह ग्रन्थ है और वर्ष 1968 से चल रही मेरी साधना का यह फल है, इसका परिचय सबको मिल सके, एतदर्थ इसका संस्कृत तथा अंग्रेजी में पृथक्-पृथक् अनुवाद शीघ्र ही प्रकाश में आवेगा।

वर्ष 1968 से ऋषियों की इस प्राचीनतम बहुमूल्य धरोहर के संरक्षण अध्ययन में मैं पूर्ण मनोयोग से संलग्न हूँ। 56 वर्षों से अधिक इस सारस्वतसाधना भगवान् वेद की सपर्या का ही फल प्रसाद है यह ग्रन्थ। इस मङ्गल अनुष्ठान की सम्पूर्ति पर समवेतरूप में सभी के प्रति आभार कृतज्ञता भाव प्रकाशित कर रहा हूँ।

प्रयाग विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विद्या-साधना की अत्यन्त समृद्ध उदात्त-परम्परा में दीक्षित होने का, पुनः जोधपुर विश्वविद्यालय, बैसवारा कॉलेज लालगंज तथा महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान उज्जैन में सेवा-समर्पित करने का मुझे बहुत ही सुन्दर सुयोग मिला। सैन्य सेवा के प्रति विशेष अनुरक्ति अभिरुचि होने पर भी संस्कृत विद्या की उपासना में संलग्न समर्पित हो गया, इसमें सम्पूज्य गुरुदेवों डॉ. सूर्यकान्तजी, डॉ. सिद्धेश्वर भट्टाचार्य जी, डॉ. वीरेन्द्र कुमार वर्माजी तथा डॉ. रामाधार पाठक जी का विशेष अनुग्रह है। प्राप्त विद्या-निधि की सम्पुष्टि एवं समृद्धि में सांख्यशास्त्र प्रतिपादित सुहृत्प्राप्ति सिद्धि के रूप में मुझे विद्याधनी गुरुदेवों, वरिष्ठ आचार्यों तथा श्रेष्ठ-शिष्यों का महत्त्वपूर्ण सान्निध्य योगदान-सहयोग मिला, आज सम्प्रति जो कुछ भी उपलब्धि है वह सम्पूज्य गुरुदेवों का आशीर्वचन, सुहृज्जनों का प्रोत्साहन तथा शिष्यों के सुन्दर सहयोग का फल है। इस कार्य की संसिद्धि पर सभी के प्रति सम्मान एवं कृतज्ञता का भाव व्यक्त कर रहा हूँ।

संकल्पित अभीष्ट कार्य की संसिद्धि सम्पूर्ति पर कृतज्ञता आभारभाव का प्रकाशन यही हमारी सनातनी संस्कृति की उदात्त परम्परा है।

प्रयाग विश्वविद्यालय की पूरब का आक्सफोर्ड के रूप में प्रसिद्धि है। इसका स्नातक छात्र होने का गौरव मुझे प्राप्त है। मैं बड़भागी हूँ। बात 65 साल पहले की है। वस्तुतः यह

विद्या का महासागर है। इसकी अपनी एक विशेष पहचान है, सम्पूज्य गुरुदेवों का अत्यन्त आकर्षक तेजोमय प्रदीप्त प्रभावशाली व्यक्तित्व, मर्यादित विशिष्ट वेशभूषा, एक से बढ़कर एक, सभी गुरुदेवों की अपनी-अपनी विशेष पहचान, चालढाल, कभी-कभी विशेष अवसरों समारोहों में युगपत् दर्शन से सहज ही प्रेरणा की प्राप्ति। संस्कृत विभाग आभामय विद्यामय का सुन्दर स्वरूप=पूज्य गुरुदेव डॉ. बाबूराम सक्सेना, पं. क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, म.म. डॉ. उमेश मिश्र, सुश्री हरलेकर, डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र, डॉ. चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, रसराज पं. लक्ष्मी कान्त दीक्षित, श्री सन्तनारायण श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र पाण्डेय, कमलेशदत्त त्रिपाठी से अभिमण्डित था, अन्य विभागों में विशेषतः उल्लेखनीय हैं, डॉ. धीरेन्द्र कुमार वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ. संगमलाल पाण्डेय, एस.एन. देव, आर.एन. देव, डॉ. अमरसिंह, रघुपति सहाय-फिराक, कर्नल जी.सी. तिवारी, के.के. भट्टाचार्य, मेजर आनन्द सिंह सजवान; इन सभी गुरुदेवों से कक्षा में अध्ययन करने का तो सौभाग्य नहीं मिला, पर विशिष्ट कार्यक्रमों में इनके व्याख्यानों प्रेरणादायक अमृत वचनों के सुनने का अवसर मिला है, पर दर्शनमात्र से व्यावहारिक जीवन की शिक्षा मिल जाती है और यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। और अभी भी समय-समय पर ध्यानगोचर ध्यान द्वारा दर्शन करके आशीर्वचन प्रेरणा प्राप्त कर लेता हूँ, मुझे नई ऊर्जा और कर्म-दिशा मिल जाया करती है।

इन गुरुदेवों में पूज्य गुरुदेव डॉ. आद्या प्रसाद मिश्र जी का मैं विशेष स्नेहभाजन रहा। जोधपुर तथा बैसवारा लालगंज से समय-समय पर 26 सत्यसदन बलरामपुर हाऊस में उपस्थित होकर आशीर्वचन और ज्ञाननिधि प्राप्त कर लेता था। जोधपुर तथा लालगंज में आमन्त्रित करके सेवापूजन करने का भी अवसर मिला है।

दिसम्बर 2004 में महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान द्वारा प्रायोजित बैसवारा कॉलेज लालगंज में आयोजित वैदिक सम्मेलन में गुरुदेव ने सभा को अपने अमृतवचनों से आप्लावित किया था। दर्शनशास्त्र विशेषतः सांख्य-योग में मेरा प्रवेश पूज्य गुरुदेव की कृपा का प्रसाद है। इन्हीं की प्रेरणा से लेखन कार्य में प्रवृत्ति हुई। प्रस्तुत ग्रन्थ इन्हीं श्रीगुरुदेव के आशीर्वचन से परिपूर्ण हुआ है। अतः यह ग्रन्थ-पुष्प अक्षय अनन्त ऐश्वर्य मण्डित इन्हीं सम्पूज्य गुरुदेव को श्रद्धा भक्ति भाव से समर्पित कर रहा हूँ—श्रीमद्गुरुदेवेभ्यो नमो नमः।

उत्कृष्ट शोधकार्य हेतु प्रोत्साहित करने वाले सुप्रख्यात वैज्ञानिक तथा सम्पूज्य महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी की गौरवशाली उदात्त परम्परा का संवर्द्धन करने वाले

काशीहिन्दूविश्वविद्यालय के परमयशस्वी कुलपति पद्मश्री प्रो. सुधीर कुमार जैन जी तथा सुविश्रुत नेत्र चिकीत्सक सर्जन विशिष्टातिविशिष्ट उपलब्धियों से अभिमण्डित कुलगुरु रेक्टर प्रो. विजय कुमार शुक्ल जी के प्रति बहुत-बहुत आदर सम्मान भाव प्रकाशित कर रहा हूँ जिनके संरक्षण में मैं सम्पूर्ण विश्व के सर्वप्राचीन ग्रन्थ पर शोधकार्य करने में सफल हुआ हूँ। सम्पूज्य कुलगुरुजी ने इस ग्रन्थ हेतु अपना प्रेरणास्पद आशीर्वचन प्रदान करके इसकी श्रीवृद्धि की है।

काशीहिन्दूविश्वविद्यालय में शोधच्छात्र के रूप में 83 वर्षीय मुझको दीक्षित करने वाले तथा इस कार्य को सुसम्पन्न करा देने वाले अक्षय अनन्त सुकीर्ति मण्डित प्रो० विजय बहादुर सिंह जी को सादर नमन कर रहा हूँ तथा जिनकी प्रबल सस्तुति से मुझे शोध कार्य हेतु अनुमति मिली है—सम्पूज्य गुरुदेव प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी जी, पूर्व रेक्टर प्रो. कमलशील जी, प्रो. मुकुलराज मेहता जी, प्रो. प्रद्युम्न दुबे जी, प्रो. कमलेश जैन जी, प्रो. कौशलेन्द्र पाण्डेय जी के प्रति बहुत-बहुत सम्मानभाव प्रकाशित कर रहा हूँ। इस कार्य की संसिद्धि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सक्रिय भूमिका है, परम विद्याधनी परामर्शदाता प्रो. उमेश प्रसाद सिंह जी की तथा प्रेरणा प्रोत्साहन द्वारा मेरा मार्ग प्रशस्त करने वाले हैं वर्ष 1960 से मेरे संरक्षक रूप में स्थित समादरणीय बड़े गुरुभाई प्रो. कमला प्रसाद सिंह जी, डॉ. सकलनारायण सिंह जी और प्रो. विमल जी, सभी के प्रति बहुत बहुत आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ। इसी प्रकार संस्कृत विभाग की विदुषी प्राध्यापिका डॉ. शिल्पासिंहजी, डॉ. राजेश सरकारजी तथा प्राचीन इतिहास संस्कृति विभाग के तेजस्वी आचार्य डॉ. सचिन कुमार तिवारी जी के प्रति इस कार्य की सिद्धि में सहयोग करने के लिए कृतज्ञता भाव व्यक्त रहा हूँ। इनके विद्याधन में समृद्धि होती रहे।

विश्वविद्यालय के ही सुप्रसिद्ध नेत्र चिकीत्सक, भारतीय चिकित्सा विज्ञान की छवि को विदेशों में भी सुप्रतिष्ठित करने वाले, अनेकानेक विशिष्ट सम्मानों से, विशेष कर एशिया के सर्वोच्च आपथैल्मिक अवार्ड से सम्मानित कर्म पुरुषार्थी डॉ. राजेन्द्र प्रकाश मौर्य जी के प्रति इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति हेतु प्रेरणा प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए बहुत बहुत आभारभाव व्यक्त कर रहा हूँ तथा कामना कर रहा हूँ कि वे और अधिक स्पृहणीय सम्मानों से सम्मानित होते रहें तथा विश्वविद्यालय एवं काशी की गरिमा में अभिवृद्धि करते रहें।

संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान सङ्काय के पूर्व प्रमुख प्रत्यभिज्ञा शैवदर्शन के अप्रतिम आचार्य प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी जी, ज्योतिषशास्त्र के मूर्धन्य मनीषी प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय जी, सङ्काय को भव्यस्वरूप प्रदान करने वाले तथा विश्वविद्यालय की सेवा में मुझे संलग्न करने वाले प्रो. कृष्णकान्त शर्मा जी, वैष्णव आगमतन्त्र के मूर्धन्य आचार्य प्रो. शीतला प्रसाद पाण्डेय जी वेद-मनीषी प्रो. हृदयरञ्जन शर्मा जी तथा भारत अध्ययन केन्द्र के समन्वयक साहित्य मनीषी

प्रो. सदाशिवकुमार द्विवेदी के प्रति प्रेरणा प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए सम्मान आभारभाव का प्रकाशन कर रहा हूँ।

परम पूज्य पितामह विद्या-निधि पं. भगवत्प्रसादमिश्र जी तथा सम्पूज्य पितृश्री वेदमूर्ति पं. गोपालचन्द्र मिश्रजी द्वारा प्रवर्तित वेद-विद्या रक्षण संवर्द्धन की अति समृद्ध परम्परा को और अधिक समृद्ध करने वाले परम यशस्वी भ्रातृद्वय मा. प्रो. युगलकिशोर मिश्र जी तथा प्रो. श्री किशोर मिश्र का इस ग्रन्थ की श्रीसमृद्धि में महत्त्व पूर्ण सामग्री प्रदान करने के लिए सादर अभिनन्दनपूर्वक आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गौरव रहे महत्तम दिव्य विभूति मूर्धन्य साहित्यमनीषी म.म. प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी तथा अन्ताराष्ट्रिय ख्याति के दार्शनिक चिन्तक प्रो. रेवतीरमण पाण्डेय जी के प्रति श्रद्धाभाव समर्पित कर रहा हूँ। ध्यानगोचर रूप में इन विभूतियों से मैं ऊर्जा प्राप्त करता रहता हूँ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अत्यन्त यशस्वी पूर्व कुलपति भारत सरकार के वैज्ञानिक सलाहकार रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय झांसी के कुलाधिपति सुप्रख्यात कृषि वैज्ञानिक प्रो. पंजाब सिंह जी तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पूर्व अध्यक्ष सुप्रख्यात पर्यावरणविज्ञान-विशेषज्ञ, उ.प्र. सरकार के शिक्षा सलाहकार प्रो. धीरेन्द्र पाल सिंह जी तथा सुप्रख्यात दार्शनिक विचारक तत्त्वचिन्तक गांधी सिद्धान्तविचार के विग्रहवान् राज. जैन विश्व भारती के पूर्वकुलपति परम श्रद्धेय गुरुदेव प्रो. रामजी सिंह जी के प्रति इस कार्य की संसिद्धि में प्रेरणा प्रोत्साहन हेतु सम्मानभाव व्यक्त कर रहा हूँ।

सारस्वत साधना में सतत संलग्न सम्पूज्य डॉ. सूर्यकान्त जी की परम्परा का संवर्द्धन करने वाले अलीगढ़, गुरुकुल कांगड़ी, हिमाचल प्रदेश शिमला तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयों के संस्कृत विभाग को सुप्रतिष्ठित करने वाले, संस्कृत विद्वज्जगत् में प्रपितामह के रूप में विद्यमान प्रातिशाख्य-निरुक्तादि शिक्षावेदाङ्ग पर अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करने वाले, उत्कृष्ट शोध कार्य के पक्षधर तथा मुझे प्रेरित प्रोत्साहित करने वाले परम सम्मान्य प्रो. मानसिंह जी के प्रति बहुत बहुत सम्मान कृतज्ञता का भाव प्रकाशित कर रहा हूँ। महत्पूर्ण सामग्री प्रदान करके इन्होंने इस ग्रन्थ के स्वरूप को अभिमण्डित किया है।

संस्कृत जगत् के मूर्धन्य मनीषी काशी की प्रतिष्ठा संस्कृतविद्या को संरक्षण प्रदान करने वाले काशी विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष पद्मभूषण पं० प्रवर वसिष्ठ त्रिपाठी जी, महामन्त्री प्रो० रामनारायण द्विवेदी जी, काशी की शास्त्रार्थ परम्परा का संवर्द्धन करने वाले सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के यशोधनी पूर्व कुलपति विद्याविशारद धीरगम्भीर प्रो. राजाराज शुक्ल जी

तथा मेरे स्वास्थ्य-संरक्षक ऊर्जा-वर्द्धक प्रेरक प्रसन्नवदन यशस्वी डॉ. सुरेश्वर द्विवेदी जी के प्रति आशीर्वचन प्राप्ति हेतु सम्मानभाव प्रकाशित कर रहा हूँ।

अखिल भारतीय विद्वत्परिषद् के परमयशस्वी अध्यक्ष व्याकरणशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य प्रो. जयशङ्कर लाल त्रिपाठी जी तथा अमानी मानदः विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट विभूतियों को सम्मानित करने वाले प्रभूत ग्रन्थ सम्पत्ति से समृद्ध सनातनी संस्कृति के संरक्षण एवं सम्पोषण में जागरूक रूप से सतत संलग्न वाणी वैभव विभूषित महासचिव डॉ. कामेश्वर उपाध्यायजी के प्रति आदर सम्मानभाव प्रकाशित कर रहा हूँ जो मुझे बराबर प्रेरणा प्रोत्साहन प्रदान करते रहते हैं और इस ग्रन्थ हेतु अपनी शुभाशंसा प्रदान करके मुझे और अधिक ऊर्जावान् बना दिया है, भगवान् वेद की सपर्या में संलग्न रहने के लिए विशेष बल प्रदान किया है। परिषद् के अनुष्ठानों के सम्पादन में मैं पूरी तरह समर्पित हूँ।

काशी तथा हिन्दी जगत् के गौरव सुप्रख्यात साहित्य मनीषी मेजर डॉ. रामसुधार सिंह जी तथा काशी राजकीय पुस्तकालय के यशस्वी अध्यक्ष श्रीयुत् कंचनसिंह परिहार जी तथा राजस्थान सिंहानिया विश्वविद्यालय के पूर्व प्रतिकुलपति आंग्लसाहित्य विशारद प्रेरक व्यक्तित्व के धनी डॉ. अशोक कुमार सिंह जी के प्रति बहुत बहुत आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ जो मेरे मनोबल कर्मशक्ति को अपने प्रेरक बचनों से नवीनता प्रदान करते रहते हैं।

इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति में अपेक्षित महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करने वाले काशीहिन्दू विश्वविद्यालय स्थित सयाजीराव गायकवाड़ केन्द्रीय ग्रन्थालय के यशस्वी ग्रन्थालयी डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह जी तथा विद्याधनी उपग्रन्थालयी डॉ. संजीव सर्राफ जी के प्रति बहुत बहुत आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ।

नियमित रूप से नित्य प्रातः सायं अपने प्रेरणास्पद आशीर्वचनों से मेरा मार्ग प्रशस्त सुगम कर देने वाले वेदशास्त्रों के तलस्पर्शी आचार्य डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी जी पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष राजा यादवेन्द्र दत्त कॉलेज जौनपुर को सादर प्रणाम कर रहा हूँ, मेरे लिए यह प्रेरणापुरुष हैं। सेवानिवृत्ति के अनन्तर परिश्रम अध्यवसाय से इन्होंने डी.लिट् उपाधि अर्जित कर ली है।

श्रीरामतारका आन्ध्राश्रम मानसरोवर केदारघाट के परम यशस्वी कर्मपुरुषार्थी ट्रस्टी वी. सुन्दरन् शास्त्री के प्रति आश्रम परिवार सहित बहुत बहुत आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ तथा सम्पूज्य पितृश्री वी.एस. आर. मूर्ति के प्रति श्रद्धाभक्ति भाव। जोधपुर तथा लालगंज से काशी आगमन पर इसी आश्रम में रहकर भगवती माँ गङ्गा जी का जलपान करने, गौरी-केदारेश्वरजी का दर्शन पूजन करने प्रसाद ग्रहण करने के अनन्तर सारस्वत साधना में तल्लीन

रहा करता था। कक्ष 17-18 मेरे लिए नियत रहता था। अनेक ग्रन्थों की परिपूर्णता यहीं पर हुई और इस ग्रन्थ के सम्पूर्ति में इस आश्रम का सुफल प्रसाद है।

असीम शक्ति संवलित मन्त्रवत् अपने शुभाशीर्वचनों से मुझे अभिसिञ्चित करने वाले नव ऊर्जाशक्ति प्रेरणा प्रदान करने वाले विद्या वैभव विभूषित श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति मा. प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय जी, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय के विद्या-निधि पूर्व कुलपति मा.प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी जी तथा वर्तमान कुलपति मा. प्रो. दिनेश चन्द्र शास्त्री जी, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के परम यशस्वी पूर्व कुलपति मा. प्रो. बालकृष्ण शर्माजी तथा महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय के विद्याधनी कुलपति मा. प्रो. विजय कुमार मेनन जी, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान के अत्यन्त यशोधनी प्रसन्नवदन पूर्व उपाध्यक्ष मा. प्रो. रवीन्द्र अम्बादास मुले जी, द्वारका सस्कृत अकादमी के परमयशस्वी निदेशक शास्त्रमहारथी मा. प्रो. जय प्रकाश नारायण द्विवेदी जी, इन्दिरागांधी राष्ट्रिय कला केन्द्र वाराणसी के परमपुरुषार्थी विद्याधनी समन्वयक मा. प्रो० विजयशङ्कर शुक्ल जी तथा संस्कृत विद्या के संवर्द्धन में संलग्न मूर्धन्य आचार्य प्रो. कामदेव झा जी को इस चिर संकल्पित मङ्गल अनुष्ठान की सम्पूर्ति पर सादर प्रणाम कर रहा हूँ। प्रेरक व्यक्तित्व के धनी सभी गुरुदेवों से मुझे बराबर प्रेरणा प्रोत्साहन प्राप्त होता रहता है। मा. प्रो. त्रिपाठी जी ने पुरोवाक् द्वारा तथा प्रो. मेनन जी अपने आशीर्वचन द्वारा वेदों की विशिष्ट महिमा को उजागर किया है तथा ऋषियों की बहुमूल्य धरोहर पाण्डुलिपियों के सम्बन्ध में मेरा मार्गदर्शन किया है। शाङ्खायन संहिता का प्रथमतः उल्लेख करने वाले मा. शास्त्री का सादर वन्दन कर रहा हूँ।

विश्ववारा अपनी भारतीय संस्कृति को और अधिक श्रेष्ठ समृद्ध बनाने वाले भारतीय विद्या की गरिमा को विदेशों में सुप्रतिष्ठित करने वाले विशिष्टातिविशिष्ट महनीय उपलब्धियों से अभिमण्डित पद्मश्री विश्वभारती रूप सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित प्रयाग विश्वविद्यालय के अत्यन्त यशस्वी आचार्य सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति मूर्धन्य कवि मधुमधुर वाणी समन्वित सम्पूज्य गुरुदेव अक्षय अनन्त सुकीर्ति मण्डित प्रो. आद्याप्रसाद मिश्र जी द्वारा प्रवर्तित अपने परिवार की विद्या-साधना की उदात्त समृद्ध परम्परा को और अधिक समृद्ध करने वाले पद्मश्री महामहोपाध्याय प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी को सादर प्रणाम कर रहा हूँ। नान्दीवाक् द्वारा वेदों की महिमा को उजागर करने के साथ ही भगवान् वेद की उपासना सपर्या में संलग्न रहने के लिए मुझे प्रेरित करके ऊर्जावान् बनाया है। इनका प्रेरणास्पद आशीर्वचन मुझे सदैव सुलभ रहे। इसी प्रयाग विश्वविद्यालय की समृद्ध परम्परा में दीक्षित और विदेशों में भी इसकी श्रेष्ठता को स्थापित करने वाले विश्वभारती सम्मान से सम्मानित

संस्कृत जगत् के मूर्धन्य आचार्य प्रसन्नवदन प्रो. हरिदत्त शर्माजी के प्रति प्रेरणा प्रदान हेतु सम्मानभाव व्यक्त कर रहा हूँ।

डॉ. हरी सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय सागर के संस्कृत विभाग के साथ ही संस्कृत साहित्य को अत्यन्त समृद्ध करने वाले राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के पूर्वकुलपति मूर्धन्य यशस्वी आचार्य प्रो. राधा वल्लभ त्रिपाठी जी को इस ग्रन्थ हेतु प्रेरणास्पद आशीर्वचन प्राप्ति हेतु सादर नमन कर रहा हूँ। इनका मूल्यवान् मार्गनिर्देशन मुझे बराबर मिलता रहे।

अक्षयवट प्रकाशन प्रयागराज के स्वत्वाधिकारी सम्पूज्य गुरुदेव प्रो. आद्याप्रसादमिश्र जी के सुयोग्य आत्मज कर्मव्रती यशोधनी समादरणीय बन्धुवर श्रीयुत सत्यव्रत मिश्र जी के प्रति बहुत बहुत आभार भाव प्रकाशित कर रहा हूँ। पूज्य गुरुदेव की विरासत को उत्तम उत्कृष्ट रूप में बहुगुणित कर रहे हैं। इस ग्रन्थ के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान कर इसकी श्रीसमृद्धि की है।

ज्ञान ही पूजनीयता का मूल आधार होता है, विदेशों में भी भारतीय विद्या की महनीयता को सुप्रतिष्ठित करने वाले कारयित्री भावयित्री प्रतिभासम्पन्न दृढ़संकल्पधनी पुरुषार्थमूर्ति वेदविद्या के संरक्षण एवं संवर्द्धन के प्रति समर्पित ज्ञानवृद्ध विद्या-गुरुदेव तेजस्वी आचार्य प्रो. ओम प्रकाश पाण्डेयजी को सादर प्रणाम कर रहा हूँ, ऋषियों की धरोहर आश्वलायन तथा शाङ्खायन संहिताओं के उद्धार में इन्हीं श्रीगुरुदेव की भूमिका है। यही काशी से मुझको उज्जैन ले आए थे, वेद विद्या प्रतिष्ठान का आज जो वैभवशाली स्वरूप हैं इन्हीं की देन है तथा इन्होंने ही 2004 में इस संस्था की पुनः प्रतिष्ठा की, अन्यथा इसका विलय अन्य संस्थाओं में हो गया होता। वेद के खिल मन्त्रों का सुविशद विवेचन इन्होंने ने ही प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति में श्री गुरुदेव का महत्तम योगदान है।

सुप्रख्यात अन्तरिक्ष वैज्ञानिक वेदों में संनिहित विज्ञान के प्रकाशन में संलग्न तथा अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-सृष्टि के रहस्यों का प्रत्यक्ष दर्शन करा देने वाले मा. डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय जी का ऋग्वेद की विलुप्त आश्वलायन तथा शाङ्खायन दो संहिताओं के उद्धार में तथा इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति में महनीय योगदान है। इनका सादर वन्दन कर रहा हूँ। संरक्षक रूप में यह मुझे बराबर प्रेरित करते रहते हैं।

ऋग्वेद की विलुप्त कालकवलित मान ली गई आश्वलायन तथा शाङ्खायन दो संहिताओं के उद्धार का श्रेय तो सूर्यनगरी रूप में सुप्रथित जोधपुर को ही है। वर्ष 1667 में मैं विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की सेवा में संलग्न हुआ और वर्ष 1968 में अलवर पैलेस पुस्तकालय में सुरक्षित इनकी 12000 पृष्ठात्मक 63 पाण्डुलिपियों का विभागाध्यक्ष सम्पूज्य

स्वामी सुरजन दास जी के संरक्षण में तथा राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान के परम यशस्वी निदेशक वेदमनीषी डॉ. फतह सिंह जी के निर्देशन में वरिष्ठ आचार्य डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा जी तथा आदरणीया वेद विदुषी दीदी श्रद्धाजी के साथ मिलकर अध्ययन करने का सुयोग मिला। दोनों सँहिताएँ प्रकाशित हो गई हैं और अभी इस ऋग्वेद की चार सँहिताओं=शाकल-बाष्कल-आश्वलायन-शाङ्खायन के तुलनात्मक अध्ययनरूप इस ग्रन्थ को विद्वज्जगत् की सेवा में समर्पित करने में समर्थ हुआ हूँ। वस्तुतः जोधपुर मेरे लिए यशःप्रदायी है। यहाँ के महनीय आचार्यों तथा विद्याभिनिवेशी श्रेष्ठ छात्रों के साथ अध्ययन करने, सीखने, कार्य करने का सुन्दर अवसर मिला है।

संकल्पित कर्मानुष्ठान की सम्पूर्ति पर अक्षय अनन्त सुकीर्ति अभिमण्डित श्रद्धेय डॉ. फतह सिंहजी, डॉ. पद्मधर पाठकजी, पं. लक्ष्मीनारायण गोस्वामीजी, स्वामी सुरजनदासजी, प्रो. रसिक विहारी जोशी जी, प्रो. कल्याण भारती जी, डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा जी, विदुषी डॉ. निर्मला उपाध्याय जी, परम यशस्वी कुलपति प्रो. लक्ष्मण सिंह राठौड़ जी के साथ ही प्रो. सत्यव्रत शास्त्रीजी, प्रो. रामचन्द्र द्विवेदीजी, प्रो. सुधीर कुमार गुप्तजी के प्रति श्रद्धा भक्ति भाव समर्पित कर रहा हूँ तथा विद्या-वैभव विभूषित माननीय प्रो. दयानन्द भार्गव जी, आदरणीया प्रो. प्रीतिप्रभा गोयल जी, डॉ. श्रद्धा चौहान जी, डॉ. गणेशी लाल सुथार जी, डॉ. ठाकुरदत्त जोशी जी, प्रो. श्रीकृष्णशर्मा जी, प्रो. नरेन्द्र अवस्थी जी, प्रो. धर्मचन्द्रजैन जी, प्रो. सत्यप्रकाश दुबे जी, प्रो. प्रभावती चौधरीजी, प्रो. सरोज कौशल जी, प्रो. मंगलारामजी के प्रति बहुत बहुत सम्मान आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ।

नियत सेवा की सम्पूर्ति के अनन्तर संस्कृत विद्या के प्रचार प्रसार में, गुरु-परम्परा से प्राप्त विद्याधन को बहुगुणित कर दान देने में निरन्तर संलग्न ऊर्जावान् प्रसन्नवदन प्रो. सत्य प्रकाश दुबेजी का बहुत बहुत अभिनन्दन कर रहा हूँ। संस्कृत विभाग की अत्यन्त मेधाविनी छात्रा रही तदनन्तर राजस्थान संस्कृत अकादमी के अध्यक्षरूप में संस्कृत शिक्षा के उन्नयन हेतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्यों की सम्पादिका डॉ. सुषमा सिंघवीजी, निदेशिका विद्यावती डॉ. रेणुका राठौड़, ऋषि दयानन्द की वेदार्थ दृष्टि को उजागर करने वाले कर्मपुरुषार्थी डॉ. कृष्णपाल सिंह, सांख्य-योगदर्शनविदुषी डॉ. प्रतिमारस्तोगी, शुद्धाद्वैत वेदान्त एवं पुष्टिमार्ग की विदुषी कृष्णा तथा डॉ. गीता बहनद्वयी तथा मेरे संरक्षक रूप में स्थित प्रियबन्धुवर ब्रजेश कुमार सिंह एवं मनोविज्ञान के विश्रुत आचार्य हेमन्त कुमार शर्मा जी तथा राज० बोर्ड तथा विश्वविद्यालय की मेधाविनी छात्रा रही सम्प्रति संस्कृत की वरिष्ठ आचार्या डॉ. वन्दना रस्तोगी सभी के सर्वतोभावेन समृद्धिहेतु मङ्गल कामना करता हूँ।

इस विभाग को पूर्ण संरक्षण प्रदान करने वाले तथा विश्वविद्यालय की सर्वविध समृद्धिहेतु जागरुक रूप से संलग्न विशिष्टातिविशिष्ट उपलब्धियों से अभिमण्डित सुप्रख्यात वैज्ञानिक कुलपति प्रो. कन्हैया लाल श्रीवास्तव जी का सादर अभिनन्दन कर रहा हूँ। इनके विशिष्ट कर्म कौशल तथा व्यक्तिगत प्रभाव से विश्वविद्यालय की समृद्ध उदात्त परम्परा का संवर्द्धन होता रहे।

अलवर पैलेस ग्रन्थालय स्थित आश्वलायन की पाण्डुलिपियों के उद्धारक संस्कृत विद्या के परम यशस्वी मूर्धन्य आचार्य प्रो. नीरज शर्माजी तथा महिला महाविद्यालय अलवर की वरिष्ठ आचार्या वेदविदुषी डॉ. दीप्ति राठौड़ को इस ग्रन्थ की श्रीसमृद्धि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान हेतु सादर नमन कर रहा हूँ। कमला नेहरु महिला महाविद्यालय की यशस्विनी प्राचार्या डॉ. मनोरमा उपाध्याय जी, दर्शन विभागाध्यक्षा डॉ. ममता भाटी जी तथा आयुर्वेद विश्वविद्यालय की संस्कृत विदुषी डॉ. मोनिका जी के प्रति बहुमूल्य सहयोगहेतु आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ।

आश्वलायन तथा शाङ्खायन दोनों संहिताओं के उद्धार के साथ ही इस कार्य के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाले सम्पूज्य डॉ. फतह सिंह जी के श्रेष्ठ शिष्य-कल्प वेदमूर्ति साथ ही हृद्रोग विशेषज्ञ सर्जन डॉ. गिरिधारी शर्मा जी को श्रद्धाभाव समर्पित कर रहा हूँ। 'काल किसी को छोड़ता नहीं' इस वाक्य से प्रेरित करके दोनों ही संहिताओं का प्रकाशन कार्य अपने जीनकाल में इन्होंने सम्पन्न करा लिया। इस दिव्य विभूति को नमन कर रहा हूँ।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान की स्थापना वेदों के रक्षणार्थ एवं इनमें निहित विद्याओं के प्रकाशनार्थ तथा व्यापक प्रचार प्रसार हेतु वर्ष 1987 में हुई है और यह प्रतिष्ठान प्रशंसनीय रूप में इन प्रयोजनों को सम्पन्न कर रहा है। वेदों की सर्वप्राचीन पाण्डुलिपियों के रूप में स्थित शाङ्खायन संहिता को प्रकाशित करने का गौरव इसी प्रतिष्ठान को है। वर्ष 2004 से मैं इससे सम्बद्ध हूँ तथा इस ग्रन्थ हेतु सामग्री का संकलन यहाँ पर रहकर किया है। इस कार्य में प्रतिष्ठान के वेदमनीषी यशस्वी सचिवत्रयी सम्मान्य प्रो० ओम प्रकाश पाण्डेय जी, प्रो. रूपकिशोर शास्त्रीजी, प्रो. विरूपाक्ष वी. जड्डीपाल जी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है, एतदर्थ मैं बहुत बहुत सम्मान एवम् आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ। प्रो. जड्डीपालजी ने आमुख द्वारा इस ग्रन्थ की श्रीसमृद्धि की है तथा प्रो. पाण्डेय जी ने आशीर्वचन रूप में श्रुतिपरम्परा से चले आ रहे वेदों के विशिष्ट स्वरूप को प्रकाशित किया है। इस कार्य की संसिद्धि में विद्याधनी डॉ. अनूप कुमार मिश्र जी, श्री विपिन उपाध्याय जी, श्रीमती मिताली रत्नपारखी जी तथा राजकीय संस्कृत कॉलेज के वरिष्ठ आचार्य डॉ. सदानन्द त्रिपाठी जी का अत्यन्त प्रशंसनीय महत्त्वपूर्ण योगदान है। सभी के प्रति कृतज्ञताभाव ज्ञापित कर रहा हूँ।

इसी क्रम में भगवद्भक्त पं. जगदीशचन्द्र व्यास जी तथा मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान के परमयशस्वी विद्याप्रवीण वरिष्ठ प्रलेखन अधिकारी डॉ. सुनील सिंह चन्देल जी तथा इनके परिवार के प्रति बहुत ही आदर आभारभाव व्यक्त कर रहा हूँ, इनके पूजाघरों में रहकर और प्रसाद प्राप्त कर इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन में मैं समर्थ सफल हुआ हूँ।

साथ ही श्रुति परम्परा के रूप में शाङ्खायन संहिता को सुरक्षित रखने वाले तथा इस ग्रन्थ की संसिद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले बॉसवाडा स्थित नागर ब्राह्मण परिवार के पं. शुभशङ्कर, पं. हर्षद लाल नागर, पं. इन्द्र शङ्कर झा तथा पं. जयनारायण पण्ड्या जी को सादर प्रणाम कर रहा हूँ।

शक्ति-शिवपीठों से अभिमण्डित विविध विभूतियों से समृद्ध सुप्रख्यात बैसवारा लालगंज सम्प्रति मेरी कर्मभूमि है। बैसवारा शिक्षण संस्थान जनपद रायबरेली का सबसे बड़ा संस्थान है। वर्ष 1978 से मैं इस संस्थान परिवार से सम्बद्ध हूँ। मेरे कार्य कलापों की सिद्धि में इस परिवार का महनीय योगदान है। इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति पर मैं अपने संरक्षक, प्रेरक, सहायक, समवेत रूप में सभी के प्रति सम्मानभाव हार्दिक कृतज्ञता आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ। अक्षय अनन्त विमल सुकीर्ति अभिमण्डित अमृतत्व को प्राप्त तथा वर्तमान में कर्मसंस्कृति के सम्पोषक तेजोमयी विभूतियों का आदरभाव से उल्लेख कर रहा हूँ—परम यशस्वी लाल राजेन्द्र बहादुर सिंह जी कोट आलमपुर, बाबा रणबहादुर सिंह जी, ठा. रामनाथ सिंह जी, ठा. अमरेन्द्र बहादुर सिंह जी, दानवीर ठा. रतनपाल सिंह जी, सुप्रख्यात नवगीतिकार साहित्यमनीषी डॉ. शिव बहादुर सिंह भदौरिया जी, इतिहासकार ऋषिकल्प डॉ. वासुदेव सिंह जी, बाबू विन्ध्येश्वरी प्रसाद सिंह जी, डॉ. उपेन्द्र बहादुर सिंह जी, कर्नल बृजभूषणसिंहजी, डॉ. बैजनाथ सिंह आचार्य जी, राजनीतिशास्त्र विशारद प्रो. राकेशचन्द्र त्रिवेदी जी, अर्थशास्त्री छोटेलाल सिंह जी (स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज), प्रो. देवेन्द्र बहादुर सिंह जी, ब्रजभाषा के अप्रतिम मूर्धन्य कवि प्रो. हरेन्द्र बहादुर सिंह जी, ठा. उदयभान सिंह जी, ठा. रवीन्द्रकुमार सिंह जी, ठा. राजेन्द्र सिंह जी, श्रीमती सुनीता सिंह चौहान जी तथा प्रशान्तमूर्ति ठा. सुरेश नारायण सिंह बच्चा बाबू, श्रीयुत् इन्द्रेश विक्रम सिंह जी, लाल देवेन्द्र बहादुर सिंह जी, दानवीर ठा. सुरेन्द्र बहादुर सिंहजी, श्रीमान् अशोक सिंह जी रामपुर, विधिशास्त्र विशेषज्ञ आनन्दमूर्ति श्रीयुत गिरीश नारायण पाण्डेय जी,ठा. राघवेन्द्र प्रताप सिंह ठा. केशव कुमार सिंह जी, श्रीमान् महेन्द्र पाल सिंह जी, श्रीयुत रणविजय सिंहजी, डॉ. भूपेन्द्र देव सिंहजी, नाट्यकलामर्मज्ञ आंग्लसाहित्य विशारद प्रो. बैजनाथ विश्वकर्मा जी, सुप्रख्यात समाजशास्त्री प्रो. हजारी सिंह जी, विकास के पर्याय राष्ट्रिय एवम् अन्ताराष्ट्रिय साहित्यिक सम्मेलनों के अतिकुशल संयोजक प्रो. सत्यनारायण सिंह जी, पर्यावरण विज्ञान विशेषज्ञ भूगोलविद् डॉ. महादेव सिंह जी, साहित्य मनीषी डॉ. ओमप्रकाश सिंह जी, अध्यात्मभावभरिता

प्राचार्या डॉ. शीला श्रीवास्तव जी, विद्या प्रवीण जय प्रताप सिंह जी, श्रीयुत उमेशचन्द्र श्रीवास्तव जी, ठा. हरिनाम सिंह जी, प्रो. अवनेन्द्र बहादुर सिंह जी, प्रो. वीरेन्द्र कुमार शुक्ल जी, डॉ. चित्रा-राजीव पाण्डेय, डॉ. प्रतिमा-चन्द्रमणि बाजपेयी, डॉ. सूर्यप्रकाश शुक्ल, प्रो. नरेन्द्रबहादुर सिंह जी, श्रीबलवन्त सिंह, सुप्रख्यात पत्रकार श्रीयुत नरेन्द्र सिंह भदौरिया जी, सुप्रख्यात् वास्तुशास्त्रवेत्ता शैलेन्द्र कुमार सिंह, हिन्दी भारती के संवर्द्धक श्री रमेश बहादुर सिंह जी एवं बैसवारा की गरिमा को अहमदाबाद में सुप्रतिष्ठित करने वाले भ्रातृद्वय ठा. शिवबहादुर सिंह जी, डॉ. पूरन सिंह जी आदि आदि।

दयानन्द पी.जी. कॉलेज बछरावाँ के कविमूर्धन्य यशस्वी पूर्व प्राचार्य डॉ. रामनरेश जी, सर्वोदय जनता पी.जी. कॉलेज सलोन के परम यशोधनी पूर्वप्राचार्य प्रो. जितेन्द्र बहादुर सिंह जी, साहित्य मनीषी उन्नाव-निवासी समादरणीय बन्धुवर ठा. राजेश सिंह जी, चिकित्सा क्षेत्र में परम यशस्वी लालगंज प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के पूर्व अधीक्षक डॉ. सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव जी, चैनपुर के प्रिय बन्धुवर मोहन सिंह जी तथा अपनी बहुमूल्य मर्यादित ऊर्जाप्रदायिनी गाँव की संस्कृति, जीवन्मूल्यों को अपनी सरस गीतिमञ्जूषा में संजोने वाले जनपद के कविवर श्रद्धेय कृष्णकुमार पाण्डेय जी के प्रति प्रेरणा प्रोत्साहन हेतु बहुत बहुत आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ।

रायबरेली सदर की विधायक महोदया विद्यामूर्ति अदिति सिंह जी, जनपद की सर्वविध समृद्धि में संलग्न विज्ञानविदुषी सुकीर्तिशालिनी जिलाधिकारी अभिनन्दनीया श्रीमती हर्षिता माथुरजी आई.ए.एस. तथा पूर्व जिलाधिकारी विद्यावैभव विभूषिता परम यशस्विनी माननीया श्रीमती माला श्रीवास्तवा आई.ए.एस. तथा प्रशासनिक कर्मकौशल के धनी प्रसन्न वदन श्रीमान् राकेश सिंह जी ए.डी.एम. लखनऊ के प्रति प्रेरणा प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए बहुत बहुत आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ। जिलाधिकारी कार्यालय के विद्याधनी कर्मव्रती बैसवारा कॉलेज के ही श्रेष्ठ छात्र रहे श्रीयुत महेश कुमार त्रिपाठी जी तथा संस्कृत विद्या के संरक्षण संवर्द्धन कर्म में तत्पर संस्कृत आयोग सचिवालय के विद्याप्रवीण अधिकारी डॉ. आदित्य जायसवाल जी के समुज्ज्वल यश में अभिवृद्धि होती रहे।

कर्मव्रती समयव्रती सत्संकल्पधनी दृढनिश्चयी स्वाभिमानी प्रशासनिक कर्मकौशल में अतिकुशल दक्ष पुलिस विभाग को समुज्ज्वल छवि प्रदान करने वाले उ0प्र0 के पूर्व डी.जी.पी. तथा नोएडा स्थित इण्टरनेशनल ला यूनिवर्सिटी के पूर्व कुलपति श्रीमान् विक्रम सिंह जी के प्रति तथा एक मानक-शिक्षक के रूप में शिक्षा के समुन्नयन में सतत संलग्न, समर्पित पुरुषार्थमूर्ति सम्माननीय चाचा डॉ. जगतपालसिंह तोमर जी के प्रति प्रेरणा प्रोत्साहन हेतु सम्मानभाव व्यक्त कर रहा हूँ।

अत्यन्त शुद्ध स्वच्छ टंकणकार्य के लिए अन्नपूर्णा फोटोस्टेट लंका के यशस्वी श्रीयुत मनीष गुप्त जी बहुत ही प्रशंसनीय हैं। **भारतीय विद्या संस्थान** के स्वत्वाधिकारी **श्रीयुत**

कुलदीप जैन तथा इनके कर्मकुशल आत्मज रोहित व रीतेश ने पूरी सामग्री को प्रकाशनार्थ सुव्यवस्थित सुसज्जित करा दिया है तथा कार्यभार बहुत अधिक होने पर भी श्रीयुत राकेश सिंह जी ने विशेष रुचि लेकर इस कार्य को सुसम्पन्न कर दिया है। द भारतीय विद्या के श्रीयुत राकेश जैन का सुन्दर भावनात्मक सहयोग रहा। सभी के प्रति मैं बहुत-बहुत आभारभाव प्रकाशित कर रहा हूँ।

समस्त कार्यकलापों की सम्पूर्ति के मूल में व्यक्ति का अपना परिवार ही होता है। मैं अत्यन्त भाग्यशाली, बड़भागी हूँ कि मेरा निजी तथा विद्यापरिवार दोनों ही अतीव समृद्ध सुसंस्कार सम्पन्न हैं। फलस्वरूप मैं भगवान् वेद तथा संस्कृत विद्या की उपासना सपर्या में उत्साहपूर्वक संलग्न हूँ। वर्ष 1968 से चल रहे इस महत्त्वपूर्ण मङ्गल अनुष्ठान की सम्पूर्ति पर परमपूज्य माता-पिता तथा वरिष्ठ परिवारी जनों के प्रति श्रद्धा भक्ति भाव समर्पित कर रहा हूँ। शिवोपासिका विदुषी सहधर्मचारिणी शिवसायुज्य का वरण न करके मुझमें ही समाहित देवी रजनी सिंह ही मेरी कर्मशक्ति हैं। इन्हीं के द्वारा बनाई गई स्वस्थ उदात्त परम्परा में मेरे सभी पुत्र-पुत्री, पौत्र-पौत्री, प्रपौत्र-प्रपौत्री दीक्षित हैं, कर्मपरायण हैं। अब मैं इनके ही संरक्षण में निश्चिन्त होकर कर्त्तव्य कर्म सम्पादन में संलग्न हूँ। कुँवर चन्द्रपाल सिंह-डॉ. शैलजा, विजय प्रताप-शशी, विक्रम प्रताप-वीना, गरिमा, गौरव-आभा, अनुज कुमार-श्रुति, चन्दन-गीतिका, ऋतुराज-राजलक्ष्मी, स्मृति सृष्टि, डॉ. निधि, राजराजेश्वरी इला आराध्या, ऋत्तिका-आदित्य सभी सुखी कर्मशील रहें। भगवान् वेद के अनुग्रह से सर्वविध समृद्धि से सम्पन्न रहें। परस्पर मेल-मिलाप से सद्भाव से कर्त्तव्य परायण रहें और इस तरह सनातनी परिवार का एक अनुकरणीय स्वरूप बना रहे।

देवाधिदेव महादेव विश्वेश्वर बाबा काशी विश्वनाथ तदभिन्न महाकालेश्वर उज्जैन तद्रूप बाल्लेश्वर महादेव ऐहार की इच्छा प्रेरणा प्रदत्त शक्ति से प्रारम्भ हुआ यह सारस्वत यज्ञानुष्ठान इन्हीं की इच्छा अनुग्रह से सम्पूर्णता को प्राप्त हुआ है। विलुप्त मान ली गई संहिताओं को प्रकाश में ले आने वाले इस ग्रन्थ के रूप में श्रीभगवान् वेद ने स्वयं ही अपना उद्धार कर लिया है। इन्हीं की इच्छा अनुग्रह से विलुप्त अन्य संहिताओं का उद्धार होता रहे क्योंकि वेद ही हमारी संस्कृति की प्रतिष्ठा हैं। विश्ववारा वन्दनीया इसका स्वरूप है—

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा
एतच्छिवकर्म शिवार्पणम्

जनक-शिवराजभवन **अमलधारी सिंह गौतम**

साकेतनगर, लालगंज, रायबरेली
भाद्रशुक्ल श्रीगणेश चतुर्थी, मङ्गलवार,
वि.सं. 2080, 19 सितम्बर, 2023

सनातनी भारतीय संस्कृति के महान् संरक्षक एवं संवर्द्धक

अलवर राज्याधीश

श्रीमन्महाराजाधिराजमहारावराजा

श्रीसवाई विनयसिंहजूदेव

१८१४-५७

H.H. Raj Rishi Shri Sawai Maharaja Jitendra Singh Virendra

Shiromani Dev Bharat Dharma Prabhakar

9th Maharaja of Alwar

Since 15 Feb. 2009

विषयानुक्रमणिका

पुरोचना	अ
सम्पादकीय	आ
शुभाशीर्वचन– प्रो० विजय कुमार शुक्ल	i
आमुख– प्रो० विरूपाक्ष वी० जड्डीपाल	ii-iii
नान्दीवाक्– प्रो० अभिराजराजेन्द्रमिश्र	iv-v
अभिनन्दन– प्रो० ओमप्रकाश पाण्डेय	vi-viii
पुरोवाक्– प्रो० देवीप्रसाद त्रिपाठी	ix
आशीर्वचन– प्रो० विजयकुमार मेनन	h
शुभाशंसा– डॉ० कामेश्वर उपाध्याय	h
Rgveda– Prof. Ramjee Singh	h

भूमिका 1

(अ) वेदों का स्वरूप एवं महत्त्व	3
(आ) वेदों की अभिव्यक्ति	14
(इ) वेद-लक्षण	15
(ई) वेदों का अपौरुषेयत्व	18
(उ) शब्द-नित्यत्व	21
(ऊ) मन्त्रों की अर्थवत्ता	23
(ऋ) वेदों का स्वतः प्रामाण्य	27
(ए) वेदनिधि का विभाजन एवं महर्षि वेदव्यास	30
(ऐ) वेदों की उपलब्ध शाखाएँ	34
(ओ) वेदों के प्रथमप्रकाशन	36

प्रथमाध्याय

ऋग्वेद का स्वरूप एवं शाखाएँ

ऋग्वेद का स्वरूप	39
वेदशाखा का अभिप्राय	45
वैदिक वाङ्मय में वेदशाखा-सन्दर्भ	48

पुराण वाङ्मय में वेदशाखा-निरूपण 51
बादरायणकृष्णद्वैपायन वेदव्यास की शिष्य-परम्परा 55
पुराणों में वेदशाखा 59
अन्य ग्रन्थों में वेदशाखा-सन्दर्भ 61
ऋषि पैल एवम् उनकी शिष्यपरम्परा 64
ऋग्वेद के प्रमुख प्रकाशन 67

द्वितीयाध्याय 69

ऋग्वेद की शाकलसंहिता का स्वरूप

आचार्य शाकल का ऋषित्व 71
वेद की संहिताओं का प्रकाशन 72
वेदों के प्रथम प्रकाशन 73
ऋग्वेद = मण्डलक्रम संघटन 74
शाकलसंहिता का प्रकाशन 75
मैक्समूलर प्रयुक्त पाण्डुलिपि विवरण 76
ऋक्संहिता में ऋचाओं की संख्या 78
शाकलसंहिता का विभाजन : संघटन 79
वालखिल्यसूक्त 80
मण्डलक्रम-विभाजन 81
सोम/पवमानमण्डल 81
दशम मण्डल की अर्वाचीनता 82
ऋग्वेद में अध्यात्म 83
ऋग्वेद की व्याख्या-परम्परा 86
ऐतरेय ब्राह्मण 87
ऐतरेयारण्यक 88
ऐतरेयोपनिषद् 89
ऋग्वेद का काव्य-सौन्दर्य : अपौरुषेय काव्य 90
ऋग्वेद के भाष्यकार 94
पश्चिम में वेदाध्ययन का स्वतन्त्रचिन्तन 108
वेद-निधि प्रकाशन में पाश्चात्य विद्वानों का योगदान 109

तृतीयाध्याय 117

ऋग्वेद की बाष्कल-संहिता का स्वरूप

आचार्य बाष्कल का ऋषित्व	119
बाष्कल-संहिता विषयक सन्दर्भ	122
बाष्कलमन्त्रोपनिषद्	127
बाष्कलसंहिता स्थित अतिरिक्त संज्ञानसूक्त	130
शाकल एवं बाष्कलसंहिता का स्वरूप	131
शाकल तथा बाष्कलसंहिताओं के प्रथममण्डल में सूक्तों का क्रम	132
बाष्कलसंहिता में वालखिल्यसूक्तों की स्थिति	134
वालखिल्यसूक्तानि	135
वालखिल्यस्वरूप	138
वालखिल्य ऋचाओं का विनियोग	138
वालखिल्य ऋचाओं का महत्त्व एवं विनियोग-विधान	139

चतुर्थाध्याय 173

ऋग्वेद की आश्वलायनसंहिता का स्वरूप

आचार्य आश्वलायन का ऋषित्व	145
आश्वलायनशाखा की प्राप्त पाण्डुलिपियों का विवरण	150
आश्वलायन तथा शाङ्खायनशाखाओं की उपलब्धि	152
पाण्डुलिपियों का स्वरूप	152
राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में सुरक्षित पाण्डुलिपियों का विवरण	155
आश्वलायनसंहिता का प्रकाशन	158
आश्वलायनसंहिता का स्वरूप	163
शाकलसंहिता से आश्वलायन में विद्यमान अतिरिक्त मन्त्रों का विवरण	164
महानाम्नी ऋचाएँ	168
आश्वलायनसंहिता में शाकल से अतिरिक्त मन्त्र	174

पञ्चमाध्याय 191

ऋग्वेद की शाङ्खायनसंहिता का स्वरूप

आचार्य शाङ्खायन का ऋषित्व	193
शाङ्खायनसंहिता की उपलब्धि	195
राजस्थान अलवर पैलेस में सुरक्षित पाण्डुलिपियों का विवरण	196

शाङ्खायनसंहिता : श्रुतिपरम्परा में सुरक्षित	199
शाङ्खायनसंहिता का प्रकाशन	199
शाङ्खायन विषयक सन्दर्भ	200
शाङ्खायन शाखा का वैशिष्ट्य	201
वालखिल्यसूक्त	203
महानाम्नी	203
मन्त्र-संख्या	203
शाकलसंहिता से शाङ्खायन में विद्यमान अतिरिक्त मन्त्रों का विवरण	204
शाङ्खायन : वैदिक वाङ्मय की समृद्धतम शाखा (संहिता ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद्-श्रौत-गृह्यसूत्र)	205
ऋग्वेद : शाङ्खायन शाखीय प्रकाशन	208
ऋग्वेद-शाखाविषयकप्रकाशित निबन्ध	209
शाङ्खायन-संहिता में अतिरिक्त मन्त्रों का विवरण	210
शाङ्खायन संहिता में खिलमन्त्रों का विवरण	215
उपसंहार	**222**
ग्रन्थ-परिशिष्ट	**227**
ऋग्वेद-शाखा विषयक प्रकाशित निबन्ध	228
Śākhās of the Ṛgveda	228
ऋग्वेद-शाखा विमर्श	231
Bāṣkala Saṁhitā of the Ṛgveda	243
Śākhās of the Ṛgveda	247
ऋग्वेदस्य अप्रकाशितशाखानां विवरणम्	258
ग्रन्थ-विद्या	263
परिचयी = चित्रविथिका	267

भूमिका

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु

(ऋ. १. ८९. १)

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ ऋच॒: सामा॑नि जज्ञिरे।
छन्दां॑सि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत॥

(ऋ. १०.९०.९; शु.यजु. ३१.७; अथर्व. १९.६.१३)

यस्मा॒दृचो॑ अ॒पात॑क्ष॒न् यजु॒र्यस्मा॑द॒पाक॑षम्।
सामा॑नि॒ यस्य॒ लोमा॑न्यथर्वाङ्गि॒रसो॒ मुख॑न्।
स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥

(अथर्व. १०.७.२०)

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्।
यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः॥

(बृहदा. २.४.१०)

वेदों का स्वरूप एवं महत्त्व

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। शु.यजु. 7.14

वेद भारतीय वाङ्मय के उपलब्ध प्राचीनतम प्रशस्ततम समृद्धतम सर्वोत्कृष्ट अनुपम हीरक ग्रन्थ हैं। ये वेद पुरुषों द्वारा प्रणीत पौरुषेय नहीं, अपितु सत्यधर्मा प्रातिभदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत, अत एव अपौरुषेय हैं। गृत्समद-विश्वामित्र-वामदेव-अत्रि-भरद्वाज-वसिष्ठ-कण्व-अङ्गिरादि ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं। अपनी सतत साधना तपश्चर्या तथा परमेश्वर-प्रदत्त दिव्य दृष्टि से इन्होंने दिव्य तत्त्वों का प्रत्यक्ष दर्शन किया है, इसीलिए इनकी संज्ञा 'ऋषि' है—

ऋषिर्दर्शनात्। ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।
साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः॥ निरुक्त. 1.6

इस प्रकार ऋषियों द्वारा प्रत्यक्षीकृत विमल ज्ञानराशि ही वेद हैं। सत्यधर्मा तपोनिधि ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत होने से यह ज्ञानराशि सकलदोष विनिर्मुक्त अनवद्य सर्वथा प्रामाणिक है। अतः इन वेदों का स्वतः प्रामाण्य है-

(वेदानां) निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्। सांख्यसूत्र, 5.51

इसीलिए ये वेद परा-अपरा उभय विद्याओं से संवलित सकल ज्ञान-विज्ञान के पूर्ण अनुपम निधान हैं—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, सर्वज्ञानमयो हि सः। मनु. 2.6, 7

स्थूल-सूक्ष्म, समीपस्थ-विप्रकृष्ट, व्यवहित-अन्तर्हित, अतीत-वर्तमान-अनागत त्रैकालिक समस्त विषयों के सुप्रकाशक सनातन चक्षु हैं—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति॥ मनु0 12.94; 97

प्रत्यक्ष तथा अनुमानादि प्रमाणों से अज्ञेय, ज्ञात न होने वाले विषयों का भी सम्यक् बोध, परिज्ञान वेदों द्वारा होता है, यही है वेदों का वैशिष्ट्य, अनुपमेयता—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

वेद ही हमारी सनातनी भारतीय संस्कृति की मूल प्रतिष्ठा हैं। संस्कृतिरूपी सुभव्य विशाल प्रासाद वेदरूपी मूल नींव पर सुप्रतिष्ठित है और सुदूर प्राचीनकाल से यह संस्कृति अन्य संस्कृतियों के अत्यन्त प्रबल प्रहारों के बाद भी अक्षुण्ण रूप से और भी अधिक ओजस्वित होती हुई भगवती भागीरथी के अविरल अजस्र प्रवाह की भाँति प्रवाहित होती हुई चली आ रही है। इस संस्कृति के सुरक्षित बने रहने के संबल हेतु आधार तो वेद ही हैं। यही वेद इस संस्कृति के समुज्ज्वल स्वरूप को सुप्रकाशित करने वाले स्वच्छ विमल दर्पण हैं और इन्हीं वेदों के कारण हमारी भारतीय संस्कृति विश्ववारा विश्ववन्दनीया है—

सा प्र॒थ॒मा सं॒स्कृ॑ति॒र्वि॒श्ववा॑रा। शुक्ल यजु. 7.14

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ मनु. 2.20

सम्पूर्ण मानव जीवन इन वेदों से सर्वतोभावेन सम्बद्ध ओत-प्रोत परिव्याप्त है,कुछ भी वेदबाह्य नहीं है। यही वेद पुरुषार्थ- सम्पादक परम महौषधि हैं। इनमें एक-एक दिन का खण्ड-खण्ड विभाजन करके नहीं, अपितु मानव-जीवन की समग्रता सम्पूर्णता पर चिन्तन किया गया है। ये वेद सुखपरिपूर्ण परम आह्लादमयी एक सुव्यवस्थित समन्वित परिपूर्ण जीवनपद्धति का प्रतिपादन करते हैं। इस लोक में केवल वर्तमान कालीन सुख ही काम्य नहीं है, अपितु भावी जन्म में जीवन और भी अधिक आह्लादमय होवे, यही अभीष्ट है। इस तरह ये वेद अभय होने का,अमृतत्व-प्राप्ति का संविधान प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि हम तो मूलतः अमृतपुत्र हैं—

अ॒मृत॑स्य पु॒त्राः। ऋ. 10.13.1

वेदों का कल्याणकारी स्वरूप

व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र एवं विश्वमानवता के हितसाधक

वेद व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र एवं विश्वमानवता के स्वस्थ स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं और एतदर्थ उदात्त मानव जीवन्मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं और इस प्रकार व्यष्टि तथा समष्टि सभी के कल्याणहेतु सन्मार्ग का निर्देशन करते हैं।

व्यक्तिगतकल्याण

मनुष्य जगत्स्रष्टा परमेश्वर की सर्वोत्तम सृष्टि है। भगवान् मनु का उच्च उद्घोष है कि मनुष्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है—

नहि मानुषात्श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्। महाभा.शा. 180.12

भगवती श्रुति का भी मनुष्य बनने के लिए उपदेश वचन हैं—

मनुर्भव। ऋ. 10.53.6

पूर्णपुरुष परमात्मा की ही अभिव्यक्ति होने से मनुष्य भी स्वरूपतः पूर्ण है, उसमें तीन शक्तियाँ संनिहित हैं—

1. विश्वायुः 2. विश्वकर्मा तथा 3. विश्वधात्री।

स्वयं अपने में ही निहित अपनी इन शक्तियों का बोध मनुष्य को होना चाहिए। साथ ही मनुष्य का यह जीवन निष्प्रयोजन नहीं, सप्रयोजन है। यह मनुष्य अपने परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व मानवता के साथ ही स्वयं अपने लिए उपयोगी बन सके, एतदर्थ ऋषियों के प्रभूत उपदेश वचन हैं। ऋषि मानव शरीर की दिव्यता का बोध कराते हैं—

अ॒ष्टाच॑क्रा॒ नव॑द्वारा दे॒वानां॒ पूर॑यो॒ध्या। अथर्व. 10.2.31

हमारा यह शरीर अपराजेय तेजोमयी देवपुरी अयोध्या है, इसी शरीर में सभी देवता निवास करते हैं। जन्म से सहज ही सभी मनुष्यों को सम्प्राप्त यही स्वराज्य है और आत्मा ही महादेव इसका राजा है। इसलिए इस शरीर की स्वच्छता पावनता अपने सत्कर्मों सदाचरणों सद्विचारों सच्चिन्तनों से बनाए रखना चाहिए। हमारा यही मानवशरीर तीर्थभूमि, ऋषिभूमि और यही यज्ञशाला है—

इयं ते यज्ञिया तनूः।

इसमें अविच्छिन्न रूप से निरन्तर यज्ञ चल रहा है। यथा सूर्याग्नि में सोमाहुति, उसी प्रकार जठराग्नि में अन्नाहुति पड़ रही है। इसी यज्ञ के कारण शरीर की स्थिति बनी हुई है। इसीलिए यह जगत् अग्नीषोमात्मक है।

यह मानव शरीर कर्मभूमि है। कर्म करना मनुष्य का सहज स्वभाव है। कर्त्तुम्, अकर्त्तुम्, अन्यथाकर्त्तुम् रूप से मनुष्य का कर्म स्वातन्त्र्य है। सिद्धिः कर्मजा, कर्म से ही जीवन में समृद्धि मिलती है। इसलिए सतत सत्कर्म सम्पादनार्थ ऋषि का प्रेरणात्मक वचन है—

कु॒र्वन्नेवेह कर्मा॑णि जिजीवि॒षेच्छ॒तं समाः। शु.यजु. 40.2

नियत समय पर निर्धारित संकल्पित कर्म को अवश्य करना चाहिए, उसे कभी भविष्य के लिए नहीं टालना चाहिए, क्योंकि कल को कौन देखता है—

न श्वः श्वमुपासीत्। शतपथ. 2.1.3.9

चरैवेति चरैवेति। ऐतरेय ब्रा. 33.3

रूप से अनवरत सत्कर्म करते रहने के लिए सुन्दर प्रेरणा दी गई है। स्वकृत सत्कर्म से उत्तरोत्तर आरोहण अभ्युत्थान होता है और इस प्रकार जीवन में सफलता स्वयं के ही अधीन है—

आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्।
उद्यानं ते पुरुष नावयानम्। अथर्व. 5.30.7, 8.1.6

इस प्रकार सर्वविध अभ्युदयहेतु सत्कर्म सम्पादन पर बल दिया गया है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। अथर्व. 7.50.8

लौकिक जीवन में सुखमय जीवन यापनहेतु धनार्जन आवश्यक है, पर शोभन मार्ग द्वारा। इसीलिए अग्निदेव से धनार्जनहेतु सन्मार्ग से ले जाने के लिए प्रार्थना है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्। ऋ. 1.182.1

मनुष्य को सदैव शुभकर्म ही करना चाहिए, कभी अशुभ नहीं—

ऋतस्य पथा प्रेत। शु.यजु. 7.45

असन्मार्ग निवृत्तिपूर्वक सत्पथप्रवृत्तिहेतु ऋषि का परामर्श है-

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व। ऋ. 10.34.13

अनिष्टकारिणी द्यूतक्रीडा परिवर्जनीय है तथा अभीष्ट साधिका उत्तम धान्यवाली कृषि कर्म करणीय है। इस प्रकार स्वकीय कर्म पुरुषार्थ पर बल है तथा सत्कर्म द्वारा अर्जित धन का वितरण कर देना चाहिए—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर। अथर्व. 3.24.5

मित्र को देने वाला ही वास्तव में सच्चा मित्र है और स्वयं एकाकी उपभोग करने वाला तो केवल पाप का भागी बनता है—

न स सखा यो न ददाति सख्ये।
केवलाघो भवति केवलादी॥ ऋ. 10.117.4; 6

इसलिए परस्पर आदान-प्रदानहेतु ऋषि का उपदेश वचन है

देहि मे ददामि ते। शु.यजु. 3.50

परिवार कल्याण

सच्चा वास्तविक लौकिक सुख तो परिवार में ही है। परिवार में सुख-शान्ति एवं कल्याण के लिए संज्ञान-सांमनस्य सूक्तों में ऋषियों के सुन्दर उदात्त आचरणीय उपदेश

वचन हैं। पुत्र सदैव माता-पिता का आज्ञाकारी होवे, एक भाई दूसरे भाई से द्वेष-कलह न करे और इसी प्रकार एक बहन दूसरी बहन के साथ। माता सभी सन्ततियों के लिए समान मान स्नेह वात्सल्यभाव वाली होवे। पत्नी पति के प्रति सदैव सुखमयी मधुर वाणी बोले। इस प्रकार परिवार के सभी सदस्य सम्प्रीति सौहार्द्र सौमनस्य भाव से परस्पर सहयोगपूर्वक मिलकर विहित कर्त्तव्यों का पालन करें—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ अथर्व. 3.30.1,2
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। ऋ. 10.191.2

माता-पिता, आचार्य एवम् अतिथि के प्रति दैवत पूजनीय भाव होना चाहिए। ये सभी प्रत्यक्ष देवता हैं। इनकी प्रसन्नता सन्तुष्टि से सर्वविध कल्याण समृद्धि की प्राप्ति होती है—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।
अतिथिदेवो भव।
मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।

इस तरह ऋषि ने अत्यन्त सुखपरिपूर्ण आह्लादमयी जीवन-पद्धति प्रस्तुत की है। सारा सुख तो परिवार में ही है—

क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे। ऋ. 10.85.42

गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों की प्रतिष्ठा है और इस आश्रम तथा सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार प्रतिष्ठा है गृहपत्नी। जाया ही घर है, वही कल्याणी गृहलक्ष्मी है—

जायेदस्तम्। कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते। ऋ. 3.53.4, 6

वह पुरुष की शक्ति परिपूर्णता सह-धर्मचारिणी है। यज्ञादि कोई धार्मिक अनुष्ठान उसके बिना सम्भव ही नहीं है—

अयज्ञो ह्येष यदपत्नीकः।

वह दुरित निवारिणी सुमङ्गली यशस्विनी है तथा सभी के लिए कल्याणकारिणी है—

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव॥ अथर्व. 14.2.27

उत्तम शिक्षा-दीक्षा तथा सत्कर्म के प्रभाव से वह सभी की सम्राज्ञी बनती है—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ ऋ. 10.85.46

इस तरह ऋषि ने एक सुख परिपूर्ण आह्लाद आनन्दमय स्वस्थ पारिवारिक वातावरण को प्रस्तुत किया है।

मानव-समाज एवं राष्ट्र-भावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज का एक अभिन्न अङ्ग है। एकाकी कोई जीवन नहीं है। मनुष्य समाज में रहता है, संरक्षण पाता है, उसका संवर्द्धन होता है। इस तरह वह समाज का ऋणी होता है। वैदिक समाज में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषादादि वर्णों-उपवर्णों की जन्मना तथा कर्मणा भी स्थिति रही है, पर यह संरचना सामाजिक व्यवस्था के सुचारु सम्पादनहेतु रही है। सभी मनुष्य परमात्मा की ही अभिव्यक्ति हैं। अतः सभी सम्माननीय आदरणीय हैं। सभी की समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं। वर्णगत जातिगत भेदभाव न होवे, सभी को साथ-साथ रहने की, मिल-जुलकर कार्य करने के लिए ऋषि का उदात्त उपदेश है। सभी मनुष्यों का भोजन-पानादि साथ-साथ होवे, खाद्यान्न का समभाव से वितरण होवे—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः। अथर्व. 3.30.6

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। ऋ. 10.191.2

समरसता सौहार्द्रहेतु परस्पर मित्रवत् आचरण करना चाहिए—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। शु.यजु. 36.18

और इस प्रकार सर्वतोभावेन परस्पर संरक्षण की बात कही गई है—

पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः। शु.यजु. 29.51

बिना किसी भेदभाव के सभी के आदर सम्मान पर बल दिया गया है—

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो।

नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमः॥ शु.यजु. 16.27

इस प्रकार वेदों में एक समरसता समतामूलक समसुख-दुःखभागी मानव समाज के स्वस्थ स्वरूप की सुन्दर प्रस्तुति है।

समष्टिगत कल्याण की भावना

वैदिक ऋषि समष्टिगत कल्याण की कामना करते हैं तथा सह अस्तित्व सहचारित्व पर बल देते हैं। स्व की अपेक्षा सर्वम् विश्वभाव पर प्रकर्ष है। यह सद्भाव सह अस्तित्व संरक्षण का भाव केवल चेतन मानवों के प्रति ही नहीं, अपितु मानवेतर सम्पूर्ण प्राणिजगत् पशु-पक्षी जगत् लतावनस्पति जगत् सभी के हित-रक्षण कल्याण सिद्धि की बात ऋषिजन करते हैं, क्योंकि सृष्टि में जो कुछ भी है, सर्वत्र ईश्वर का वास है। चेतनाचेतन सभी उसी की विभूति हैं, सभी में वह अनुस्यूत ओत-प्रोत परिव्याप्त है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्॥ ऋ. 1.115.1; 10.90.2

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्। शु.यजु. 40.1

अतः सभी के प्रति आत्मभाव होना चाहिए। अचेतनों की भी दैवतभाव से पूजा की गई है। इस तरह सभी के सुख एवं रक्षण की कामना की गई है—

मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु।

स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः॥ अथर्व. 1.31.4

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः। शु.यजु. 16.17

राष्ट्रिय-भावना

राष्ट्र की रक्षा एवं समृद्धि में स्वयं की रक्षा एवं समृद्धि तथा मान-सम्मान है। ऋषि ने उदात्त राष्ट्रिय भावना एवं मातृभूमि प्रेमहेतु सुन्दर प्रेरणा प्रदान की है—

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः। शु0 यजु0 9.23

उप सर्प मातरं भूमिम्। ऋ. 10.18.10

नमो मात्रे पृथिव्यै। शु. यजु. 9.22

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। अथर्व. 12.1.12

अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त तो राष्ट्रिय भावना तथा मातृभूमि प्रेम को प्रबल रूप में प्रस्तुत करता है।

विश्वमानवता

वेद विश्व-मानुष की प्रतिष्ठा करते हैं। सर्वविध भेदभाव विरहित समग्र विश्व एक परिवार है—

यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। शु.यजु. 32.8

सर्वं खल्विदं ब्रह्म। छान्दोग्यः 3.14.1

समष्टिगत कल्याण की कामना वैदिक संस्कृति की विशेषता है और यही हमारे ऋषियों का उदात्त चिन्तन है। शान्तिपाठ में इस भाव का सुष्ठु प्रकाशन है—

ॐद्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिः ....

और इसीलिए यह संस्कृति विश्ववारा विश्वबन्द्या है—

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। शु.यजु. 7.14

पर्यावरण संरक्षण

भौतिक के साथ ही आन्तरिक पर्यावरण संरक्षण पर ऋषियों का विशेष बल है। ऋग्वेद तो मुख्यरूप से प्राकृतिक शक्तियों की दैवतभाव से उपासना है। नदियों, वन-वृक्षों, वनस्पतियों को देवता माना गया है। यह प्रकृति जड़ अचेतन नहीं, अपितु चेतन संवेदनशील है। यह सहज रूप से उपकारिणी वरदायिनी संरक्षिका है और पञ्चमहाभूत विनिर्मित इस मानव शरीर का यह प्राकृतिक पर्यावरण सुरक्षा-कवच है। इस पर्यावरण के रक्षण का अभिप्राय है स्वयं की रक्षा, समग्र विश्वमानवता की रक्षा। अतः यह प्रकृति उपास्या पूजनीया है, वश्या नियम्या नहीं।

परमपुरुषार्थ सिद्धि

समष्टिगत कल्याण के लिए ऋषिजन त्याग मार्ग के आश्रयणहेतु उपदेश देते हैं। अर्थसंग्रह से किसी को सन्तृप्त नहीं किया जा सकता है और त्याग से तो अमृतत्व की प्राप्ति हो जाती है—

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। कठ. 1.1.27
किमहं तेन कुर्यां येनाहं नामृता स्याम्। बृहदा. 2.4.3
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः। ईश. 1
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

विश्वायु-विश्वकर्मा-विश्वधात्री- तीन शक्तियाँ हम मनुष्यों को परमेश्वर द्वारा प्रदत्त हैं और परमेश्वर की ही अभिव्यक्ति होने से हम स्वरूपतः अमृत हैं, मरणशील नहीं—

अमृतस्य पुत्राः। ऋ. 10.13.1

और इसी अमृत स्वरूप की सम्प्राप्ति मानव जीवन का परम प्रयोजन है, यही है मोक्ष। मोक्ष में किसी नवीन तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती। यह अप्राप्त की प्राप्ति नहीं है, अपितु पूर्वतः प्राप्त का बोध हो जाना है, विस्मृति की पुनः स्मृति है। अपने मौलिक स्वरूप का साक्षात्कार हो जाना है। इसलिए आत्मस्वरूप साक्षात्कारहेतु महर्षि याज्ञवल्क्य का उपदेश है—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः। बृहदा., 2.4.5

तथा अयमात्मा ब्रह्म। बृहदा. 2.5.19, तत्त्वमसि छान्दोग्य, 6.8.16

अहं ब्रह्मास्मि। बृहदा. 4.4.10;

सर्वं खल्विदं ब्रह्म। छान्दोग्य, 3.14.1

इत्यादि महावाक्यों का अभिप्राय ही स्वरूप साक्षात्कारपूर्वक मोक्ष की सिद्धि है और वेद शब्द के निर्वचन से ही पुरुषार्थ सिद्धि में वेदों की साधनता का सुष्ठु प्रकाशन होता है—

विदन्त्येभिर्धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेदाः।
विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वैभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः॥

विविधविद्या-प्रज्ञापक

वेद केवल आध्यात्मिक एवम् आधिदैविक विषयों के ही ज्ञापक नहीं हैं, अपितु आधिभौतिक विषयों के भी बोधक हैं। कृषि- वाणिज्य, उद्योग धन्धे, वनस्पति विज्ञान, भैषज्यविज्ञान, शिल्पविज्ञान, विविध कलाओं के साथ ही भौतिकविज्ञान विषयक सामग्री से संवलित हैं। गणित-ज्योतिष-खनिज-रसायन-अन्तरिक्ष विज्ञान, सृष्टि विज्ञानादि अत्यन्त गूढ़ रहस्यात्मक तत्त्वों से संवलित हैं।

अनन्ता वै वेदाः

वचन सर्वथा सार्थक है। भगवान् मनु ने वेदों को सर्वज्ञानमय तथा महर्षि दयानन्द ने समस्त सत्य विद्याओं का आकर कहा है। काव्य की दृष्टि से वेद अनुपम बेजोड़ है। सम्पूर्ण विश्व का प्रथम काव्य तो ऋग्वेद ही है, इसका प्रारम्भ ही अलंकार अलंकृत छन्दोबद्ध अग्निदेव की स्तुति स्वरूप चित्रण से होता है—

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तम्। 1.1.1

और सुषमा सौन्दर्य की देवी लावण्यमयी उषस् के चित्रण में ऋषि का मन खूब रमा है—

विश्व॑मस्या नाना॒म् चक्ष॑से॒ जग॒ज्ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑। 1.48.8

कवि को मनीषी स्वयम्भू प्रजापति कहा गया है और काव्य तो नित्य है, इसकी केवल अभिव्यक्ति होती है—

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः। ईश., 8

दे॒वस्य॑ पश्य॒ काव्यं॒ न म॑मार॒ न जी॑र्यति। अथर्व., 10.8.32

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से वेदों का विशेष महत्त्व है। विश्व की सर्वप्राचीन भाषा के निदर्शन तो वेद ही हैं।

इस प्रकार धर्म-दर्शन, आचार-विचार, कर्त्तव्याकर्त्तव्य तथा विविध विद्याओं के

बोधहेतु वेदाध्ययन आवश्यक है। वेद-प्रतिपादित जीवन-दर्शन व्यक्तिपरक न होकर समष्टिपरक समाजनिष्ठ सर्वहित सम्पादक है। यह मानव-समाज को एकसूत्र में संग्रथित करने वाला है। विश्वबन्धुत्वभाव तथा सभी के सुख की कामना तो वैदिक ऋषियों का ही चिन्तन है।

वेदों की प्रासङ्गिकता : कल्याणी वाणी

भौतिक विज्ञान के परम प्रकर्ष इस वर्तमान युग में भी वेदों का अध्ययन सर्वथा प्रासङ्गिक एवम् उपयोगी है और इनके अध्ययन में सभी का अधिकार है, भेदभाव विरहित सर्वहित सम्पादिका सभी के लिए यह कल्याणी वाणी है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥ शु.यजु. 26.2

वेदों के उपदेश वचन प्रभुसम्मित हैं, सुस्पष्ट निर्देश देते हैं। कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध कराते है। इनके उपदेश सम्पूर्ण मानवता के लिए हैं। सार्वकालिक सार्वभौम सार्वजनीन हैं। व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र एवं विराट् विश्व मानवसमाज के स्वस्थ सुन्दर स्वरूप निर्माण में तथा कल्याणसाधन में इन वेदों की महनीय भूमिका है। इसीलिए आचार्य सायण ने वेदाध्यायी की प्रशंसा और मनु ने वेद अनाध्यायी की कटु निन्दा भर्त्सना की है। महर्षि याज्ञवल्क्य तथा महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि ने वेदाध्ययन का विधान किया है तथा उनमें निहित ज्ञानराशि के बोध पर विशेष बल दिया है—

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। अहरहः स्वाध्यायमुपासीत्।
ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च॥

और वेद तो भारतीय संस्कृति के सर्वस्व मूलाधार हैं। इन्हीं के कारण यह संस्कृति विश्ववारा विश्वबन्द्या है तथा राष्ट्र सुरक्षित है—

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। शु.यजु., 7.14

भारतीय वाङ्मय की इस प्राचीनतम ज्ञाननिधि के प्रति सम्पूर्ण विश्व के प्रथम संस्कृत ग्रन्थ ऋग्वेद के प्रथम सम्पादक एवं प्रकाशक प्रो० मैक्समूलर ने अपने स्वच्छ उदात्त हृदयोद्गार को अभिव्यक्त किया है—

They (Vedas) are the oldest books in the library of mankind......The oldest literary monument of the Indo-European world.

In the History of the World, the Veda fills a gap which no literary work in any other language could file.

Preface Ṛgveda, Oct. 1849.

I maintain, then, that for a study of man, or, if you like, for a study of Aryan humanity, there is nothing in the world equal in importance with the Veda. I maintain that everybody who cares for himself, for his ancestors, for his history, or for his intellectual development, a study of Vedic literature is indispensable.

India : what can it teach us. p. 72

Veda is the first book of Aryan nations.

The Vedas, p. 4, Lecture delivered on March 1865.

वेदों की अभिव्यक्ति

वेद नित्य हैं, फिर भी परमेश्वर के निःश्वास से इनकी अभिव्यक्ति हुई है। सहजरूप निःश्वास प्रक्रिया की तरह इनकी अभिव्यक्ति है। सनातन भारतीय संस्कृति में तपश्चर्या का विशेष महत्त्व है। तपश्चर्या से प्रजापति ब्रह्मा में शक्ति का उपबृंहण होता है और शक्ति संवलित होकर वे सृष्टि की रचना करते हैं। वेदों की अभिव्यक्ति में भी तपश्चर्या हेतु है। देवताओं के पितामह ब्रह्माजी स्वयं पहले तप करते हैं, तदनन्तर उनके मुखों से अङ्गों सहित वेदों का आविर्भाव होता है- ऐसा मत्स्यपुराण का वचन है—

तपश्चकार प्रथमममराणां पितामहः।
आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गक्रमाः।
अनन्तरश्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तत्र विनिःसृताः॥ 6.2-4

पितामह ब्रह्मा से वेदों की अभिव्यक्ति का सुन्दर निरूपण श्रीमद्भागवतपुराण प्रस्तुत करता है।[1] परमेष्ठी ब्रह्माजी सृष्टि की रचनाहेतु एकाग्रचित्त हुए। उनके हृदयाकाश में प्रथमतः अनाहत नाद उत्पन्न हुआ। पुनः इसी नाद से अकार-उकार-मकार रूप त्रिमात्रात्मक त्रिवृत् ओङ्कार उद्भूत हुआ—

ततोऽभूत्त्रिवृदोङ्कारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट्। 12.6.39

यह ओङ्कार परमात्मा का वाचक है, इसी के द्वारा उनके स्वरूप का बोध होता है। इसी ओङ्कार की शक्ति से अव्यक्त प्रकृति व्यक्त होती है। यह ओङ्कार परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् वाचक है तथा यही सम्पूर्ण मन्त्रों, वेदों तथा उपनिषदों का सनातन बीज है। इसी ओङ्कार से भगवान् ब्रह्मा ने स्वर-व्यंजनरूप सम्पूर्ण वर्णमाला, अक्षर समाम्नाय को उत्पन्न किया। इसी ओङ्कार से ब्रह्माजी ने अपने चारों मुखों से यज्ञ के चार ऋत्विजों होता- अध्वर्यु- उद्गाता तथा ब्रह्मा के लिए कर्मज्ञापक चारों वेदों ऋक्-यजुस् -साम तथा अथर्ववेद को व्याहृतियों सहित उत्पन्न किया—

तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः।
सव्याहृतिकान् सोङ्कारांश्चातुर्होत्रविवक्षया:॥ 12.6.44

वेदों को अभिव्यक्त करने के बाद ब्रह्माजी ने उन वेदों को अपने पुत्रों मरीचि

1. भागवत 12.6.39-44

आदि ब्रह्मर्षियों को पढ़ाया और वेदाध्ययन में कुशल निष्णात होकर इन्होंने अपने पुत्रों को पढ़ाया। इस प्रकार पिता-पुत्र-पौत्रों, गुरु-शिष्य-प्रशिष्यों की अत्यन्त उदात्त प्रशस्त श्रुतिपरम्परा में ब्रह्माजी के श्रीमुख से अभिव्यक्त वेद अद्यावधि अक्षुण्ण रूप में चले आ रहे हैं—

पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन् ब्रह्मकोविदान्।
ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन्॥ 12.6.45

एक युग से दूसरे युग में भी इनकी स्थिति बनी रहती है। महाप्रलय काल में भी इनका विनाश नहीं, तिरोधान होता है तथा नवीन युग में पूर्ववत् ब्रह्माजी के मुख से इनकी अभिव्यक्ति हो जाती है। इस तरह वेद नित्य हैं।

वेद-लक्षण

वेदः = विद् + अच्। ज्ञानार्थक विद् धातु से अच् प्रत्यय के योग से यह वेद शब्द निष्पन्न है। यह विद् धातु 4 अर्थों वाली है—

विद् ज्ञाने सत्तायां विचारणे लाभे।
विद् ज्ञाने वेत्ति धातुपाठ 1064; विद् सत्तायां विद्यते 1171
विद् विचारणे विन्ते 1451; विद्लृ लाभे विन्दति 1433
सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नमशेष्विदं क्रमात्।

महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्दसरस्वती 4 अर्थों वाली इस विद् धातु से अतिरिक्त धातुपाठ 1709 में स्थित 'विद् चेतनाख्याननिवासेषु' अर्थवाली विद् धातु से भी इस वेद शब्द की निष्पत्ति करते हैं और निर्वचन प्रस्तुत करते हैं—

वेद्यते निवसति सर्वो देवगणः पाठकशरीरे येन।
चेत्यते ज्ञायते धर्मब्रह्मतत्त्वं येन।
आख्यायते रामकृष्णादिचरितजातं येन स वेदः।

और इस आधार पर यह ऋग्वेद में श्रीराम एवं श्रीकृष्ण के चरित्र को तथा ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं—

विद् सत्तायां सत् विद् चेतनाख्यान चित्
तथा विद्लृ लाभे आनन्द

ऋषि दयानन्द ने वेद शब्द का निर्वचन इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति।
विन्दन्ति अथवा विन्दन्ते लभन्ते विन्दन्ति
विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वा विद्या यैर्येषु वा
तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः। ऋ.भा.भू.

विद् ज्ञाने विद् सत्तायां विद्लृ लाभे विद् विचारणे धातु से करण- अधिकरण - भाव अर्थ में यह वेदशब्द निष्पन्न है।

वेद मानव-जीवन से सर्वतोभावेन सम्बद्ध हैं और यह जीवन सप्रयोजन है, निष्प्रयोजन नहीं। वेद जीवन के सर्वविध प्रयोजनों के सम्पादक हैं। इसी दृष्टि से वेद शब्द की अति सुन्दर व्युत्पत्ति प्रस्तुत की गई है—

विदन्त्येभिर्धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेदाः।

वही वेद हैं जिनके द्वारा धर्म=कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध होता है तथा ब्रह्म= स्वकीय आत्मस्वरूप का बोध होता है।

विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वैभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः ।
विष्णुमित्र - ऋक्प्रातिशाख्य - वर्गद्वयवृत्ति ।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ प्राप्तव्य हैं, इनकी सिद्धि जिनके द्वारा होती है, वहीं वेद हैं। आचार्य सायण ने इसी भाव को और अधिक सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। सभी मनुष्यों की सहज अभिलाषा होती है अभीष्ट की सम्प्राप्ति और अनभीष्ट का निवारण। इसी अभीप्सित की सम्प्राप्ति तथा अनभीप्सित के परिहार के उपाय का बोध वेद कराता है—

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं
यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः। तैत्ति.भा.भू.

यही है वेद का वेदत्व। इस प्रकार मानव-जीवन के लौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस उभय प्रयोजनों की सिद्धि वेदों द्वारा होती है। इस प्रकार वेद पुरुषार्थ सम्पादक परम विमल ज्ञाननिधि हैं।

वेदार्थ ज्ञान के वाहक व्यञ्जक ऋचाएँ मन्त्र हैं। ऋषियों ने परमात्मस्वरूप जिस दिव्यज्ञान का साक्षात्कार किया, वह जिन शब्द पुञ्जों वाक्य समूहों में निबद्ध है उन्हीं का अभिधान मन्त्र है। प्रायः मन्त्र तथा ब्राह्मण उभय भागों के सम्मिलित रूप को वेदसंज्ञा से सम्बोधित किया गया है—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। आपस्तम्बयज्ञपरिभाषा, 1.1.33
मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते। बौधायन गृ.सू.

आचार्य सायण ने भी मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों भागों के सम्मिलित रूप को वेदनाम दिया है—

मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिः वेदः। ऋ.भा.भू.
मन्त्रब्राह्मणरूपौ द्वावेव वेदभागौ

इस प्रकार वेद के अन्तर्गत दो भाग हैं—1. मन्त्र तथा 2. ब्राह्मण।

वस्तुतः मन्त्र मूल हैं और इन्हीं के व्याख्यात्मक भाग ब्राह्मण हैं—

मन्त्रस्तु ब्रह्म तद् व्याख्यानं ब्राह्मणम्।

मन्त्रों की व्याख्या तीन प्रकार से की गई है—

1. कर्मकाण्ड- यज्ञपरक व्याख्या 2. उपासना काण्ड तथा 3. ज्ञानकाण्ड।

इस प्रकार ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत तीन उपविभाग हैं—

1. ब्राह्मण 2. आरण्यक तथा 3. उपनिषद्।

वेदत्रयी

प्रारम्भ में ज्ञानराशि यह वेद एक ही था- ऐसा श्रीमद्भागवत का कथन है—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः। 9.14.49

परमेश्वर ने सनातन इस एक ही वेद को यज्ञार्थ ऋक्, यजुस् तथा साम के रूप में अग्नि, वायु तथा सूर्य के लिए प्रकट किया, ऐसा भगवान् मनु का वचन है—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥ मनु. 1.23

इस सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि अग्नि, वायु तथा सूर्य ने स्वयं ही तपस्या करके ऋक्, यजुस् तथा सामवेद को प्राप्त किया—

तेभ्यस्तपेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त अग्नेः
ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।

शतपथ ब्राह्मण में वेदत्रयी का उल्लेख है—

त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंसि सामानि। 1.6.7.1

वस्तुतः वेदों में मन्त्रों के त्रिविध स्वरूप तीन प्रकार हैं—

1. पद्यरूप 2. गद्यरूप तथा 3. गानरूप।

इन्हीं त्रिविध स्वरूपों की स्थिति ऋक्, यजुस् तथा सामरूप में है। छन्दोबद्ध मन्त्रों को ऋक् शब्द, गीत्यात्मक मन्त्रों को सामशब्द तथा छन्द और गीति विवर्जित मन्त्रों को यजुस् नाम प्रदान किया गया है। शब्द द्वारा व्यवहार में भी तीन विधियाँ होती हैं—

1. पद्यात्मक 2. गद्यात्मक तथा 3. गीत्यात्मक।

इस तरह पद्य विशिष्ट मन्त्र ऋक्, गद्य विशिष्ट मन्त्र यजुस् तथा गीति विशिष्टमन्त्र सामन् हैं। आचार्य जैमिनि ने वेद मन्त्रों के त्रिविध वर्गीकरण के हेतु को सुस्पष्ट किया है—

तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था गीतिषु सामाख्या।

शेषे यजुः शब्दः। मीमांसा सू., 2.1.35-37

इस प्रकार पद्यात्मक स्वरूप होने से अथर्ववेद ऋग्वेद के अन्तर्गत समाहित हो जाता है। देव प्रार्थना विषयक स्तुत्यात्मक मन्त्र ऋक् हैं, यह छन्दोबद्ध पद्यात्मक हैं। यजति यजते वा अनेन इति पूजन अर्चन के गद्यात्मक मन्त्र यजुष् हैं। स्यति नाशयति विघ्नमिति सामन् समयति सन्तोषयति देवान् अनेन इति सामम् प्रत्यूहनिवारणार्थ देवप्रीत्यर्थ गान स्वर तालबद्ध गेयात्मक मन्त्र साम है। इस तरह मन्त्रराशि का त्रिधा वर्गीकरण है। इनके अतिरिक्त भी मन्त्र हैं मारण मोहन उच्चाटन वशीकरण, इनका चतुर्थ वर्ग है यही है अथर्ववेद।

इस प्रकार सकल ज्ञाननिधि वेद का चतुर्धा वर्गीकरण है—

चत्वारो वेदाः—ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद तथा अथर्ववेद।

वेदों का अपौरुषेयत्व

वेद भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम प्रशस्ततम हीरक ग्रन्थ हैं। 'यस्य निःश्वसितं वेदाः' ऐसी मान्यता है कि वेद परमेश्वर के निःश्वास से उद्भूत हैं। नवीन युग के प्रारम्भ में परमेश्वर ही सृष्टि के साथ-साथ वेदों को भी व्यक्त कर देते हैं। यथा नाम-रूपात्मक इस जगत् की नवीन सृष्टि नहीं होती, अपितु जैसी पूर्वकल्प में थी, उसी की इस नवीन युग में अभिव्यक्ति हो जाती है, उसी प्रकार वेदों की भी अभिव्यक्ति होती है। सृष्टि और वेद दोनों ही नित्य हैं, इनका कभी विनाश नहीं होता। प्रलयकाल में भी विनाश नहीं, केवल तिरोधान होता है। बादरायण वेदव्यास का सुस्पष्ट कथन है कि—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।

लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥ महाभा. वन पर्व

इस तरह आविर्भाव एवं तिरोभाव के कारण वेद नित्य हैं किसी पुरुष द्वारा कृत पौरुषेय नहीं, अपितु अपौरुषेय हैं। गृत्समद विश्वामित्र वामदेवादि वेदों के प्रणेता, कर्त्ता नहीं,

अपितु द्रष्टा हैं। अपनी तपश्चर्या से इन्होंने मन्त्रों का प्रत्यक्ष दर्शन किया है और मन्त्रों का साक्षात्कार करने के कारण ही इनकी ऋषि रूप में प्रसिद्धि है—

ऋषिर्दर्शनात्। ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः (न तु कर्त्तारः)।

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। निरुक्त 1-6

महतो भूतस्य निःश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इति

इस तरह परमेश्वर के निःश्वासभूत होने से वेद नित्य एवं अपौरुषेय हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में पूर्वपक्ष का कथन है कि रामायण-महाभारत रघुवंशादि ग्रन्थों की तरह वेद भी सकर्तृक हैं क्योंकि वेदों की संहिताओं शाखाओं की कठ काठक तैत्तिरीय कौथुम इत्यादि नामों से प्रसिद्धि है। संहिताओं का नामकरण इन्हीं अभिधानों के आधार पर है। इससे इनका कर्तृत्व सुस्पष्ट प्रतीत होता है। यथा वाल्मीकीयं रामायणं वैयासिकं भारतम् इत्यादि संज्ञाओं से रामायण के प्रणेता वाल्मीकि तथा महाभारत के प्रणेता बादरायण वेदव्यास प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार वेद संहिताएँ भी कठ-काठक द्वारा प्रणीत है। इसलिए जैसे कालिदासकृत रघुवंशादि काव्य पुरुषकृत होने से पौरुषेय हैं, उसी प्रकार वेदों को भी कठ-काठकादि पुरुषों द्वारा प्रणीत होने से पौरुषेय ही होना चाहिए, अपौरुषेय नहीं।

आचार्य जैमिनि मीमांसासूत्र 'आख्या प्रवचनत्वात्' पूर्वपक्ष द्वारा प्रस्तुत वेदपुरुषकृत हैं, इस आक्षेप का खण्डन करते हैं। वस्तुतः वेदविद्या रक्षण की गुरु-शिष्य रूप मौखिकी श्रुति परम्परा रही है। इस तरह कठ-काठक कौथुमादि आचार्यों ने अपने शिष्यों को परम्परा से प्राप्त इन संहिताओं, शाखाओं का अध्ययन कराया।

इसलिए प्रवचन करने के कारण इन्हीं आचार्यों के अभिधानों से इन संहिताओं की प्रसिद्धि हो गई। वास्तव में कठ-काठक-कौथुमादि इन संहिताओं के कर्त्ता नहीं, अपितु प्रवचनकर्त्ता हैं। इसलिए पुरुष कर्तृत्व न होने से वेद पौरुषेय नहीं, अपौरुषेय ही हैं।

पूर्वपक्ष का आक्षेप है कि वेदों में जनन-मरणधर्मा मनुष्यों का उल्लेख है—

अनित्यदर्शनाच्च। मीमांसा 1.1.28

यथा

बबरःप्रावाहणिरकामयत। तैत्ति., 7.1.10.2

प्रवाहण के पुत्र बबर ने कामना की।

कुसुरुविन्द औद्दालिकिरकामयत। तैत्ति., 7.2.2.1

उद्दालक के पुत्र कुसुरुविन्द ने कामना की।

वेदों में उल्लिखित बबर, कुसुरुविन्द, प्रवाहण, उद्दालक ये सभी व्यक्ति जनन-

मरण धर्मा हैं। वेदों में उल्लेख होने से इनसे पूर्व वेदों को नहीं होना चाहिए। उल्लिखित ये व्यक्ति वेदों से पूर्ववर्ती तथा उल्लेखकर्त्ता वेद इनसे उत्तरवर्ती होना चाहिए। अतः इन अनित्य व्यक्तियों का उल्लेख करने वाला वेद नित्य तथा अपौरुषेय नहीं हो सकता।आचार्य जैमिनि इस आक्षेप का उत्तर देते हैं—

परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्। मीमांसा 1.1.3

यह केवल शब्दों की समानता है। यहाँ वेदों में व्यक्तिविशेष का यह उल्लेख नहीं है। यह शब्दानुकृतिमात्र है। बबर शब्द की ध्वनि के अनुरूप शब्द करने वाला यह वायु ही है और अतीव तीव्रता से बहने, प्रवहण के कारण यही वायु प्रावाहणि है। वास्तव में यह प्रवाहण नामक किसी भौतिक व्यक्ति का पुत्र बबर नहीं है। यह केवल शब्दानुकृति शब्दसाम्य है। यहाँ पर बबर नामक अनित्य व्यक्तिविशेष विवक्षित नहीं है। इस तरह आचार्य जैमिनि यहाँ पर पूर्वपक्ष द्वारा प्रस्तुत बबर नामक अनित्य व्यक्ति के उल्लेख का खण्डन करते हैं और सुस्पष्ट करते हैं कि इस आधार पर वेदों की नित्यता बाधित नहीं होती। इसी प्रकार कीकट नैचाशाख प्रमगन्द आदि पद भी देशविशेष या व्यक्तिविशेष के अभिधान नहीं है। कीकट देश अनार्यजनों सामान्य व्यक्तियों का होना चाहिए। नैचाशाख नीच कुल में जन्म लेने वाला धर्माचरण से विमुख व्यक्ति है। प्रमगन्द धनलोलुप व्यक्ति हैं। ऋण देकर धन को बहुगुणित करने वाला सूदखोर व्यक्ति है।

इस प्रकार आचार्य जैमिनि प्रबल तर्कों द्वारा सिद्ध करते हैं कि वेद श्रुतियों में जो अनित्य पदार्थों के नाम आए हैं वस्तुतः वह केवल नामसाम्य हैं, शब्दों की समानता मात्र है, इनका वेदों से कोई भौतिक यथार्थ सम्बन्ध नहीं है और इस तरह वेदों श्रुतियों की अनादिता नित्यता बाधित नहीं होती।

पूर्वपक्षी का आरोप है कि वेदों में असम्भव कार्यों का कथन है—यथा

वनस्पतयः सत्रमासत। सर्पाः सत्रमासत। वनस्पतियाँ सत्र में आसीन हुईं, सर्प सत्र में आसीन हुए। वनस्पतियाँ तो अचेतन हैं और सर्प विद्या-विहीन। इनके द्वारा सत्र का अनुष्ठान सर्वथा असंगत है।

आचार्य जैमिनि इस आक्षेप का उत्तर देते हैं कि यहाँ पर अचेतनों तथा अविद्वान् द्वारा सत्रानुष्ठान कथन का अभिप्राय है चेतन मनुष्यों का सत्रानुष्ठानहेतु प्रेरणा प्रदान करना।

पूर्वपक्ष का कथन है कि पौरुषेयत्व का अभिप्राय शरीरधारी पुरुष द्वारा निर्मित होना है तो वेद भी पुरुषकृत सिद्ध होते हैं, क्योंकि स्वयं वेद में ही परमेश्वर को पुरुषविध अङ्गों से युक्त कहा गया है

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। 10.90.1

इस तरह परमेश्वर भी शरीरधारी अर्थात् पुरुष हैं।

शरीरधारिपुरुषनिर्मितत्वाभावादपौरुषेयत्वमिति चेत् न।

सहस्रशीर्षा पुरुषः। 10.90.1। **इत्यादिश्रुतिभिरीश्वरस्यापि शरीरत्वात्।**

और यदि कर्मफल से असम्पृक्त शरीरधारी जीव द्वारा निर्मित होना अपौरुषेयत्व है तो वेदों की उत्पत्ति इनसे कही गई है—

ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्। ऐ.ब्रा., 5.32
इति श्रुतेः ईश्वरस्य अग्न्यादिप्रेरकत्वेन निर्मातृत्वं द्रष्टव्यम्।

यहाँ पर अग्नि-वायु और आदित्य इन जीवविशेषों को श्रुतिसृजन, प्रकाशन की प्रेरणा ईश्वर ने प्रदान की। अतः ईश्वर ही वेद निर्माता हैं और ईश्वरकृत होने से वेदों का स्वतः प्रामाण्य है। श्रुति तथा स्मृति वाक्यों द्वारा बादरायण वेदव्यास ने वेदों की नित्यता सिद्ध की है—

वाचा विरूपनित्यया। ऋ. 8.75.6
अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा। महाभा.शां. 232.24

ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्- स्वर्गसाधनभूत ज्योतिष्टोमयाग है- यह विधिवाक्य है, ब्राह्मणग्रन्थ विनियोग बतलाता है। यह कथन सामान्य-व्यक्ति का नहीं है, अपितु साध्य-साधनभाव के ज्ञाता का है। शास्त्रयोनित्वात् ब्र.सू 1.1.3 वेद सकर्तृक हैं यह परमेश्वर की रचना है। यहाँ पर वेदशास्त्रों का कर्त्ता होने से ब्रह्म ईश्वर को सर्वज्ञ सिद्ध किया गया है।

आचार्य सायण वेदों को अपौरुषेय सिद्ध करते हैं—

1. वेद कठादि के पूर्व की रचना हैं।
2. संहिताओं के अभिधान तत्तत् कठकाठक कौथुमादि उनके प्रवचन के कारण है, ये कर्त्ता नहीं, अपितु प्रवचनकर्त्ता हैं।
3. जनन-मरण धर्मा सांसारिक व्यक्तियों के समान जो नाम वेदों में हैं वस्तुतः वे शाब्दिक हैं।
4. सर्वज्ञ ब्रह्म ही श्रुतियों का रचयिता हैं, सामान्य मनुष्य नहीं। इस प्रकार वेदों का अपौरुषेयत्व ही सिद्ध होता हैं।

शब्द-नित्यत्व

ऋषिर्दर्शनात्, ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः (न कर्त्तारः)
साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। निरुक्त, 1-6

प्रातिभज्ञान दिव्यदृष्टिसम्पन्न ऋषियों द्वारा तपश्चर्या सतत साधना से साक्षात्कृत वेद सर्वथा अनवद्य निर्दुष्ट सकलदोषविवर्जित विमल ज्ञानराशि हैं। प्रत्यक्ष करने के कारण ही इनकी संज्ञा 'ऋषि' है ऋषिर्दर्शनात्। अतः वेद सर्वथा प्रामाणिक हैं, इनका स्वतः प्रामाण्य है—

(वेदानां) निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्।[2]

वस्तुतः वेद नित्य हैं। परम्परा से यह मान्य है कि मानवीय आदिसृष्टि में ऋषियों के हृदय में इस दिव्यज्ञान का प्रस्फुटन हुआ। महाप्रलयकाल में इनका केवल तिरोधान होता है और पुनः नवीन सृष्टि में इनका तपोनिरत ऋषियों के अन्तःकरण में स्फुरण हो जाता है। भगवान् वेदव्यास का महाभारत में कथन है—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा।। महाभा. वनपर्व

इसलिए वेद नित्य हैं, पर ऋषि आदुम्बरि के पुत्र औदुम्बरायण ने एक झटके से प्रतिकार कर दिया कि शब्द तो नित्य नहीं, अनित्य है—

इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः। निरुक्त 1-2

और प्रबल तर्कों द्वारा अपने इस मत को सिद्ध करने का प्रयास किया है, पर उसी तरह आचार्य यास्क भी एक अति लघु वाक्य द्वारा एक ही झटके में उनके सभी तर्कों का खण्डन करके समस्त आक्षेपों को धराशायी करते हुए शब्दनित्यत्व पक्ष का मण्डन करते हैं—

व्याप्तिमत्वात्तु शब्दस्य। निरुक्त, 1-2

शब्द अनित्य हैं- अपने इस पक्ष को सिद्ध करने के लिए आचार्य औदुम्बरायण ने तर्क प्रस्तुत किए हैं कि वचन तो इन्द्रिय-नित्य हैं अर्थात् वर्णों का उच्चारण कण्ठ-तालु-जिह्वा-ओष्ठादि इन्द्रियों के द्वारा होता है, इसलिए उच्चारण करने वाली इन इन्द्रियों के साथ जब तक इनका सम्बन्ध रहता है तभी तक इन वर्णों की सत्ता है। इसका अभिप्राय है कि जब तक उच्चारण काल है उतने ही काल तक इनकी स्थिति होती है, उच्चारण करने वाली इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध समाप्त होते ही इन वर्णों की सत्ता भी समाप्त हो जाती है और इन्द्रिय द्वारा एक समय में केवल एक ही वर्ण का उच्चारण होता है। इसके उच्चारण के समनन्तर द्वितीय वर्ण के उच्चारण के समय पूर्व उच्चरित वर्ण विनष्ट हो जाता है। इस प्रकार उत्तर वर्ण का उच्चारण और पूर्व-पूर्व का विनाश होते

2. सांख्यसूक्त 5.51

जाने के कारण कोई एक शब्द नहीं बनेगा, कई शब्द नहीं बनेंगे, इसलिए निरुक्तशास्त्र द्वारा किया गया पदों का नाम- आख्यात-उपसर्ग-निपात रूपी चतुर्धा वर्गीकरण अनुपपन्न असिद्ध हो जा रहा है, क्योंकि अनेक पदों की एक साथ युगपत् रहने पर ही इनका चतुर्धा वर्गीकरण सम्भव है और इसी आधार पर वे दूसरा आक्षेप प्रस्तुत करते हैं कि इन पदों में आख्यात की प्रधानता और नाम की गौणता भी अनुपपन्न हो जा रही है, क्योंकि पदों की युगपत् सहस्थिति होने पर ही यह प्रधान-गुणभाव सम्भव हो सकता है, इसी तरह उनका तीसरा आक्षेप है कि व्याकरणशास्त्र द्वारा किया गया प्रकृति-प्रत्यय का, धातु का प्रत्यय से, उपसर्ग का क्रिया से, एक शब्द का दूसरे शब्द से सम्बन्ध भी नहीं बनेगा, क्योंकि विनष्ट और अविनष्ट का, अविद्यमान और विद्यमान का कभी भी सम्बन्ध नहीं बन सकता।[3]

वचनम् इन्द्रियनित्यम्-इस आधार पर शब्द- अनित्यत्व की सिद्धिहेतु आचार्य औदुम्बरायण द्वारा प्रस्तुत तीनों आक्षेपों का आचार्य यास्क बड़ी ही सहजता से निरस्त कर देते हैं- व्याप्तिमत्त्वात्तु शब्दस्य=शब्द के व्यापक होने के कारण इन सभी आक्षेपों का निरसन हो जाता है अर्थात् शब्द तो व्यापक, अतएव नित्य हैं, इनका कण्ठ-तालु-जिह्वा-ओष्ठादि उच्चारण की साधनभूत इन्द्रियों द्वारा उच्चारण प्रक्रिया से केवल प्राकट्य होता है। इन शब्दों की न तो उत्पत्ति होती है और न विनाश। उच्चारण की क्रिया ही उत्पन्न और विनष्ट होती है। अतएव शब्द नित्य हैं और इसीलिए अनेक पदों की स्थिति युगपत् बनेगी और इस तरह निरुक्तशास्त्र द्वारा पदों का नाम- आख्यात-उपसर्ग-निपात रूपी किया गया चतुर्धा वर्गीकरण उपपन्न हो जाता है, यह वर्गीकरण सुसंगत है और नाम- आख्यात की युगपत् सहस्थिति होने से नाम की गौणरूपता और आख्यात की प्रधानरूपता भी सुसंगत है तथा इसी प्रकार व्याकरणशास्त्र द्वारा किया गया प्रकृति-प्रत्यय का, धातु का प्रत्यय से, उपसर्ग का क्रिया से, एक शब्द का दूसरे शब्द से, लोप-आगम-वर्णविकार सभी प्रकार के सम्बन्ध सुसंगत हो जाते हैं।

इस प्रकार निरुक्तशास्त्र शब्द-अनित्यत्व का खण्डन करके शब्दनित्यत्व सिद्धान्त का मण्डन करता है और इस तरह अपने वेदाङ्गत्व को भी सम्पुष्ट करता है।

मन्त्रों की अर्थवत्ता

दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत होने से वेद सकल ज्ञान के निधान हैं। 'सर्वज्ञानमयो हि सः'[4] भगवान् मनु का वचन है और ऋषि दयानन्द का उच्च उद्घोष है

3. इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः। तत्र चतुष्ट्वं नोपपद्यते। अयुगपदुत्पन्नानां वा शब्दानामितरेतरोपदेशः। शास्त्रकृतो योगश्च। निरुक्त 1.2

4. मनु., 2.7

कि वेद समस्त सत्य विद्याओं के आकर हैं, सभी प्रकार का ज्ञान इनमें सन्निहित है और वेदः = ज्ञानम्। वेद शब्द का अर्थ ही है ज्ञान। इसीलिए त्रैकालिक सर्वविध विषयों के स्वरूप को सुप्रकाशित करने वाले वेदों को सनातन चक्षु की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।[5]

और भी जिन विषयों का बोध यथार्थ ज्ञान के साधन प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों से नहीं होता उनका भी सुस्पष्ट बोध वेदों द्वारा होता है, यही है वेदों का वेदत्व श्रेष्ठता—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

पर आचार्य कौत्स ने सपाट शब्दों में सकल ज्ञाननिधि इन वेदों की अर्थवत्ता का खण्डन कर दिया—

अनर्थका हि मन्त्राः।[6]

मन्त्र अनर्थक हैं, इनका कोई अर्थ नहीं है और अपने इस मत की पुष्टि के लिये वे तर्कों को प्रस्तुत करते हैं—

तदेतेनोपेक्षितव्यम्।
नियतवाचो युक्तयो नियतानुपूर्वा भवन्ति। निरुक्त 1.5

आचार्य कौत्स का प्रथम तर्क है कि वेद के मन्त्र नियत शब्दों की रचना वाले तथा नियत आनुपूर्वी क्रम वाले होते हैं। मन्त्रों में शब्दों की संरचना नियत होती है, मन्त्रगत इन शब्दों का परिवर्तन मान्य नहीं है। लौकिक संस्कृत की तरह इन शब्दों का परिवर्तन करके इनके स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द नहीं रखे जा सकते। यथा-

अग्न आ याहि वीतये।

इसमें शब्दों की रचना सुनियत हैं, यहाँ पर

वह्न आ गच्छ पानाय।

रूप से पर्यायवाची शब्द परिवर्तन मान्य नहीं है। यदि यह मन्त्र सार्थक शब्दों वाला होता, तो स्थानापन्न किए जाने वाले शब्दों से उन्हीं अर्थों की अभिव्यक्ति हो जाती। पर ऐसा मान्य नहीं है। इसी प्रकार मन्त्रों में शब्दों का नियत क्रम है यथा आ याह्यग्ने इनके

5. मनु., 12.94
6. निरुक्त, 1.5

क्रम में परिवर्तन भी मान्य नहीं है। जैसा कि लौकिक संस्कृत में मान्य है। आहर पात्रम् - पात्रमाहर। इसका यही अभिप्राय है कि मन्त्र निरर्थक है।

आचार्य कौत्स द्वितीय तर्क प्रस्तुत करते हैं—

अथापि ब्राह्मणेन रूपसम्पन्ना विधीयन्ते। उरु प्रथस्वेति प्रथयति।

मन्त्रों का अपने स्वरूप में सम्पन्न होने पर भी ब्राह्मण वाक्य द्वारा इनका विनियोग किया जाता है। यथा 'उरु प्रथस्व' इस मन्त्र को 'इति प्रथयति' इस ब्राह्मण वाक्य द्वारा सार्थक बनाया जाता है। इसका यही अभिप्राय है कि मन्त्र स्वयं में सार्थक अर्थवान् नहीं है।

अथाप्यनुपपन्नार्था भवन्ति
ओषधे त्रायस्यैनम्। स्वधिते मैनं हिंसीः इत्याह हिंसन्। 1.2.1

आचार्य कौत्स का तृतीय तर्क है कि ये वेदमन्त्र असंगत अर्थ वाले हैं। इनसे प्रतीयमान अर्थ में कोई संगति नहीं बनती। यथा औषधे त्रायस्वैनम् में अचेतन औषधि से वृक्ष की रक्षा का कथन है जो औषधि स्वयं की रक्षा में समर्थ नहीं है वह अन्य की रक्षा कैसे करेगी। इसी प्रकार स्वधिते मैनं हिंसीः, खड्ग को सम्बोधित करके कह रहा है कि इस पशु की हिंसा मत करो, जबकि वह स्वयं ही उस पशु को मार रहा है। इस तरह इन मन्त्रों से व्यक्त होने वाला अर्थ सर्वथा असंगत है।

अथापि विप्रतिषिद्धार्था भवन्ति।
एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः।
असंख्याता सहस्त्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्, अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे।
शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः।

ये मन्त्र परस्पर विपरीत विरुद्ध अर्थ का कथन कर रहे हैं। यथा एक मन्त्र कह रहा है कि एक ही रुद्र है, द्वितीय नहीं। जबकि अन्य मन्त्र ठीक इसके विपरीत अर्थ का कथन कर रहा है कि असंख्य सहस्त्रों रुद्र भूमि पर विद्यमान हैं। एक मन्त्र कह रहा है कि इन्द्र तो अशत्रु ही उत्पन्न हुआ है जबकि अन्य मन्त्र कह रहा है कि इन्द्र ने एक ही साथ सैकड़ों सेनाएँ जीत ली। इन मन्त्रों में परस्पर प्रतिकूल अर्थों का कथन है, इसका यही अभिप्राय है कि ये मन्त्र सार्थक नहीं है। इनका कोई अर्थ नहीं है।

अथापि जानन्तं सम्प्रेष्यति - अग्नये समिध्यमानाय अनुब्रूहीति

यह मन्त्र यज्ञ-विधान को जानने वाले को यह आदेश देता है कि अग्नि के प्रज्ज्वलित हो जाने के बाद ही वह मन्त्रों का उच्चारण करे, जबकि होता ऋत्विक् को यह विधान पहले से ही सुविदित है।

अथाप्याह अदितिः सर्वमिति अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्। 1.89.10

यह मन्त्र एक ही अदिति को सर्व स्वरूप में प्रस्तुत कर रहा है। एक ही अदिति का सर्वरूप होना कैसे सम्भव हो सकता है। यह मन्त्र असम्भव अर्थ का कथन कर रहा है। इसका यही अभिप्राय है कि यह सार्थक, अर्थवान्, नहीं है।

अथापि अविस्पष्टार्था भवन्ति - अम्यग् यादृश्मिन् जारयाणि काणुका इति

ये मन्त्र अत्यन्त अस्पष्ट है, इनके अर्थ की प्रतीति नहीं हो रही है। इसका यही अभिप्राय है कि सार्थक नहीं हैं। इस प्रकार 7 तर्कों के द्वारा आचार्य कौत्स यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं कि वेदमन्त्र अनर्थक हैं, इनका अपना कोई अर्थ नहीं है। आचार्य यास्क निरुक्त में उनके सभी तर्कों का खण्डन करके मन्त्रों की अर्थवत्ता का सम्यक् प्रतिपादन करते हैं—

अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्।

शब्द सामान्य होने से मन्त्र अर्थवान् हैं। इस प्रबल हेतु द्वारा उनके तर्कों का निराकरण हो जाता है अर्थात् लौकिक भाषा में जो शब्द है वहीं शब्द वेद मन्त्रों में भी हैं। यदि लौकिक में वे अर्थवान् हैं तो मन्त्रों में निरर्थक कैसे हो सकते हैं? मन्त्रों के सार्थक होने पर ही यज्ञानुष्ठान में ब्राह्मणवाक्य उनका विनियोग बतलाता है। यदि मन्त्र निरर्थक होते तो यज्ञों में इनका विनियोग नहीं होता।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे[7] ॥

यह मन्त्र आशीर्वचन से समन्वित है। विवाह जैसे अत्यन्त माङ्गलिक महत्त्वपूर्ण संस्कार में इसका विनियोग होता है। मन्त्रों की सार्थकता का यह अत्यन्त प्रबल प्रमाण है। यदि मन्त्र निरर्थक होता तो कभी भी इसका विनियोग नहीं होता। आचार्य कौत्स के सभी तर्कों का आचार्य यास्क क्रमशः खण्डन कर रहे हैं—

1. यथा मन्त्रों में शब्द रचना तथा आनुपूर्वी क्रम नियत होता है उसी प्रकार लौकिक संस्कृत में भी नियत शब्द की रचना तथा इनका क्रम नियत होता है। यथा इन्द्राग्नी पितापुत्रौ में नियत शब्द की रचना तथा नियत क्रम है।
2. अपने स्वरूप में पूर्ण मन्त्र का ब्राह्मण वाक्य जो विनियोग बतलाता है तो यह पूर्वतः कथित का केवल अनुवाद है कोई नवीन कथन नहीं है, यह अपूर्व का विधान नहीं है और यह तो यज्ञ की समृद्धि है जो मन्त्रों के अभिवादन उच्चारण से पूर्ण होती है।

---

7. ऋग्वेद, 10.85.42

3. स्वधिते मैनं हिंसीः में जो असंगत अर्थ कहा गया है, वस्तुतः आम्नायवचन से यहाँ पर हिंसा नहीं हैं क्योंकि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध शब्दप्रमाण से होता है।
4. मन्त्रों में जो परस्पर विरुद्ध कथन की बात कही गई है तो लौकिक संस्कृत में भी ऐसी स्थिति देखी जाती है। यथा- **असपत्नोऽयं ब्राह्मणः। अनमित्रोऽयं राजा।**
5. ब्राह्मण वाक्य यज्ञानुष्ठान के विधान को जानने वाले के लिए जो आदेश देता है तो लोक में भी ऐसा देखा जाता है। नाम ग्रहण पूर्वक प्रणाम-अभिवादन किया जाता है। मधुपर्क को जानने वाले अतिथि को मधुपर्क शब्द का उच्चारण करके मधुपर्क प्रदान किया जाता है।
6. वेदमन्त्र में जो एक ही अदिति को सर्वरूप कहा गया है वो लौकिक वचनों में भी ऐसा देखा जाता है यथा—

   सर्वरसा अनुप्राप्ता पानीयम्। त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
7. और जो यह आक्षेप है कि मन्त्र अस्पष्टार्थक हैं तो यह उस पुरुष का ही अपराध है जिसने आचार्य परम्परा से श्रमपूर्वक शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है।

मार्ग स्थित स्थाणु का यह अपराध नहीं है कि कोई व्यक्ति उससे ठोकर खाकर गिर जाता है, अपितु यह तो उस व्यक्ति का ही दोष है जो उसको देख नहीं पाता। यथा चित्रकर्म, शिल्पकर्म इत्यादि कलाओं में निष्णात व्यक्ति प्रशंसनीय होता है। उसी प्रकार परम्परा से अधीत व्यक्ति मन्त्रों के रहस्य का बोध प्राप्त कर लेता है। वाणी तो स्वयं अपने स्वरूप को उसके लिए अभिव्यक्त कर देती है। इसीलिए अज्ञान की निन्दा और ज्ञान की भूयसी प्रशंसा की गई है—

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥ ऋ. 10.71.4

इस प्रकार आचार्य यास्क 'अनर्थका हि मन्त्राः' इस पूर्वपक्ष का खण्डन करके 'अर्थवन्तः मन्त्राः' सिद्धान्त का मण्डन करते हैं। वेदमन्त्र निरर्थक नहीं, सार्थक हैं।

वेदों का स्वतः प्रामाण्य

दिव्यदृष्टिसम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत विमल ज्ञानराशि ही वेद हैं। प्रत्यक्ष दर्शन करने के कारण ही गृत्समद विश्वामित्र वामदेवादि की ऋषि संज्ञा है—

ऋषिर्दर्शनात्, ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। निरुक्त 1.6

ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं। साक्षात्कृत होने से यह ज्ञानराशि सकल दोष विवर्जित निर्दुष्ट अभ्रान्त सर्वथा अनवद्य है। अतः विमल ज्ञानराशि इन वेदों का स्वतः प्रामाण्य है, अपनी प्रामाणिकता के लिए इनको किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं है—

(वेदानां) निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्। सां.सू. 5.51

ये वेद परमपुरुष परमेश्वर के निःश्वास से उद्भूत हैं, अत एव नित्य एवं पूर्ण हैं—

तस्यैतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो-ऽथर्ववेद इति

वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। ईश्वर के अनुग्रह से ही ऋषियों ने अपने अन्तःकरण में इनका अनुभव किया। परमेश्वर से ही ऋषियों ने इस अनुपम ज्ञाननिधि का श्रवण किया, तदनन्तर ऋषिवंशजों द्वारा परम्परा से श्रवण किया गया, इसीलिए वेदों की संज्ञा श्रुति है—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। मनु. 2.10

परमेश्वर से निःसृत होकर ये वेद ऋषियों के हृदय में स्थित होते हैं, अत एव ये नित्य हैं। प्रलय में इनका केवल तिरोधान होता है, विनाश नहीं और नवीन सृष्टि के आदि में सृष्टि के साथ ही इनका प्राकट्य हो जाता है।[8]

तपोनिष्ठ ऋषियों के अन्तःकरण में इन वेदों का स्फुरण होता है। इस तरह वेद स्वयम्भूत स्वयंप्रकाश स्वतःप्रमाण हैं। सृष्टि के पूर्व में भी थे। यथा सूर्य स्वयं प्रकाशमान है, अपने अस्तित्व के लिए तथा प्रकाशन के लिए इसको किसी अन्य की आवश्यकता नहीं है, इसी प्रकार वेदों का स्वतः प्रामाण्य है। वेद धर्ममूल तथा सकल ज्ञाननिधि हैं एवं स्वयं में ही प्रमाण है।[9]

इसीलिए सर्वविध विषय प्रकाशक इन वेदों को भगवान् मनु ने सनातन चक्षु कहा है।[10] इनके द्वारा स्थूल सूक्ष्म अन्तर्हित व्यवहित निकटस्थ दूरस्थ भूत-वर्तमान-भविष्यत्-त्रैकालिक समस्त विषयों का सुस्पष्ट ज्ञान होता है—

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति। मनु. 12.97

---

8. युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा।। महाभा. वनपर्व
प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेदराशिः स्थितः। कुल्लूकभट्ट, 12.97
9. वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।सर्वज्ञानमयो हि सः। मनु., 2.6, 7
10. पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्। मनु., 12.94

इन वेदों का तो यही वेदत्व है कि जिन विषयों का बोध ज्ञान के साधन प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों से नहीं होता उनका भी सुस्पष्ट बोध वेदों द्वारा हो जाता है—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

ऋषि दयानन्द का कथन है कि सूर्य तथा दीपक की तरह वेद भी स्व प्रकाशक है। ईश्वर सर्वज्ञ सर्वविद्यायुक्त एवं सर्व शक्तिमान् है। अतः ईश्वरोक्त होने से इन वेदों का स्वतः प्रामाण्य है। यहाँ तक कि वेदों का प्रामाण्य तो ईश्वर से भी अधिक है। वेदप्रामाण्य के आधार पर ही भारतीय दर्शनों का द्विविध वर्गीकरण है—

(अ) आस्तिक दर्शन तथा (आ) नास्तिक दर्शन।

वेदमूलक दर्शन आस्तिक हैं और इनमें आस्था न रखने वाले दर्शन नास्तिक हैं। नास्तिको वेदनिन्दकः। इस तरह वेदों की प्रामाणिकता को न मानने वाले चार्वाक, जैन तथा बौद्ध दर्शन नास्तिक वर्ग के अन्तर्गत आते हैं और इनकी प्रामाणिकता को स्वीकार करने वाले न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा तथा वेदान्त दर्शन आस्तिक हैं। इस प्रकार आस्तिकता और नास्तिकता का आधार वेद-प्रामाण्य ही है, ईश्वर नहीं। क्योंकि आस्तिक दर्शनों में भी दो प्रकार के वर्ग हैं—

(अ) ईश्वरवादी तथा (आ) अनीश्वरवादी।

सांख्य तथा मीमांसा दर्शनों में ईश्वर की सुस्पष्ट स्वीकृति नहीं है, फिर भी वेदों के प्रामाण्य को स्वीकार करने के कारण ये आस्तिक दर्शन हैं। ईश्वरवादी दर्शनों में न्याय-वैशेषिक, योग तथा वेदान्त की स्थिति है। न्यायदर्शन में वेदों का प्रामाण्य आप्तवचन होने के कारण हैं। न्यायसूत्र 2.1.18, सर्वज्ञ नित्य परमपुरुष परमेश्वर ही आप्त हैं। यही वेदों के वक्ता हैं।

अतः वेदों का आप्तवाक्य होने से प्रामाण्य है। न्यायसूत्र भाष्यकार वात्स्यायन का कथन है कि एक युग या मन्वन्तर के बाद दूसरे युग या मन्वन्तर में अध्ययन-अध्यापन द्वारा वेद अव्याहत बने रहते हैं, प्रलय में भी इनकी स्थिति बनी रहती है। इस तरह वेद नित्य हैं।

तद् वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वै.सू. 1.1.3

वैशेषिक दर्शन के अनुसार वेद ईश्वरकृत हैं। अतः इनका प्रामाण्य है। धर्माधर्मादि का लौकिक प्रत्यक्ष नहीं होता, इनका बोध तो वेदों द्वारा ही होता है।सांख्यदर्शन में वेदों का स्वतः प्रामाण्य मान्य है।[11]

11. (वेदानां) निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्। सां.सू., 5.51

प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणों से अगोचर विषयों का अभ्रान्त निश्चयात्मक ज्ञान आप्तवचन प्रमाण से ही होता है।योगदर्शन प्रतिपादित करता है कि क्लेश-कर्म-विपाक तथा कर्माशय से सर्वथा असम्पृक्त पुरुषविशेष ही ईश्वर है।[12] यह निरतिशय ज्ञान सम्पन्न नित्यमुक्त अनन्त ऐश्वर्यशाली है, प्रणव ही इसका वाचक है। यहाँ पर वेदों का नित्यत्व अपौरुषेयत्व स्वतःप्रामाण्य मान्य है। वेदान्तदर्शन प्रतिपादित करता है कि वेदों का मूल कारण तो ब्रह्म ही है—

शास्त्रयोनित्वात्। ब्र.सू. 1.1.2

अतः वेद नित्य है। इनका अपौरुषेयत्व है। यथा श्वास-प्रश्वास सहज स्वाभाविक अयत्नज हैं उसी प्रकार वेद परमेश्वर से सम्भूत हैं, प्रयत्नपूर्वक प्रणीत नहीं। मीमांसादर्शन प्रतिपादित करता है कि शब्द नित्य हैं। इनका कभी विनाश नहीं होता। ये विकीर्ण लघुतम तथा अश्रुत भी हो जाते हैं, पर कभी विनष्ट नहीं। शब्द की न तो उत्पत्ति होती है और न ही विनाश। नाद-ध्वनि की उत्पत्ति तथा विनष्टि होती है। शब्द तो आकाश में स्थित नित्य हैं, मीमांसा सूत्र, 1.1.17शब्दों की नित्यता होने से शब्दराशि वेदों की नित्यता स्वतः सिद्ध है। अतः वेदों का स्वतः प्रामाण्य है। इस प्रकार दार्शनिक सम्प्रदायों में वेदों की नित्यता तथा स्वतः प्रामाण्यत्व की स्वीकृति है।

वेदनिधि का विभाजन एवं महर्षि वेदव्यास

धर्म की प्रतिष्ठाहेतु पूर्णपुरुष परमात्मा श्रीहरि समय-समय पर इस भूतल पर विविध रूपों में अवतरित होते हैं। विभु व्यापक यही अव्यक्त परमात्मा प्रयोजन के अनुरूप शरीर धारण करके व्यक्त हो जाते हैं। धर्ममूल वेदनिधि की रक्षाहेतु श्रीहरि का कृष्णद्वैपायन के रूप में ज्ञानावतार होता है। वसुकन्या सत्यवती तथा ऋषि पराशर से वेदव्यास के रूप में इनका अवतार होता है।[13]

सृष्टि के प्रारम्भ में चतुरानन महाप्रभु ब्रह्मा ने अपने चारो मुखों से अपने पुत्रों को वेद पढ़ाया। पितृमुख से अधीत प्राप्त इस वेदज्ञान को इन ऋषिपुत्रों ने अपने पुत्रों को प्रदान किया। इस तरह पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य की इस उदात्त श्रुति-परम्परा में दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत इस वेदनिधि का संरक्षण होता रहा। परन्तु यह वेदज्ञान अत्यन्त विपुल एवं दुर्बोध था, अल्पायु एवं सामान्य मेधा वाले मानव के लिए अनेकानेक बाधाओं में रहकर इस दिव्यज्ञान का अर्जन एवं संरक्षण सम्भव नहीं रह गया। अत एव धर्म की रक्षा के लिए ब्रह्मादि देवों तथा लोकपालों द्वारा प्रार्थना किए जाने

12. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। यो.सू., 1.24

13. भागवत, 1.3.21

पर श्रीभगवान् लोकानुग्रह की भावना से द्वापर के अन्त में सत्यवती तथा ऋषि पराशर से महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के रूप में अवतीर्ण हुए। श्रीभगवान् के अंशावतारी इन्होंने इन मन्त्रों का संकलन किया। इनकी अक्षुण्णता एवं सुरक्षा की उदात्त भावना से तथा सर्वोत्तम महनीय कर्म यज्ञानुष्ठान की दृष्टि से इस विपुल ज्ञानराशि का इन्होंने ऋक्-यजुष्-साम-अथर्व के रूप में चतुर्धा विभाजन करके इन चारो संहिताओं को क्रमशः पैल-वैशम्पायन-जैमिनि-सुमन्तु नामक अपने चार सुयोग्य शिष्यों को प्रदान किया। इस प्रकार मूलतः एक ही वेद की चार संहिताएँ हो गईं। श्रीगुरुमुख से प्राप्त इस ज्ञान को इन व्युत्पन्न शिष्यों ने बहुत अधिक व्यापक प्रचार-प्रसार किया। इस प्रकार यह वेदवृक्ष कल्पतरु बहुविध असंख्य शाखा एवं प्रशाखाओं से समृद्ध हो गया।[14]

इस प्रकार जो वेदज्ञान मूल रूप में यथार्थतः एक ही था, अति विपुल एवं दुर्बोध होने के कारण इसी को श्रीहरि के ज्ञानावतारी व्यासदेव ने लोकानुग्रह की कामना से चतुर्धा विभक्त करके अपने चार शिष्यों को प्रदान किया और इस तरह दुर्बोध ज्ञान को सुगमरीति से सुग्राह्य बनाने का अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया और इसी वेदनिधि के विभाजन के कारण ही ये कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास इस अभिधान से सुप्रथित हो गये-

वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः। महाभा. वनपर्व

वेदनिधि के विभाजन का हेतु

अत्यन्त बहुमूल्य इस वेद ज्ञान-निधि के चतुर्धा विभाजन का वस्तुतः हेतु तो इसका रक्षण ही है। इस ज्ञानराशि के अत्यन्त विपुल होने से समग्र रूप में किसी एक आचार्य के लिए ग्रहण करना सरल नहीं रह गया तथा भावी पीढ़ियों का जीवन भी क्षीणायु होने लगा तथा इनमें धारणाशक्ति ग्राह्यक्षमता में भी ह्रास आने लगा। आगामी समय के आचार्यों में होने वाली इन न्यूनताओं को ध्यान में रखते हुए ब्रह्मादि देवों तथा लोकपालों के अनुरोध पर श्रीहरि ही कृष्ण द्वैपायन के रूप में अवतरित हुए और इस वेद ज्ञाननिधि के रक्षणार्थ ही चार संहिताओं के रूप में इसका विभाजन किया और अपने सुयोग्य चार शिष्यों को प्रदान किया।

यज्ञकर्मानुष्ठान

एक ही विपुल वेद ज्ञाननिधि के चतुर्धा विभाजन का अन्य प्रमुख हेतु है यज्ञकर्मानुष्ठान। वैदिक संस्कृति यज्ञ संस्कृति है। यह यज्ञ सर्वोत्तम कर्म है। यज्ञ से ही सम्पूर्ण सृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है और आमुष्मिक फल प्रदान करने का यह यज्ञ

14. भागवत, 1.4.19-23

सर्वोत्तम साधन है। अतः साध्य फल की सिद्धिहेतु यह यज्ञकर्म अनुष्ठान अनिवार्य साधन बन गया।

यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञो वै प्रजापतिः। यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।

इसकी महिमा का गान किया गया है। इस यज्ञ कर्मानुष्ठानहेतु होता- अध्वर्यु-उद्गाता तथा ब्रह्मा नामक चार ऋत्विजों की आवश्यकता पड़ती है। होता का सम्बन्ध ऋग्वेद से, अध्वर्यु का यजुर्वेद से तथा उद्गाता का सामवेद से है। यज्ञ का अधिष्ठाता प्रधान ऋत्विक् ब्रह्मा होता है। यह अपने निर्देशन एवं निरीक्षण में इस अनुष्ठान को अन्य ऋत्विजों की सहायता से सम्पन्न कराता है। यह वेदत्रयी का ज्ञाता होता है, पर इसका अपना कोई स्वतन्त्र वेद नहीं था। इसीलिए इसको अथर्ववेद से सम्बद्ध कर दिया गया और इसीलिए इस अथर्ववेद की संज्ञा ब्रह्मवेद भी है।

अध्वर्यु नामक ऋत्विक् सम्पूर्ण यज्ञीय कार्यकलापों की व्यवस्था करता है, यज्ञवेदि का निर्माण, समिधा, हव्य पुरोडाश, आज्यादि अपेक्षित सभी सामग्री का संकलन करता है, अग्न्याधान करता है, आहुति देता है, इस तरह यह यज्ञशरीर का निष्पादन करता है। होता नामक ऋत्विक् मन्त्रों द्वारा देवताओं का यज्ञ में आवाहन करता है और उद्गाता नामक ऋत्विक् यज्ञ में आहूत तत्तदेवताओं की सुमधुर उच्च स्वरों में स्तुति करता है, चतुर्थ ब्रह्मा यज्ञ का अध्यक्ष एवं प्रधान ऋत्विक् अपने पूर्ण निरीक्षण निर्देशन में यज्ञ की सम्पूर्ण प्रक्रिया को सुसम्पन्न कराता है। यज्ञकर्म की बाह्य विघ्नों से रक्षा करता है तथा इस अनुष्ठान में हो गई त्रुटियों के परिक्षालन हेतु प्रायश्चित का विधान करता है। अन्य ऋत्विजों को तत्तद् निर्देश देता है। इस प्रकार यज्ञकर्मानुष्ठानहेतु होता, अध्वर्यु उद्गाता तथा ब्रह्मा इन सभी ऋत्विजों की अनिवार्यता हैं और सभी यज्ञ कर्मानुष्ठान मन्त्रपूर्वक होते हैं और इन समस्त मन्त्रों का संकलन रूप एक ही वेद था। अतः इस अनुष्ठान की सुविधा के लिए महर्षि कृष्णद्वैपायन ने एक वेदस्थित इन मन्त्रों का इन्हीं चारों ऋत्विजों की दृष्टि से चतुर्धा विभाजन करके ऋक्-यजुस्-साम-अथर्व रूप से पृथक्-पृथक् चार मन्त्र संहिताएँ बना दी और इनको ग्रहण करने वाले होता- अध्वर्यु-उद्गाता-ब्रह्मा नामक 4 पृथक्-पृथक् ऋत्विक् हो गए। इन ऋत्विजों का अपना-अपना पृथक्-पृथक् कार्य क्षेत्र हो गया और इनकी पृथक्-पृथक् 4 मन्त्र संहिताएँ हो गईं।

हौत्रकर्म, औद्गात्रकर्म, आध्वर्यव कर्म और ब्राह्म कर्म। इस तरह होता ऋत्विक् अपनी मन्त्रसंहिता ऋग्वेद की याज्या-अनुयाज्या ऋचाओं द्वारा यज्ञ में अभीष्ट देवताओं का आवाहन करता है। इस ऋचा पाठ का नाम शस्त्र है—

अप्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः शस्त्रम्।

इन्हीं ऋचाओं के ऊपर उद्गाता गान करता है। ऋचाश्रित इस सामगायन को स्तोत्र कहते हैं। होता द्वारा देवस्तुति में उच्चारण किए जाने मन्त्र ही शस्त्र हैं, इनमें गान नहीं होता, पर स्तोत्र में ऋचाओं पर आश्रित गान होता है—

ऋचि अध्यूढं साम। छान्दोग्य 1.6.1

गीतिषु सामाख्या। जैमिनि 2.1.36

देवस्तुतिपरक मन्त्र ही स्तोत्र हैं। ऋक् मन्त्रों के ऊपर उद्गाता विविध स्वरों में गान करता है और अध्वर्यु ऋत्विक् यज्ञशरीर का निष्पादक है। गद्यात्मक मन्त्रों यजुषों का उपांशु रूप में उच्चारण करता हुआ ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट तत्तत्कर्मों को करता है। अनियताक्षरावसानो यजुः। गद्यात्मको यजुः। शेषे यजुः। अध्वर्यु द्वारा उच्चारण किए जाने वाले मन्त्र गद्यात्मक होते हैं। इस तरह ऋचा तथा साम से भिन्न गद्यात्मक मन्त्रों का ही अभिधान यजुस् है।

यज्ञकर्मानुष्ठान की सम्पूर्ति का पूर्ण उत्तरदायित्व ब्रह्मा नामक ऋत्विक् पर होता है। इसको भिषक् की पदवी से विभूषित किया गया है—

भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति। छान्दोग्य 4.17.8

इसलिए यह ब्रह्मा ऋत्विक् वेदत्रयी का ज्ञाता होता है। सर्ववेदविद्। यज्ञ कर्मानुष्ठान में सम्भावित बाह्य विघ्नों के निवारणार्थ एवं उनसे रक्षणार्थ अभिचार मन्त्रों की भी आवश्यकता होती है। अतः यह ब्रह्मा ऋत्विक् अथर्ववेदविद् भी होता है। अथर्ववेद इसका अपना स्वतन्त्र वेद भी है। इसीलिए इस वेद की ब्रह्मवेद के रूप में प्रसिद्धि है। इस प्रकार यज्ञकर्म के अनुष्ठान की सुविधा की दृष्टि से महर्षि वेदव्यास ने मूलतः एक ही मन्त्रराशि वेद ज्ञाननिधि का ऋक् यजुस् साम अथर्व के रूप में चतुर्धा विभाजन कर दिया और यही यज्ञार्थ 4 ऋत्विजों की 4 मन्त्र संहिताएँ हैं और श्रीमद्भागवत में सृष्टि-निरूपण प्रकरण में इन चारों ऋत्विजों के कार्यकलापों की साधु सुस्पष्ट प्रस्तुति है—

ऋक् यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः।
शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात् क्रमात्॥ 3.12.37

और यही है वेदनिधि का चतुर्धा विभाजन। स्वयं ऋग्वेद में ही प्रथमतः यज्ञकर्मानुष्ठान की दृष्टि से इन चारों ऋत्विजों के पृथक्-पृथक् कार्यों का उल्लेख किया गया है—

ऋचां त्व॒ पोषमास्ते पुपुष्वान् गा॑यत्रं त्वो गायति॒ शक्व॑रीषु।

ब्र॒ह्मा त्वो॒ वद॑ति जातवि॒द्यां य॒ज्ञस्य॒ मात्रां॒ वि मि॑मीत उ त्वः॥ 10.71.11

वर्तमान में वेदों की उपलब्ध शाखाएँ

महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रवर्तित शास्त्र-संवर्द्धन एवं संरक्षण की गुरु-शिष्य की उदात्त परम्परा में यह वेदवृक्ष 1131 शाखा-उपशाखाओं से समृद्ध हो गया, परन्तु सम्प्रति सभी शाखाएँ सुरक्षित नहीं हैं। वर्तमान में उपलब्ध मन्त्र-संहिताओं तथा व्याख्यानात्मक उनके ब्राह्मणभाग का विवरण इस प्रकार है—

क्र.सं.	मन्त्र-संहिता	ब्राह्मण	आरण्यक	उपनिषद्	वेदाङ्ग
1.	ऋग्वेद				
	शाकल-संहिता	ऐतरेय	ऐतरेय	ऐतरेय	ऋक्प्रातिशाख्य
	आश्वलायनसंहिता	-	-	-	आश्वलायनश्रौतसूत्र आश्वलायनगृह्यसूत्र आश्वलायनरुद्रपाठ
	शाङ्खायनसंहिता	शाङ्खायनब्राह्मण	शाङ्खायन-आरण्यक	शाङ्खायन-उपनिषद् संहितोपनिषद् बाष्कलमन्त्रो-पनिषद्	शाङ्खायनश्रौतसूत्र शाङ्खायनगृह्यसूत्र शाङ्खायनरुद्रपाठ
2.	कृष्णयजुर्वेद				
	तैत्तिरीय-संहिता	तैत्तिरीय	तैत्तिरीय	तैत्तिरीयोपनिषद महानारायणोपनिषद्	तैत्तिरीयप्रातिशाख्य
	मैत्रायणीसंहिता			मैत्रायण्युपनिषद्	श्रौतसूत्र=बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वैखानस, भारद्वाज, वाधूल, मानव, वाराह, काठक गृह्यसूत्र=बौधायन
	कठसंहिता			कठोपनिषद्	
	कपिष्ठलकठ संहिता			श्वेताश्वतरोपनिषद्	आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वैखानस, भारद्वाज, मानव, वाराह,

					काठक, अग्निवेश्य, शुल्वसूत्र
3.	शुक्लयजुर्वेद वाजसनेयि माध्यन्दिनसंहिता	शतपथ ब्राह्मण	बृहदारण्यक	ईशावास्योपनिषद् बृहदारण्यकोपनिषद्	वाजसनेयिप्रातिशाख्य कात्यायनश्रौतसूत्र पारस्करगृह्यसूत्र
	काण्वसंहिता	शतपथ			कात्यायनशुल्वसूत्र
4.	सामवेद				
	कौथुमीयसंहिता	पञ्चविंश (ताण्ड्य महाब्राह्मण) षड् विंश सामविधान आर्षेय देवताध्याय उपनिषद् संहितोपनिषद् वंश	तलवकार	छान्दोग्योपनिषद् केनोपनिषद्	आर्षेयकल्पसूत्र क्षुद्रकल्पसूत्र लाट्यायन श्रौतसूत्र गोभिलगृह्यसूत्र खादिरगृह्यसूत्र जैमिनीय द्राह्यायणश्रौतसूत्र
	राणायनीय				गौतमधर्मसूत्र सामतन्त्र, ऋक्तन्त्र पुष्पसूत्रप्रातिशाख्य मशककल्पसूत्र
	जैमिनीय	जैमिनीयब्रा० जैमिनीयार्षेय, जैमिनीयोपनिषद्			
5.	अथर्ववेद शौनकसंहिता पैप्पलादसंहिता	गोपथब्राह्मण		मुण्डकोपनिषद् माण्डूक्योपनिषद् प्रश्नोपनिषद्	अथर्वप्रातिशाख्य वैतानश्रौतसूत्र कौशिकगृह्यसूत्र अथर्वप्रातिशाख्यसूत्र शौनकीया चतुरध्यायिका

First Publication of the Vedas
वेदों के प्रथम प्रकाशन

1. Ṛgveda : Freidrich Rosen (1805-37) incomplete : 1838
2. Ṛgveda : F Max Müller (1823-1900) complete in 6 parts with Sāyaṇa Bhāṣya, 1st part Oxford Oct. 1849; 6th 1873
3. Ṛgveda : Max Müller, Text + Padapātha 2 vols. March 1873 & 77
4. Ṛgveda : Max Müller, 2nd edition in 4 parts 1890-92 London, Henry Frowde Oxford University Press Warehouse, Amen Corner
5. Śukla Yajurveda : Albrecht Weber, 1852-59
6. Kṛṣṇa Yajurveda : Maitrāyaṇī in 2 parts Leopold V. Schroder, 1861-86
7. Kṛṣṇa Yajurveda : Kāṭhaka Saṁhitā 4 vols - 1900-1910
8. Sāmaveda German Translation Theodor Benfey, 1848
9. Atharvaveda : Roth & Whiteny Berlin, 1855-56
10. Alharvaveda : Pippalāda Saṁhitā Morris Bloomfield & Richard Grade (1857-1927)

प्रथमाध्याय

ऋग्वेद का स्वरूप एवं शाखाएँ

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तम्।

(ऋ. १.१.१)

यथाऽनादिर्हरिः ख्यातो निदानं जगतां परम्।
तथा वेदोऽपि शास्त्राणां स्मृत्यादीनां महाशयः॥

(महिदासः-चरणव्यूहभाष्यम्)

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥

(महाभा० वनपर्व)

ऋग्वेद का स्वरूप

ऋचां स्तुतीनां वेदः ऋग्वेदः = ऋचाओं स्तुतियों प्रार्थनाओं का वेद है ऋग्वेद। ऋक् शब्द का अर्थ है स्तुति प्रार्थना जिसके द्वारा देवविशेष की अर्चना पूजा की जाती है—

ऋक्-अर्चनी, अर्च्यते प्रशस्यतेऽनया देवविशेष इति- सायणाचार्यः
ऋचन्ति स्तुवन्ति वर्णयन्ति वा सत्तत्वमिति ऋचः स एव ऋग्वेदः

इस प्रकार इस वेद में मुख्य रूप से देवताओं की स्तुतियाँ प्रार्थनाएँ हैं। अग्नि-इन्द्र-वरुण-विष्णु-पूषन्-उषस् इत्यादि देव-देवियों (देवताओं) की उपासना की गई है और मुख्य रूप से ये देवता प्रकृति की शक्तियाँ हैं। इन शक्तियों को देवत्वस्वरूप प्रदान करके दैवतभाव से इनकी प्रार्थना की गई है। इसलिए ऋग्वेद मुख्य रूप से प्रकृति की पूजा उपासना है और देव का अभिप्राय है दानात् दीपनात् द्योतनात् स्तुतिकर्त्ता प्रार्थी को काम्य अभीष्ट फल प्रदान करने के कारण, स्वयं प्रकाश रूप होने के कारण और प्रार्थी को भी प्रकाशमय बना देने के कारण इनकी देव संज्ञा अन्वर्थक है। वस्तुतः प्रकृति चेतन संवेदनशील हैं, सहज रूप से उपकारिणी वरदायिनी है, इससे जीवनोपयोगी विविध पदार्थों वस्तुओं की प्राप्ति होती है। इसमें तेजस्विता प्रकाश है, भव्य रमणीय आकर्षक स्वरूप है अपने इस मनोरम स्वरूप से सभी को आकर्षित करती है। आह्लादित प्रफुल्लित करती है, शक्ति प्रदान करती है और कभी-कभी इसका भयावह रौद्ररूप भी प्रकट होता है और सभी को भयभीत कर देती है। इसलिए ऋषियों द्वारा अभीष्ट फल की प्राप्ति और रक्षा के लिए सर्वसमर्थ देवरूप में प्रकृति की इन शक्तियों की उपासना की गई है। व्यापक एवं शक्तिसम्पन्न प्रकृति के प्रति ऋषियों का यही उदात्त पूज्य भाव है क्योंकि प्रकृति के ही स्वच्छ सुरम्य क्रोड में ऋषियों का निवास आश्रम होता था, प्रकृति के साथ सह अस्तित्व था, प्रकृति से सर्वविध लाभान्वित होते थे, इसीलिए कल्याणकारिणी प्रकृति के प्रति ऋषियों में सहज ही कृतज्ञता का उदात्तभाव छन्दोमयी वाणी, ऋचाओं के रूप में अभिव्यक्त हो गया और प्रकृति की सभी शक्तियों की दैवतभाव से पूजा की। कार्यकलापों का प्रफुल्लित मन से गान किया और इस तरह उनकी अपनी प्रतिभा का प्राकट्य भी हो गया।

इस तरह ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों का मानवीकरण किया है। मुख हाथ पैर शिर चक्षु कर्ण आदि पुरुषविध अङ्गों अवयवों से, वस्त्रालंकारों से तथा रथ अश्वादि वाहनों से अभिमण्डित किया है। अत्यन्त देदीप्यमान तेजोमय चित्ताकर्षक मनोमोहक इनका बाह्य स्वरूप है। इनको पिता-माता स्वरूप, भ्राता-मित्रादि आत्मीय मानवीय सम्बन्धों से संयुक्त किया है। अपरिमित सर्वशक्ति सामर्थ्य से इनको समन्वित किया है। इनको दानशील उपकारक रक्षक रूप में माना है। ये सभी प्रकार से वाञ्छित काम्य फल प्रदान करने वाले हैं तथा अपने स्तुतिकर्ता प्रार्थी को शत्रुओं एवम् आपदाओं से रक्षा करके विजयी बनाने वाले हैं, बिना विलम्ब किए तत्क्षण स्तुतिकर्त्ता की रक्षा करते हैं।

इस प्रकार ऋग्वेद मुख्य रूप से प्राकृतिक शक्तियों के भव्य रमणीय स्वरूप का संकीर्तन हैं, लाभप्रदायक उनके गुणों का रसमय गान है। पुत्र-पौत्रादि उत्तम प्रजा, पशु-अन्न-विद्या-यश आदि प्राप्तव्य काम्य धन हैं। वैदिक ऋषि बड़े ही भोले भाले सरल सौम्य हैं। इसलिए वे बड़ी ही सहजता, सरलता भोलेपन निष्कपट भाव से मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति के लिए सर्वशक्तिसम्पन्न उपकारक दयालु मृळयाकु देवताओं से अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं तथा बड़ी ही तन्मयता और पूर्ण आत्मविश्वास से उनकी प्रार्थना करते हैं। बिना किसी बनावटीपन के स्वच्छ मन से अपने हृद्गत मनोभावों को प्रकट कर देते हैं।

प्रकृति की इन शक्तियों के रूप में प्रत्यक्ष विराजमान इन देवी-देवताओं को आत्मीय सम्बन्धी मानकर उनसे प्रभावशाली शब्दों में निवेदन करते हैं। उनको पूर्ण विश्वास है कि उनकी याचना अमोघा है, अवश्य ही पूरी होगी। ये देवी-देवता अनलस अप्रमादी हैं। स्तुतिकर्त्ता की रक्षा करना और अभीष्ट फल प्रदान करना उनका सहज स्वभाव है। यही तो है इन ऋषियों का इन शक्तियों के प्रति देवत्वभाव।

ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों के मानवीकृत इन देवी-देवताओं के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। उपमा-रूपकादि आलंकारिक भाषा में भावभरित भाव से इनकी बहुविध विशेषताओं द्वारा गुणगान किया है, भव्य स्तुति की है।

पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युरूप से तीन लोक हैं। इन्हीं लोकों की दृष्टि से इन देवताओं का त्रिविध वर्गीकरण किया गया है- पृथिवी स्थानीय देव, अन्तरिक्ष स्थानीय तथा द्यु स्थानीय। पृथिवीस्थानीय देवों में अग्नि प्रमुख है और इस ऋग्वेद का प्रारम्भ ही अग्नि की स्तुति से होता है—

अग्निमीळे पुरोहितम्।

अन्तरिक्ष स्थानीय देवों में इन्द्र प्रधान है तथा मन्त्रों की दृष्टि से 2500 मन्त्रों में अर्थात् ऋग्वेद के चतुर्थभाग में प्रार्थित होने वाला यह महत्तम देव है। द्यु स्थानीय देवों में प्रमुख वरुण है।

अग्नि का स्वरूप

मानवीय आकृति से विभूषित यह अत्यन्त देदीप्यमान भास्वर स्वर्णिम स्वरूप वाला है। प्रज्ञा सम्पन्न यह सर्वज्ञ एवं सर्वाधिक रमणीय धनों से समृद्ध है, इसलिए मनोवाञ्छित फल प्रदान करने के कारण यह देव है। यह कल्याणकारी हित संयोजक होने से स्तुतिकर्त्ता का बन्धु और पिता है। यह यज्ञकर्त्ता ऋत्विज् तथा पुरोहित है। मनुष्य तथा देवताओं के मध्य में सम्पर्क बनाने वाला यह दूत है यज्ञ में भी देवताओं को बुलाने वाला होता है तथा यज्ञ में यजमान द्वारा प्रदत्त हव्यसामग्री को तत्तद् देवताओं के पास ले जाने वाला यह हव्यवाहन है। इसी के माध्यम से सभी देवता हव्य को ग्रहण कर पाते हैं, इसलिए देवताओं को अग्निमुख कहा गया है।

स नः पितेवं सूनवेऽग्ने सूपायुनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ 1.1.9

इन्द्र का स्वरूप

अन्तरिक्ष स्थानीय देव इन्द्र ऋग्वेद का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देवता है। यह अत्यन्त तेजस्वी शक्तिशाली पराक्रमी देव है, शोभन मानवीय अङ्गों से विभूषित सूनरः सुशिप्रः है। हाथ में वज्र धारण करने से वज्री वज्रबाहु वज्रभृत् वज्रहस्त है। रथ पर आरूढ़ होने से रथेष्ठा है। इस रथ को दो अश्व खींचते हैं इसलिए यह हरी है। शौर्य शक्ति का प्रतीक होने से शतक्रतु शचीवान् शचीपति है। अहिरूप मेघ का भेदन करके जल की वर्षा करता है और वृत्र द्वारा निरुद्ध जल की धाराओं को प्रवाहित करने वाला अपां नेता है और इस अवर्षण को दूर करके सभी को आह्लादित करता है। ऋषि ने इसका बहुत ही सजीव चित्रण किया है—

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव॥ 1.32.8

यह विजयश्री प्रदाता युद्ध का देवता है, इसलिए पक्ष-विपक्ष दोनों ही सेनाएँ अपनी-अपनी विजय के लिए इसका आह्वान करती है—

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवरउभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः॥ 2.12.8

सोमरस इसको अधिक प्रिय होने से यह सोमपा है और स्तुतिकर्त्ता को मनोवांछित प्रभूत धन प्रदान करने से यह मघवा है।

वरुण का स्वरूप

द्युस्थानीय देवता वरुण मुख्य रूप से दिव्य नियम का नियामक ऋत का देवता है। अत्यन्त तेजोमय स्वर्णिम स्वरूप है। स्वर्णिम मुकुट से विभूषित है उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित यह सम्पूर्ण लोक व्यवस्था का निरीक्षण करता रहता है। वनस्पतियों में भी इसके गुप्तचर विद्यमान रहते हैं। इस तरह सभी प्राणियों के आचरण कार्यकलापों को देखता रहता है, इससे कुछ भी छिपा अज्ञात अगोचर नहीं रहता। हाथ में पाश धारण करने से वह पाशभृत है, अपराधी को यह पाश से बाँध कर दण्ड देता है। इसके बनाए गए नियम का कोई भी उल्लंघन अतिक्रमण नहीं करता—

अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि। 1.24.10

देवमण्डल में अन्य प्रमुख देव हैं- सवितृ-बृहस्पति-विष्णु-पूषन्-अश्विना।

वरुणदेव के समान ही सविता देव भी ऋत का नियामक देव है। सृष्टि की समस्त व्यवस्था का यह नियमन करता है। समस्त जगत् को यह क्रियाशील बनाता है। पृथुपाणि विशाल प्रशस्त भुजाओं वाला यह देवता सभी प्राणियों को प्रेरणा प्रदान करने के लिए अपनी दोनों भुजाओं को ऊपर उठाता है और इसी के द्वारा बनाए गए नियमों में सभी नियन्त्रित रहते हैं, जल की धाराएँ अविरल प्रवाहित हो रही हैं और वायु सम्पूर्ण भूमण्डल में रमण कर रहा है प्रवाहित हो रहा है—

विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद् वातो रमते परिज्मन्॥2.38.2

सायंकाल होते ही यह सवितृदेव सभी प्राणियों को यथास्थान सुव्यवस्थित कर देता है। अपने घर से बाहर गए मनुष्यों की इच्छा घर आने के लिए हो जाती है। इसी देवता द्वारा विश्राम के लिए रात्रि बनाई गई है। अतः अपने कार्यों को अधूरा छोड़कर मनुष्य घर की ओर चल पड़ते हैं। इसने जलीय जीवों को जल में, पशुओं को बाड़ों में, पक्षियों को वनों में स्थापित कर दिया है, कोई भी जीव इसके बनाए गए नियमों का अतिक्रमण नहीं करता। बड़ी ही प्रभावशाली आलंकारिक भाषा में ऋषि ने इसकी साधु व्यवस्था का चित्रण किया है—

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत्।
त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति॥ 2.38.6;7

इसी देव के द्वारा बनाए गए नियम के अनुसार सभी को विश्राम प्रदान करने वाली रात्रि का आगमन होता है।

विष्णुदेव का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। नित्य परमप्रकाशमय ऊर्ध्वलोक में यह स्थित है। यहाँ पर मधु का सरोवर है। विशाल प्रशस्त कदमों वाला यह उरुगाय उरुक्रम त्रिविक्रम है। अपने तीन कदमों से यह तीनों लोकों को नाप लेता है। इस तरह पौराणिक वामनावतार का बीज यहाँ विष्णु के रूप में मिलता है।

पूषन् देव का स्वरूप अत्यन्त उपकारक है। यह पशुधन का रक्षक है। गोष्ठ से प्रातः चरने गईं गायें सायंकाल बिना किसी आघात के सुरक्षित आ जाती हैं, नष्ट नहीं होती। इसलिए ऋषि अपने गोधन की रक्षाहेतु पूषन् देव से प्रार्थना कर रहा है—

पूषा गा अन्वेतु।
माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे।
अथारिष्टाभिरा गहि॥ 6.54.5;7

बृहस्पति देव को मन्त्रों का राजा स्वामी कहा गया है। यह स्तुतिकर्त्ता को सुनीति से सन्मार्ग पर ले जाता है और सभी प्रकार से उसकी रक्षा करता है। यह शत्रुओं का संहारक है—

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत्॥ 2.23.4

अश्विनीकुमारों का युगल स्वरूप है। यह अत्यन्त सुन्दर तथा नित्य युवारूप हैं। सत्यप्रतिज्ञ होने से नासत्या रूप में सुविख्यात हैं। मधु प्रिय होने से माध्वी हैं। विस्मयपूर्ण आश्चर्यजनक विलक्षण कार्यों के सम्पादक रूप में प्रसिद्ध हैं। देवताओं के भी वैद्य हैं। स्तुतिकर्त्ता की सभी प्रकार से रक्षा करते हैं। तृषित गोतम की पिपासा शान्तिहेतु सुदुर से कूप उसके पास ले आते हैं। अत्रि को अग्नि के भीतर से सुरक्षित बाहर ले आते हैं वध्रीमती को पुत्र प्रदान करते हैं। वृद्धच्यवन ऋषि की वृद्धावस्था दूर करके उनको युवा बना देते हैं। समुद्र में डूबते हुए भुज्यु को सकुशल बाहर ले आते हैं। विश्पला की टूटी हुई जाँघ को लौह की प्रत्यारोपित करते हैं और दौड़ की प्रतियोगिता में उसको विजयी बना देते हैं, इत्यादि विलक्षण कार्यों के कर्त्ता रूप में अश्विनीकुमार सुप्रख्यात हैं।

उषस्

ऋषियों ने काम्यफल की प्राप्तिहेतु जैसे विविध देवों की प्रार्थनाएँ की हैं उसी प्रकार देवियों की भी। देवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है उषस्। यह परम लावण्यमयी ज्योतिर्मयी हिरण्यवर्णा सूनरी युवती हैं, सौन्दर्य रूपमाधुरी सुषमा की यह देवी है, शोभन चमकीले वस्त्रों एवं स्वर्णिम अलंकारों को धारण करने वाली यह चन्द्ररथा है, स्मितवदना कुमारी कन्या है। इसका स्वरूप अत्यन्त चित्ताकर्षक मनोमोहक है।

रङ्गमञ्च पर उल्लासमय नृत्य करती हुई नर्तकी की भाँति प्रतिदिन प्रातः प्राची

क्षितिज पर इसका प्राकट्य हो जाता है। नित्यप्रति उदित होने वाली वह पुराणी युवती है। ऊर्ध्व स्थान पर स्नान करती हुई सुन्दर युवती की तरह यह अपने स्वरूप को व्यक्त करती है। स्तुतिकर्त्ता को अभीष्ट फल प्रदान करने वाली यह रेवती दास्वती वाजिनीवती मघोनी है। अपने आगमन से अन्धकार को दूर करके समस्त प्राणियों को यथायोग्य कार्यों में संलग्न कर देती है। पक्षियों को आकाश में संचरण हेतु भेज देती है। यहाँ तक कि याचकों को धनी व्यक्तियों के घरों पर भेज देती है। इस तरह दिव्यनियम की नियामिका ऋतावरी है। ऋत के मार्ग का स्वयं अनुसरण करती है। कभी भी विलम्ब प्रमाद नहीं करती इस तरह समस्त प्राणिजगत् को प्रेरणा प्रदान करती है। इसके उदित हो जाने पर कोई पक्षी अपने घोसले नीड में बैठा नहीं रह जाता। प्रातःकालीन सवन में सोमरस पानहेतु सभी देवताओं को अन्तरिक्ष से ले आने के लिए तथा सभी प्रकार के धन की प्राप्ति हेतु ऋषि इसकी प्रार्थना करते हैं। 4.48.6,12; 5.80.4,5

काव्यकला की दृष्टि से उषस् सूक्तों का विशिष्ट स्थान है। उत्कृष्ट काव्य सौन्दर्य से यह अभिमण्डित हैं।

इस प्रकार ऋग्वेद में मुख्य रूप से ऋषियों द्वारा की गई अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ है। सभी देवी-देवता वरदायक अभीष्ट फलप्रदायक एवम् आपत्तिरक्षक हैं। इन्हीं के उदात्त गुणों विशेषताओं एवं कार्यों का इसमें उदात्त भावों से संकीर्तन है। इस तरह विविध देवी-देवताओं की स्तुति होने से इसमें प्राकृत बहुदेववाद है, पर यही स्तुति एकेश्वर सर्वेश्वररूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। यहाँ पर एक ही देव की सर्वस्वरूप में प्रार्थना की गई है।

एक ही देव को परमदेव मानकर विविध संज्ञाओं से उसको सम्बोधित किया गया है। वह परमतत्त्व सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् है, यह सम्पूर्ण जगत् में अनुस्यूत ओतप्रोत परिव्याप्त है। अतः जगत् की उद्भव स्थिति का यही हेतु हैं, इसी को अदिति, वाक्, पुरुष प्रजापति हिरण्यगर्भ इत्यादि कहा गया है।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। 1.164.46

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥1.89.10

पुरुष एवेदं सर्वम्। 10.90.2

इत्यादि रूप से यहाँ पर पूर्ण अद्वैततत्त्व की प्रतिष्ठा की गई है और वस्तुतः यही ऋग्वेद की मूल विषयवस्तु है।

वेदशाखा का अभिप्राय

दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत समस्त मन्त्रों की समष्टिरूप वेद एक अत्यन्त समृद्ध बृहद् वृक्ष है। यथा वृक्ष की शाखा-प्रशाखाएँ चारों तरफ फैली रहती हैं, उसी प्रकार वेदवृक्ष की ऋक्-यजुष्-साम-अथर्व रूपी चार अति पृथुल विशाल शाखाएँ हैं और शाकल-तैत्तिरीय-कौथुम-शौनक इत्यादि बहुविध प्रशाखाएँ हैं।

परमपुरुष भगवान् विष्णु द्वारा प्रयोजनानुसार धारण किए गए विविध अवतारों के निरूपण क्रम में श्रीमद्भागवत में वेद को एक वृक्ष के रूप में प्रकल्पित किया गया है—

ततो सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥ 1.3.21

भगवान् विष्णु के ज्ञानावतारी बादरायण कृष्ण द्वैपायन ने एक ही इस वेदवृक्ष की ऋक्-यजुष् - साम-अथर्व रूपी 4 शाखाएँ बनाई और इसी वेद विभाजन के कारण वे वेदव्यास इस अभिधान से सुप्रख्यात सुप्रथित हुए—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः। भागवत 9.14.49
वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः। महाभा. वनपर्व
तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदान् महामतिः।

यहाँ पर वेद को तरु तो कहा गया है, पर वृक्ष तरु की शाखाओं में परस्पर सादृश्य अधिक होता है, परन्तु व्यासदेव द्वारा विभाजित एक ही वेदतरु की ऋक्यजुष् साम अथर्व रूपी इन चार शाखाओं में उस प्रकार का साम्य नहीं है। इनमें से एक में स्तुत्यात्मक ऋचाएँ हैं, एक में यज्ञानुष्ठान कर्म-ज्ञापक गद्यात्मक यजुस् हैं, एक में तो गीत्यात्मक सामन् है और एक में शान्ति पुष्टिकर्म ब्रह्म अभिचार सम्बन्धी मन्त्र हैं। यद्यपि इनमें मन्त्रगत बहुत कुछ साम्य है। वृक्ष की शाखाओं में स्वरूपगत भिन्नता नहीं होती, संख्यात्मक अनेकता होती है। यद्यपि इन चारों संहिताओं की जो अवान्तर शाखाएँ उपशाखाएँ हैं, इनमें परस्पर अधिक साम्य समरूपता है। सभी शाखाएँ अपनी-अपनी मूलसंहिताओं से सम्बद्ध हैं। यथा ऋग्वेद की शाकल-बाष्कल-आश्वलायन-शाङ्खायन, यजुर्वेद की तैत्तिरीय-मैत्रायणी, सामवेद की कौथुम, राणायनीय, जैमिनीय और अथर्ववेद की शौनक, पिप्पलाद इत्यादि। इसी रूप में किसी समय ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 9 शाखाएँ रहीं होगी, जो सभी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार यहाँ पर वेदतरु की शाखाएँ होने का यही अभिप्राय है कि जिस प्रकार सभी शाखाएँ अपने मूल वृक्ष से जुड़ी रहती हैं उसी प्रकार ये सभी वेद शाखाएँ अपनी-अपनी मूल वेदसंहिताओं से सम्बद्ध हैं। इस तरह मूल 4 वेदतरु हैं।

कृष्णद्वैपायन ने ऋषि परम्परा से प्राप्त मन्त्रों का संकलन करके ऋक्-यजुस्-साम- अथर्व रूप में चतुर्धा विभाग करके इनको पैल-वैशम्पायन-जैमिनि-सुमन्तु नामक अपने 4 शिष्यों को पढ़ाया। इस तरह मूलतः एक वेद की 4 संहिताएँ हो गईं। पुनः इन आचार्यों ने अपने-अपने शिष्यों को अपनी-अपनी संहिताएँ प्रदान की। व्युत्पन्न इन शिष्यों ने मौखिक वाचिक उपदेश द्वारा इन संहिताओं का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। इस तरह आचार्यभेद स्थानभेद उच्चारणभेद से एक ही वेदतरु की असंख्य शाखाएँ हो गईं। वेदवृक्ष पादप महाकानन का अत्यन्त समृद्ध स्वरूप हो गया—

योऽयमेको यथा वेदतरुस्तेन पृथक्कृतः।
चतुर्धाथ ततो जातं वेदपादपकाननम्॥
विभेद प्रथमं विप्र पैलो ऋग्वेदपादपम्। विष्णु. 3.4.15-16

और ऋषियों की वंश-परम्परा तथा शिष्य-परम्परा में यह मूलतः एक ही वेदतरु असंख्य शाखा-प्रशाखाओं के रूप में अत्यन्त समृद्ध हो गया।

मूल एक ही वेद संहिता के चतुर्धा विभाजन में यज्ञानुष्ठान भी हेतु है। यज्ञ सम्पादन कर्म में सुविधा की दृष्टि से मन्त्रों का संकलन एवं विभाजन 4 संहिताओं के रूप में हुआ है। होता-अध्वर्यु-उद्गाता-ब्रह्मा नामक 4 प्रमुख ऋत्विक् होते हैं। देवस्तुति विषयक मन्त्रों का संकलन ऋग्वेद है यही है विविध यज्ञों में प्रयुक्त मन्त्रों का होतृकर्म का निरूपक ऋग्वेद। आध्वर्यव कर्महेतु यज्ञों में अध्वर्यु नामक ऋत्विक् के लिए यज्ञकर्म क्रम के अनुसार यजुष् मन्त्रों का संकलन है यजुर्वेद। उद्गाता नामक ऋत्विक् यज्ञ के समय देवस्तुतियों का गान करता है यही है औद्गात्रकर्म और व्यापक सामगानों की संहिता हैं सामवेद। ब्रह्मा नामक ऋत्विक् यज्ञ का प्रधान अध्यक्ष होता है। अपने निरीक्षण में यह यज्ञानुष्ठान को सम्पन्न कराता है। यह सर्ववेदवेत्ता होता है। शान्ति विषयक तथा रक्षा विषयक मन्त्रों का ज्ञाता होता है। शान्ति पुष्टि भैषज्यादि विद्याओं का ज्ञाता होता है। इस यज्ञानुष्ठानकर्म के सम्पादक चारों ऋत्विजों का उल्लेख स्वयं ऋग्वेद कर रहा है।[1]

इस तरह यज्ञानुष्ठान में सौकर्य की दृष्टि से 4 संहिताएँ हो गई। यज्ञानुष्ठान की

1. **ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।**
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः॥ ऋ. १०.७१.११

दृष्टि, विचार से विभाजित इन चार वेद संहिताओं में यजुर्वेद की प्रधानता है। याज्ञिक दृष्टि से यजुर्वेद भित्तिस्थानीय है तथा ऋग्वेद और सामवेद चित्र स्थानीय हैं। शाखा का अभिप्राय है किसी शास्त्र या विद्या के अन्तर्गत प्रवचनकर्त्ता आचार्यों के कारण उपभेदों का हो जाना। इसी प्रकार वेद की एक ही मूल संहिता में ऋषियों की वंशकुल, गुरु-शिष्य परम्परा में वाचिक रूप से मन्त्रों को प्रदान करने में पाठगत-क्रमगत-उच्चारणगत कुछ वैशिष्ट्य का आ जाना। प्राचीनतम वेदनिधि के संरक्षण एवम् अध्ययन-अध्यापन हेतु ऋषियों के अपने-अपने पृथक्-पृथक् आश्रम एवं गुरुकुल हुआ करते थे। वंश-गोत्र तथा शिष्यों की परम्पराएँ थीं। इनके अपने वंश-गोत्र परम्परा में भी वेदों का संरक्षण एवम् अध्ययन-अध्यापन होता रहा। यह संरक्षण वाचिक श्रुतिपरम्परा मौखिक रूप में चलता रहा। वेदों का लिखित रूप नहीं था। ऋषियों एवम् आचार्यों द्वारा अपनी तपश्चर्या से प्राप्त साक्षात्कृत मन्त्रों को अपने पुत्रों एवं शिष्यों को मौखिक रूप से प्रवचन पद्धति से प्रदान किया जाता रहा। वाचन एवं श्रवण की इस परम्परा में आचार्यों, स्थान, उच्चारण के भेद के कारण मूल संहितापाठ में कुछ अन्तर आता गया। पाठभेद-क्रमभेद, संख्या-भेद, उच्चारण भेद होने लगा। कुछ पाठ छूट गए, कुछ नए जुड़ गए। मन्त्रों का यज्ञीय अनुष्ठानों में विनियोग होता है। यहाँ पर भी आचार्य-भेद, अनुष्ठान-भेद से मन्त्रों के मूलपाठों में एवं क्रम में कुछ अन्तर आता गया और इस तरह अपनी ही मूल संहिता से कुछ भेद वाली संहिताएँ हो गईं। यही है शाखा भेद। और प्रवचनकर्त्ता आचार्यों के नाम से इन शाखाओं की प्रसिद्धि हो गई।

इस प्रकार जिस वंशकुल-विद्याकुल-गुरुकुल में आचार्य द्वारा जिस वेदसंहिता-अङ्ग का उपदेश-प्रवचन अपने पुत्रों, वंशजों, शिष्यों के लिए किया गया उन्हीं के नाम से उस शाखा का नामकरण हो गया। इस तरह एक ही मूलसंहिता में इसी आधार पर विभिन्न शाखाओं, प्रशाखाओं का नामकरण हो गया। इस तरह शाखाभेद का हेतु प्रवचनकर्त्ता आचार्य उसका वंश एवं गुरुकुल में भेद होना है।

ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत विमल ज्ञाननिधि शब्दपुञ्ज की अभिव्यक्ति मन्त्रों के रूप में हुई। इसी प्रकार लौकिक संस्कृत में सूत्रों, कारिका, श्लोकों के रूप में हुई। साक्षात्कृत ज्ञान के व्यञ्जक मन्त्र है। यह शब्द-पुञ्ज त्रिविध हैं—

1. पद्यात्मक 2. गद्यात्मक तथा 3. गीत्यात्मक।

1. होता नामक ऋत्विक् अग्नि-इन्द्र-वरुण-उषस् आदि देवताओं का शंसन स्तुति जिन मन्त्रों से करता है, वहीं है ऋग्वेद।

2. अध्वर्यु नामक ऋत्विक् यज्ञ का नेता होता है, यज्ञीय अनुष्ठानों को यही स्वयं अपने हाथों से करता है। यथा यज्ञभूमि का संस्कार, वेदिनिर्माण, यज्ञीय पात्रों को तैयार करना, समिधा, जल आनयन, अग्नि समिद्ध करना। पुरोडाशचरु पकाना, आज्य तैयार करना इत्यादि याज्ञिक कर्मों अनुष्ठानों को सम्पन्न करना।
3. उद्गाता नामक ऋत्विक् देवता विषयक स्तोत्रों का गान करता है यही है सामगान की संहिता आर्चिक संहिता सामवेद।
4. ब्रह्मा नामक ऋत्त्विक् यज्ञ का प्रधान ऋत्विक् अधिष्ठाता होता है। अपने निर्देशन में यह समस्त अनुष्ठानों को सम्पन्न कराता है। रक्षा सम्बन्धी मन्त्रों द्वारा विघ्न बाधाओं से यज्ञ की रक्षा करता है। शान्ति-पुष्टिकर्म का ज्ञाता होता है। यही है अथर्ववेद। यह वेदत्रयी का भी ज्ञाता होता है।

इस तरह यज्ञानुष्ठान की दृष्टि से ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्र 4 संहिताओं में विभक्त किए गए हैं। इस प्रकार ऋग्वेदी-यजुर्वेदी-सामवेदी-अथर्ववेदी रूप से मन्त्रों के प्रथमतः चार प्रमुख विभाग बने। पुनः प्रवचनकर्त्ता आचार्य एवं सम्प्रदायों गुरुकुलों के भेद से अवान्तर उपविभाग बन गए। यथा ऋग्वेद के शाकल-बाष्कल-आश्वलायन-शाङ्खायन, यजुर्वेद के तैत्तिरीय-मैत्रायणी-कठ, सामवेद के कौथुम-राणायनीय-जैमिनीय और अथर्ववेद के शौनक-पैप्पलाद इत्यादि। इस प्रकार ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत मन्त्रों की बहुविध असंख्य संहिताएँ शाखाएँ प्रशाखाएँ हो गईं।

वैदिक वाङ्मय में वेदशाखा सन्दर्भ

एक ही वेद की बहुविध चतुर्विध शाखाओं का उल्लेख तो स्वयं वेद ही कर रहे हैं। पुरुषसूक्त में सर्वव्यापक परम पुरुष से नामरूपात्मिका इस सम्पूर्ण सृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है। सृष्टि के आविर्भाव के साथ ही वेदों का भी आविर्भाव हुआ। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में सृष्टि-प्रक्रिया का साधु निरूपण है। सर्वहुत यज्ञ से ऋचाएँ, साम, छन्द तथा यजुष् की उत्पत्ति हुई।[3] इस निरूपण में पद्यात्मक, गीत्यात्मक तथा गद्यात्मक त्रिविध संहिताओं का कथन है। पद्यात्मक होने से अथर्ववेद का इन्हीं में अन्तर्भाव है। अथर्ववेद स्वयं प्रस्तुत करता है कि स्कम्भरूप ब्रह्म से ऋचाएँ- यजुस्-साम तथा अथर्व की उत्पत्ति हुई।[3]

---

2. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ ऋ. १०.९०.९, शु.यजु., ३१.७
3. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दौं ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ अथर्व., १९.६.१३

इस प्रकार स्वयं वेदों में ही वेद की ऋक् यजुस् साम तथा अथर्व चारों शाखाओं की उत्पत्ति का कथन है। इस तरह एक ही वेदवृक्ष की यही प्रथमतः चार शाखाएँ हैं।

वैदिक संस्कृति यज्ञीय संस्कृति है। यज्ञ इसका प्रमुख अनुष्ठान है। इसके सम्पादन हेतु चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है- होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा। होता ऋग्वेद का, अध्वर्यु यजुर्वेद का तथा उद्गाता सामवेद का ज्ञाता होता है। यज्ञ का अध्यक्ष ब्रह्मा सभी वेदों का ज्ञाता होता है तथा इसमें आने वाले सम्भावित विघ्नों के निवारणार्थ अथर्ववेद का भी ज्ञाता होता है। इस प्रकार यज्ञ की दृष्टि से यहाँ पर चारों वेदों ऋक्-यजुस्-साम तथा अथर्व का उल्लेख हो जाता है। यहीं चारो वेद मूलतः एक ही वेदतरु की चार शाखाएँ हैं।[4]

वैदिक वाङ्मय में वेदशाखा-सन्दर्भ

ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों में सभी वेदों का नामोल्लेख है। यही मूल एक वेद की विभिन्न शाखाएँ हैं। इन वेदों की उत्पत्ति परम पुरुष से हुई है। ऐतरेय ब्राह्मण प्रस्तुत करता है कि अग्निदेव से ऋग्वेद की, वायु से यजुर्वेद की तथा आदित्य से सामवेद की उत्पत्ति हुई है। यहाँ पर ऋक् यजुस् साम तीन वेदों का कथन है।[5] बृहदारण्यकोपनिषद् का कथन है कि ये जो चारों वेद ऋक् यजुस् साम तथा अथर्व हैं, सभी परमेश्वर के निःश्वास रूप हैं। परमेश्वर के निःश्वास से इन वेदों की अभिव्यक्ति हुई हैं।[6]

अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में सर्वज्ञ महर्षि पिप्पलाद जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान कर रहे हैं।[7] शिविपुत्र सत्यकाम को ऋषि पिप्पलाद ओङ्कार की उपासना के फल को बतला रहे हैं। इसकी उपासना से अक्षय अनन्त ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इसी फल कथन में ऋक् यजुस् साम श्रुतियों द्वारा मनुष्यलोक, चन्द्रलोक तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इस तरह यहाँ पर वेद की ऋक् यजुस् साम तीन शाखाओं का कथन हो जाता है।

---

4. **यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादुपाकषन्,**
   सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
   स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ अथर्व., १०.७.२०
5. त्रयो वेदा अजायन्त।
   ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्। ऐत.ब्रा. 5.32
6. अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वासमेतद् यद्
   ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। बृ.उ. 2.4.10 (4.5.10)

मुण्डकोपनिषद् का वचन है कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से ऋग्वेद की ऋचाएँ, सामवेद के मन्त्र, यजुर्वेद की श्रुतियाँ सभी प्रकार के यज्ञक्रतु संवत्सर चन्द्र, सूर्यादि सभी की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार परमेश्वर से इन वेदों की उत्पत्ति का कथन होने से वेदों की शाखाओं का बोध हो जाता है।

ज्ञान तो अनन्त है, इसकी कोई इयत्ता नहीं और परमात्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। कहते हैं कि 88 हजार ऋषियों के कुल, आश्रम के कुलपति महर्षि शौनक भी ज्ञानपिपासा से ब्रह्मविद्या के बोधहेतु समित्पाणि होकर श्रद्धाभाव से महर्षि अङ्गिरा के पास जाते हैं और जिज्ञासुभाव से प्रश्न करते हैं कि भगवन् किसके जान लेने पर सब कुछ जाना गया हो जाता है- महर्षि अङ्गिरा यहाँ पर दो विद्याओं का निरूपण करते हैं- अपरा तथा परा और अपरा विद्या के अन्तर्गत ही ऋक्-यजुस्-साम और अथर्व की गणना हो जाती है।[8] इस निरूपण में एक ही वेद की चार शाखाओं का बोध हो जाता है।

कृष्णयजुर्वेदीय उपनिषद् तैत्तिरीय की शिक्षावल्ली में महाव्याहृतियों का निरूपण है।[9] इन व्याहृतियों के प्रयोग द्वारा परमेश्वर की उपासना का विधान बतलाया गया है। भूः व्याहृति ऋग्वेद, भुवः सामवेद, स्वः यजुर्वेद है और महः ही ब्रह्म है और इसी ब्रह्म से सभी वेद महिमायुक्त हैं। इस तरह इन व्याहृतियों के रूप में यहाँ पर ऋक् साम और यजुर्वेद का कथन किया गया है। यहीं वेद की शाखाएँ है और सभी ब्रह्म से ही उद्भूत हैं।

यह तैत्तिरीयोपनिषद् मनोमय शरीर के स्वरूप का वर्णन करता है। यह प्राणमय पुरुष में अनुगत है। इस शरीर की पक्षी रूप में कल्पना की गई है। मनोमय शरीर का शिर यजुर्वेद है, ऋग्वेद इसका दक्षिण पक्ष और सामवेद वाम पक्ष है तथा विधिवाक्य शरीर का मध्य भाग है। अथर्ववेद इसका पुच्छ भाग है। इस तरह पक्षी के शिर पुच्छ दक्षिण-वाम पक्ष के रूप में चारों वेदों की कल्पना की गई है। इस तरह एक ही वेद की

---

7. ऋग्भिरेतं यजुभिरन्तरिक्षं सामभिर्यत् तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्रच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति।। प्रश्न. 5.7
8. कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।
द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा च। मुण्डकः 1.1.3
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।
अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।। 1.1.5
9. भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि। सुवरिति यजुंषि।
मह रति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयनते। तैत्ति., 1.5, पृ0 287

चार शाखाओं का उल्लेख हो जाता है।[10] छान्दोग्योपनिषद् में चारों वेदों का उल्लेख है।[11]

मुक्तिकोपनिषद् श्रीराम-हनुमत्संवाद में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का सुस्पष्ट उल्लेख करता है—

ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः।

इसी प्रकार नृतापनीयोपनिषद् ऋक्-यजुस् साम तथा अथर्व रूप से चारो वेदों का उल्लेख करता है।

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादाः। ऋ. 4.58.3 की व्याख्या में व्याकरण महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि ने चत्वारि शृङ्ग का अभिप्राय चत्वारो वेदाः किया है—

चत्वारि शृङ्गाश्चत्वारो वेदा एव चत्वारि शृङ्गाणीति।

इस प्रकार मूलतः एक ही ज्ञाननिधि वेद की ऋक् यजुस्, साम, अथर्व रूपी चारों वेदों तथा इनकी शाखाओं की संख्या का प्रभूत उल्लेख किया गया है।

पुराणवाङ्मय में वेदशाखा-निरूपण

दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत विमल ज्ञानराशि सकल ज्ञाननिधान वेदों का संरक्षण वाचिक मौखिक परम्परा के रूप में उन्हीं ऋषियों के वंश-कुलों में,शिष्य-प्रशिष्यों में चलता रहा। वेदनिधि रक्षण की यह श्रुति परम्परा अत्यन्त विलक्षण अद्भुत अनुपम है। पर प्रवचनकर्ता आचार्यों के भेद से तथा स्थान-काल भेद से एवं उच्चारण के भेद से मूल संहिता में क्रमभेद मन्त्रों की संख्या में भेद इत्यादि वैशिष्ट्य आता गया। ऋषियों के पृथक् पृथक् आश्रम गुरुकुल थे तथा इनके पुत्रों तथा शिष्यों की भी अपनी परम्पराएँ थीं, इनके भी अपने-अपने पृथक् पृथक् आश्रम-गुरुकुल हो गए। इस तरह मूल रूप में स्थित एक ही वेदतरु की असंख्य शाखा-प्रशाखाएँ हो गई और इनकी प्रसिद्धि भी प्रवचनकर्त्ता इन्हीं आचार्यों के नाम से हो गई।

इस वेदनिधि के विभाजन तथा ऋषियों की वंश, गोत्र एवं शिष्य परम्परा का विवरण बहुल रूप में मिलता है। पञ्चम वेद के रूप में प्रथित पुराणों में इस उदात्त परम्परा का साधु विशद वर्णन मिलता है। पुराणों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी इनका

---

10. ऋग्दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा।
अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति। तैत्ति.उ., 2.3, पृ. 311

11. ऋग्वेदं भगवोऽ ध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्। छा.पु. 7.1.2

विवरण मिलता है। इस तरह संस्कृत वाङ्मय में अपने मूल स्रोत एवं आधार प्रतिष्ठारूप वेदों के प्रति आदर भाव प्रकाशित किया गया है।

अत्यन्त बृहद् भारतीय वाङ्मय में पुराण साहित्य का अतिशय विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म एवं दर्शन, आचारशास्त्र, समाजशास्त्र, राजधर्म इत्यादि सभी क्षेत्रों को पुराण आलोकित करते हैं। सर्वत्र इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। श्रुतियों में सभी मनुष्यों का सहज रूप में प्रवेश सम्भव नहीं है। पर भाषा की सरलता सरसता रोचकता के कारण पुराण साहित्य सर्वजन ग्राह्य हैं। प्रबुद्धजनों के साथ ही साधारण जनों के लिए भी धर्म-दर्शन के निगूढ़ रहस्यात्मक भावों को सुग्राह्य बना देना पुराणों की प्रमुख विशेषता है। सरस आख्यानों रुचिर कथाओं के माध्यम से वेदों की सुबोध व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

मानव हृदय में कर्म-ज्ञान-भक्ति-वैराग्य सदाचरण नैतिकता, नास्तिकभाव की निवृत्तिपूर्वक आस्तिकभाव को बड़ी ही सहजता से प्रतिष्ठित कर देना, पुनर्जन्म, परलोक, अमरता, परमसत्ता में अटूट विश्वास स्थापित कर देना, पारिवारिक, सामाजिक सम्बन्धों की साधु व्यवस्था कर देना, पावन सच्चरित्रों की प्रस्तुति द्वारा उदात्त जीवन्मूल्यों, मर्यादित आचार संहिता की स्थापना करना पुराणों की विशेषता है। कथा-आख्यानों के माध्यम से कल्याणकारी सन्देश सुग्राह्य कराते हैं, कर्त्तव्य का बोध सन्मार्ग का प्रदर्शन करते हैं और एतदर्थ प्रेरणा प्रदान करते हैं।

दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत वेद सकल ज्ञान-निधान हैं। पर भाषा-भावादि दृष्टियों से अत्यन्त रहस्यात्मक दुर्बोध हैं। सूत्रवत् निहित इन गूढ़ रहस्यों का उपबृंहण सविस्तर प्रकाशन पुराण करते हैं। इसीलिए इतिहास और पुराणों को वेदार्थबोध में उपयोगी माना गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्

वेदार्थप्रकाशन में पुराणों की महती भूमिका है। यहाँ तक कि पुराणों की पञ्चम वेद के रूप में प्रतिष्ठा है और इनकी चतुर्दश विद्याओं में परिगणना है। पुराणों का विषय-क्षेत्र बहुव्यापक है तथापि पुराणं पञ्चलक्षणम् द्वारा समास रूप में प्रस्तुत किया गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं ज्ञेयं पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

इस तरह पुराण सृष्टि-विज्ञान का सुविशद निरूपण करते हैं। सृष्टि का आविर्भाव, तिरोभाव तथा पुनराविर्भाव। पुराणों के अनुसार प्रलय के अनन्तर इस सृष्टि

की नवीन उत्पत्ति नहीं होती है, अपितु पूर्ववत् इसका प्राकट्य होता है। सृष्टि- प्रक्रिया के निरूपण क्रम में वेदसृष्टि का भी निरूपण पुराण करते हैं। पुराण वाङ्मय में वेदनिधि की अभिव्यक्ति तथा विभाजन का साधु निरूपण है। श्रीमद्भागवत में इस सम्बन्ध में कथन है कि साधु शिरोमणि सूत महाराज से शौनक जी ने जिज्ञासा की कि किस प्रकार और किस प्रयोजन के लिए वेदव्यास ने मूलतः एक ही वेद ज्ञाननिधि का विभाजन किया और उन मन्त्र संहिताओं को पैलादि अपने शिष्यों को प्रदान किया—

पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ।
वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः॥ भागवत, 12.6.36

सूत जी महाराज शौनकादि ऋषियों को सम्बोधित करते हैं।

यथा परम पुरुष परमेश्वर से यह सृष्टि उद्भूत होती है और पुनः उन्हीं में समाहित हो जाती है, उसी प्रकार वेद भी परमेश्वर से अभिव्यक्त होते हैं और कल्पान्त में परमेश्वर में ही तिरोहित हो जाते हैं तथा नवीन कल्पादि में पुनः प्रकट हो जाते हैं। परम पुरुष परमात्मा प्रथमतः स्वनाभिकमल से ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं और उनको सभी वेदों को प्रदान कर देते हैं—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति। श्वेताश्व., 6.18

इस प्रकार वेद वस्तुतः नित्य हैं। सृष्टि की तरह परमेश्वर से इनका प्राकट्य, उन्हीं में तिरोभाव और पुनः प्राकट्य होता रहता है। प्रारम्भ में यह वेद एक ही था।[12] इसी का शाखा -प्रशाखाओं में विभाजन एवं पल्लवन होता चला आ रहा है। वेद की इन शाखाओं का निरूपण पुराणों में यथा स्थान किया गया है।

विष्णु, ब्रह्माण्ड, वायु-मत्स्य-कूर्म-भागवतादि पुराणों में सृष्टि की अभिव्यक्ति के क्रम में वेदों के आविर्भाव का, गुरु-शिष्य परम्परा का साधु निरूपण है। सभी के निरूपणों में प्रायः साम्य है। मूलरूप में स्थित इस एक ही वेदनिधि का विभाजन महर्षि बादरायण कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने किया। यह निधि बहुत ही विपुल विशाल थी। इसका संरक्षण सरल नहीं था। भावियुग में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की मेधा शक्ति अल्प होगी और जीवन अवधि भी। इनके द्वारा इन वेदों का संरक्षण हो सके, इसी दृष्टि से ब्रह्मादि देवों लोकपालों की प्रार्थना पर स्वयं भगवान् श्रीहरिनारायण वसुकन्या सत्यवती

12. एक एवपुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः। भागवत् 9.14.49

तथा ऋषि पराशर से कृष्णद्वैपायन के रूप में अवतरित होते हैं तथा इस विपुल एक ही वेदराशि को ऋक्-यजुष्-साम-अथर्व रूप में चतुर्धा विभक्त करके पैल-वैशम्पायन-जैमिनि-सुमन्तु नामक अपने चार शिष्यों को प्रदान करते हैं।

एक ही वेद का प्रथमतः विभाजन करने वाले यही कृष्णद्वैपायन हैं और इसीलिए वेद व्यास के रूप में इनकी प्रसिद्धि हुई—

वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः। महाभा. वनपर्व

श्रीगुरु व्यासदेव से प्राप्त इन वेदों को इन व्युत्पन्न शिष्यों ने प्रवचन द्वारा अपने-अपने शिष्यों को प्रदान किया। इस तरह यह एक ही वेदवृक्ष असंख्य शाखाप्रशाखाओं से समृद्ध हो गया।[13]

इस प्रकार पुराणों में श्रीभगवान् के अवतारी महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास द्वारा एक ही वेद के चतुर्धा विभाजन तथा उनकी अत्यन्त प्रशस्त सुसमृद्ध शिष्य परम्परा का वर्णन किया गया है। इस तरह एक ही वेद की चार शाखाएँ संहिताएँ हुईं—

1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद तथा 4. अथर्ववेद।

परन्तु वहाँ पर गुरु व्यासदेव के शिष्य-प्रशिष्यों का जैसा उल्लेख है उस प्रकार वेद की शाखाओं का नामोल्लेख नहीं है तथा सर्वत्र शाखाओं की संख्या का भी उल्लेख नहीं है।

मुख्यरूप से कूर्मपुराण गुरु व्यासदेव के चारों शिष्यों तथा संहिताओं का नामोल्लेख पूर्वक इनकी शाखाओं की संख्या को भी प्रस्तुत करता है। यथा—

एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
सामवेदं सहस्रेण शाखानां च विभेदतः॥
आथर्वणमथो वेदं विभेद नवकेन तु।
शाखायास्तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत्॥ कूर्म. 49.51, 52

यहाँ पर ऋग्वेद की 21, सामवेद की 1000 अथर्ववेद की 9 तथा यजुर्वेद की 100 शाखाओं का उल्लेख है।

---

13. विष्णुपुराण 3.4.16-26; ब्रह्माण्ड 34.24-31; 35.1-7; वायु 1.6024-32; 63-66; कूर्म अध्याय 49.46-52; मत्स्य 144.10-12; 6.2.4

बादरायण कृष्णद्वैपायन वेद व्यास की शिष्यपरम्परा

विष्णुपुराण = 3.4.16-26

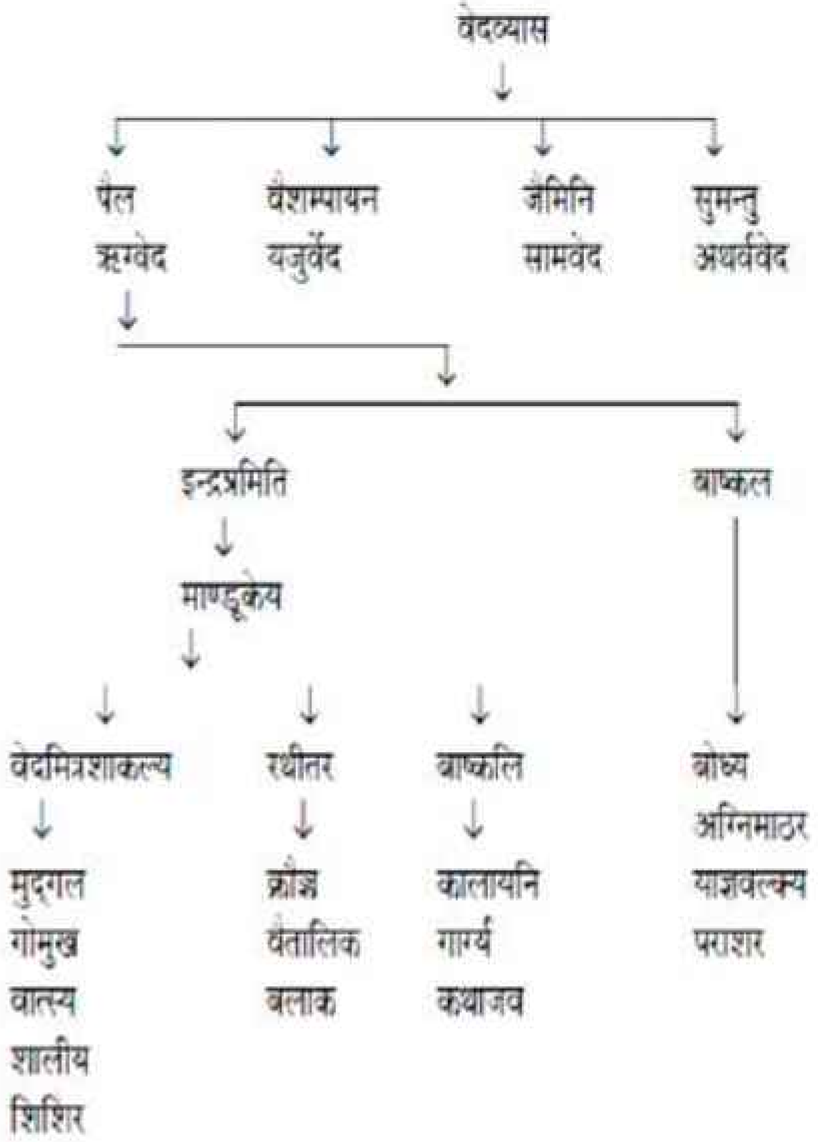

वायुपुराण = 1.60.24-32; 63.66; 61.1.4

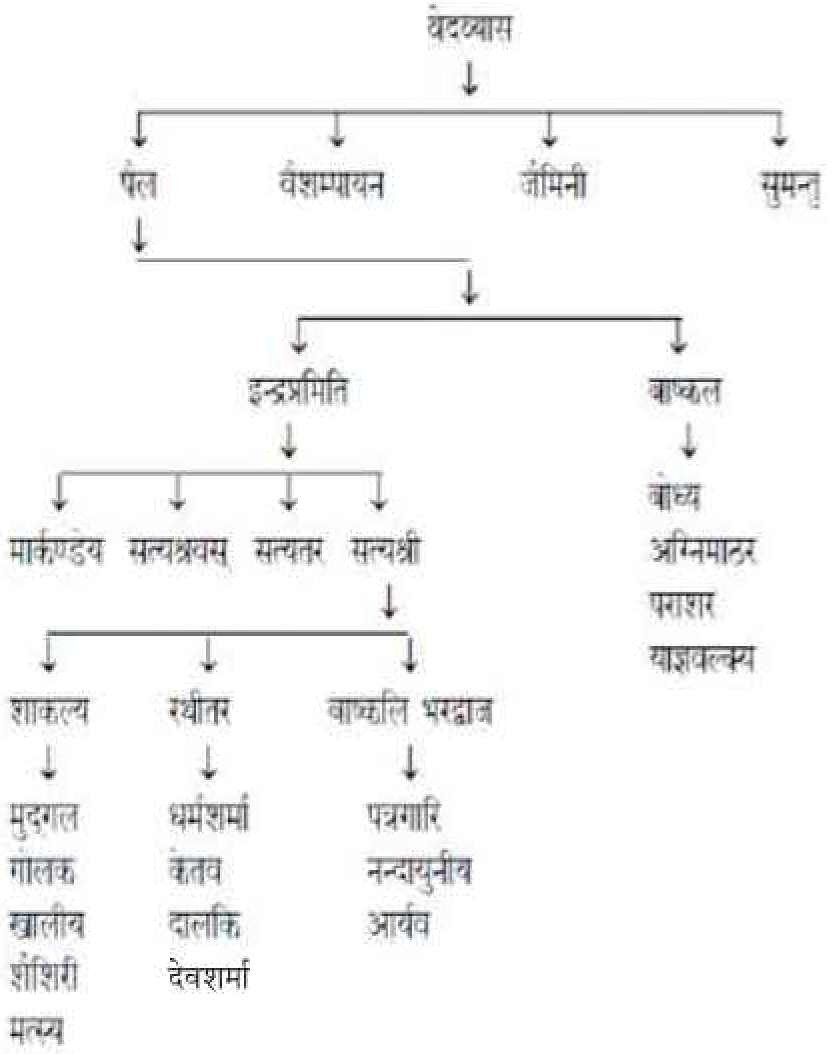

ब्रह्माण्डपुराण = 34.24-31, 35.1.7

- वेदव्यास
  - पैल
    - इन्द्रप्रमिति
      - माण्डूकेय
        - सत्यश्रवस्
          - सत्यहित
            - सत्यर्षि
              - शाकल्य
                - मुद्गल
                - वत्स
                - गोखल
                - शैशिरीय
                - खलीय
              - रथीतर
                - पैल
                - शतबलाक
                - चेक्षलक
                - गज
              - बाष्कलि भरद्वाज
                - पन्नगारि
                - त्यापनय
                - आर्जव
    - बास्कल
      - बोध्य
      - पराशर
      - अग्निमाठर
      - याज्ञवल्क्य
  - वैशम्पायन
  - जैमिनी
  - सुमन्तु

श्रीमद्भागवतपुराण = 12.6.54-59

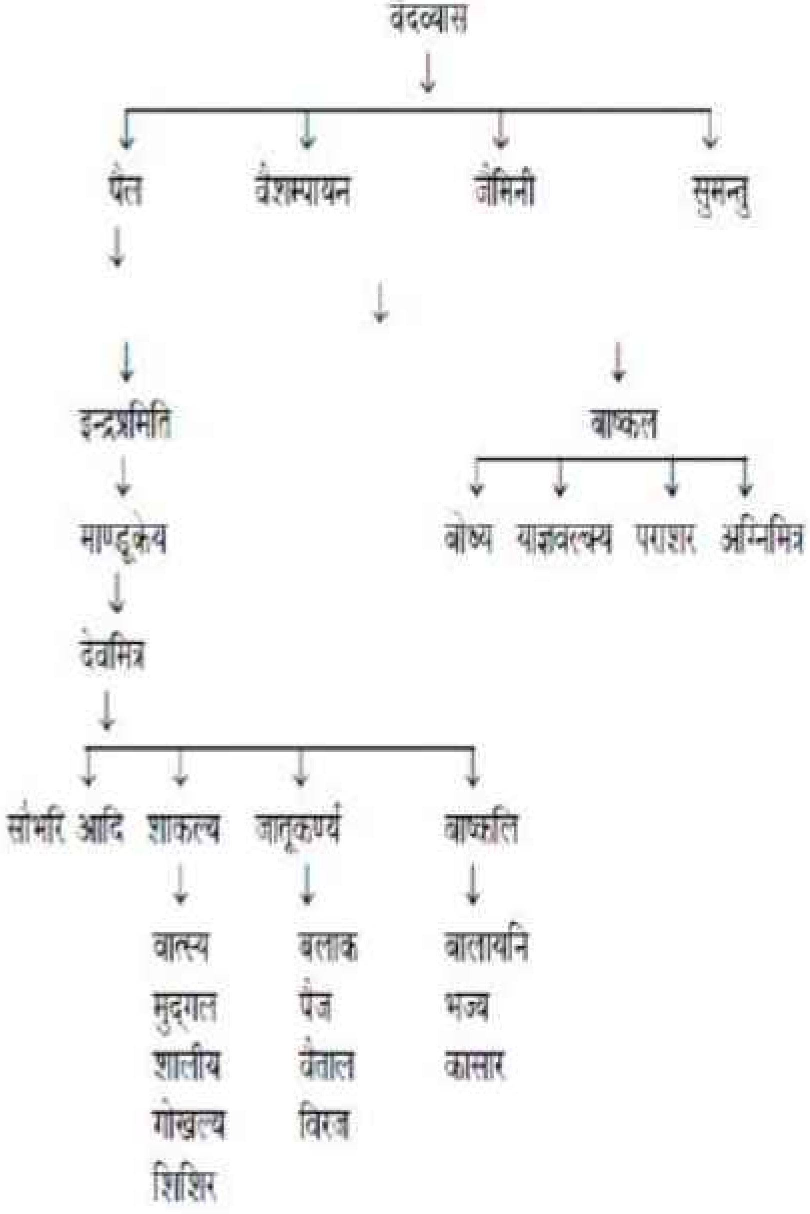

पुराणों में वेदशाखा

1. ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥

भागवत, 1.3.21

2. चातुर्होत्रं कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम्।
व्यदधाद् यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम्॥
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः।
इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते॥
तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः।
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत॥
अथर्वाङ्गिरसामासीत् सुमन्तुर्दारुणो मुनिः।
इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः॥
त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन्॥

भागवत, 1.4.19-23

3. एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
शाखायास्तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत्॥
सामवेदं सहस्रेण शाखानां च विभेदतः।
आथर्वणमथो वेदं विभेद नवकेन तु॥

कूर्म, 49,51,52

ऋग्वेदः श्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च॥
जैमिनं सामवेदस्य श्रावकं सोऽन्वपद्यत।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुं ऋषिसत्तमम्।
एक आसीत् यजुर्वेदस्तच्चतुर्धा व्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूत् यस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥
आध्वर्यवं यजुर्भिःस्यात् ऋग्भिर्होत्रं द्विजोत्तमाः।
उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः॥

ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः।
यजुर्भिश्च यजुर्वेदं सामवेदं च सामभिः॥

मत्स्यपुराण, 6.2-4

4. तपश्चकार प्रथममरमराणां पितामहः।
आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः॥
अनन्तरश्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तत्र विनिःसृताः॥
एको वेदः चतुष्पादः संहृत्य तु पुनः पुनः।
संक्षेपादायुषश्चैक व्यस्यते द्वापरेष्विह॥
वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः॥
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्रमविपर्य्ययैः।
संहत्य ऋग्यजुस्साम्नां संहितास्तैर्महर्षिभिः॥

144.10-12

5. एकविंशत्यध्वयुक्तमृग्वेदमृषयो विदुः।
सहस्राध्वा सामवेदो यजुरेकशताध्वकम्॥
नवाध्वाऽऽथर्वणोऽन्ये तु प्राहुः पञ्चाशदध्वकाः।
षड्गुरुशिष्यः सर्वानुक्रमणीवृत्ति॥

6. अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः।
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये॥
पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः।
अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम्॥
ऋगथर्वयजुः साम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः।
चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव॥
तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः॥
पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह।
वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम्॥
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम्।
अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे॥

भागवत., 12.6.48-53

7. **आदौ वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्त्रसम्मितः।**
ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्॥
अत्रैव मत्सुतो व्यास अष्टाविंशतिमेऽन्तरे।
वेदमेकं चतुष्पादश्चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः॥
ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्यस्तु प्रचक्रमे।
अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगान्॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलं सञ्जग्राह महामतिः।
वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत्॥
जैमिनिः सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित्।
सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद्वेदव्यासस्य धीमतः॥

विष्णुपुराण, 3.4.16-26

अन्य ग्रन्थों में वेदशाखा-सन्दर्भ

व्याकरणमहाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि चारों वेदों की शाखाओं का साधु सुन्दर उल्लेख करते हैं

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः।
एकशतमध्वर्युशाखाः।
सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्।
नवधाऽथर्वणो वेदः॥ पस्पशाह्निक

आचार्य दुर्ग अपनी निरुक्तवृत्ति में इन चारों वेदों की कुल 1131 शाखाओं का उल्लेख करते हैं—

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। एकशतमाध्वर्यवम्।
सहस्त्रधा सामवेदम्। नवधाथर्वणम्। निरुक्त वृत्ति 1.20

आचार्य कात्यायनकृत ऋग्वेदसर्वानुक्रमणी की वृत्ति में षड्गुरुशिष्य इन सभी वेदों की शाखाओं का उल्लेख करते हैं

एकविंशत्यध्वयुक्तमृग्वेदमृषयो विदुः।
सहस्त्राध्वा सामवेदो यजुरेकशताध्वकम्।
नवाध्वाऽऽथर्वणोऽन्ये तु प्राहुः पञ्चदशाध्वकम्॥

ऋग्वेद सर्वानुक्रमणीवृत्ति

ब्रह्मसूत्र 1.1.18 के माध्व तथा अणुभाष्य में

चतुर्धा व्यभजत् ताँश्च चतुर्विंशतिधा पुनः।
शतधा चैकधा चैव तत्रैव च सहस्त्रधा।
कृष्णो द्वादशधा चैव पुनस्तस्यार्थवित्तये।
चकार ब्रह्मसूत्राणि येषां सूत्रत्वमञ्जसा॥

महान् दार्शनिक वैयाकरण भर्तृहरि अपने वाक्यपदीय में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का उल्लेख करते हैं—

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। पञ्चदशधा इत्येके।

आचार्य मेधातिथि मनुस्मृति के भाष्य में ऋग्वेद की आश्वलायन, ऐतरेयादि के भेद से 21 शाखाओं का उल्लेख करते हैं—

एकविंशतिबह्वृच्या आश्वलायन-ऐतरेयादिभेदेन। 2-6

प्रपञ्चहृदय में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का उल्लेख है

बाह्वर्च्य एकविंशतिधा। द्वितीयभाग वेदप्रकरण

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥ मनु. 1.23

इस प्रकार स्वयं वेदों में, ब्राह्मण-उपनिषदों में, पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में वेदों की शाखाओं का उल्लेख हैं, पर प्रायः इनमें शाखाओं की संख्या का उल्लेख है इनके नाम का उल्लेख सर्वत्र नहीं है। गुरु-शिष्य की अति समृद्ध परम्परा का उल्लेख हैं, शिष्यों का नाम भी है, पर इन शिष्यों द्वारा प्रदान की गई संहिता शाखा का नाम नहीं उल्लिखित हुआ है। इस विषय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है आचार्य शौनककृत चरणव्यूह का तथा इसके भाष्यकर्त्ता आचार्य महिदास का।

चरणव्यूह

महर्षि शौनक का लघुग्रन्थ चरणव्यूह पूरी तरह वेदों की शाखाओं पर केन्द्रित है। यह पाँच खण्डों में विभक्त है। आचार्यश्री प्रथम चार खण्डों में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद की मन्त्र-संख्या प्रस्तुत करते हैं, साथ ही इन वेदों की शाखाओं, भेदों का सुविशद रूप में विवरण प्रदान करते हैं। पञ्चम खण्ड फलस्तुतिरूप है। इस

ग्रन्थ के पारायण का विधान किया गया है तथा इससे प्राप्तव्य फलों का निर्देश है। सभी चारों वेदों की शाखा-उपशाखाओं का स्वतन्त्र रूप में निरूपण इस लघु ग्रन्थ में मिलता है।

इस चरणव्यूह के भाष्यकार आचार्य महिदास ने प्रतिपाद्य विषय को और अधिक विशद बनाया है। इनका समय है—विक्रमसंवत् 1613 मधुमासदशमी। आचार्य महिदास ने अनादि नित्य भगवान् श्रीहरिनारायण की तरह वेदों को भी अनादि कहा है। यथा—

अनादिर्हरिः ख्यातो निदानं जगतां परम्।
तथा वेदोऽपि शास्त्राणां स्मृत्यादीनां महाशयः॥ भू. 2

यथा भगवान् इस जगत् के मूल कारण हैं उसी प्रकार वेद भी स्मृति इत्यादि समस्त शास्त्रों के मूल हैं।

आचार्य महिदास व्यास गुरुदेव की प्रशस्त शिष्य परम्परा का वन्दनपूर्वक वेद शाखाओं की प्रस्तुति की प्रतिज्ञा करते हैं—

कृष्णद्वैपायनं वन्दे गुरुं वेदमहानिधिम्।
येन चरणव्यूहेषु शाखाभेदमितं कृतम्॥
तच्छिष्यं शौनकगुरुं वेदज्ञं लोकविश्रुतम्।
नत्वा तु शाकलाचार्य्यं तथैव चाश्वलायनम्॥
एवं परम्पराप्राप्तं बालकृष्णं महागुरुम्।
यस्य प्रसादाद् व्याख्यायि चरणव्यूहसञ्ज्ञकम्॥
तत्र ऋग्वेदो यजुर्वेदोऽथर्ववेदश्चेति। 1-3

महर्षि शौनक ने अपने इस ग्रन्थ चरणव्यूह में तथा इसके भाष्यकार आचार्य महिदास ने इन चारों वेदों की शाखाओं- उपशाखाओं का नाम ग्रहण पूर्वक साधु उल्लेख किया है यथा ऋग्वेद की 5 शाखाएँ—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति॥1.7,8

यजुर्वेदः

यजुर्वेदस्य षडशीतिर्भेदा भवन्ति

कृष्णयजुर्वेद की 86 शाखाएँ—तैत्तिरीय कठ-कपिष्ठलकठ मैत्रायणी इत्यादि अवान्तर शाखाएँ—

तत्र चरकनाम द्वादश भेदा भवन्ति।
मैत्रायणीया नाम षड्भेदा भवन्ति।
तैत्तिरीयका नाम द्विभेदा भवन्ति।
खाण्डिकेया नाम पञ्चभेदा भवन्ति।

इस प्रकार यजुर्वेद-तरु की 101 शाखाएँ हैं—

यजुर्वेदतरोरासन् शाखा एकोत्तरं शतम्।
सामवेदस्य किल सहस्त्रभेदाः। राणायणीय कौथुम जैमिनीय
अथर्ववेदस्य नवभेदा भवन्ति। पैप्पल शौनक दान्त प्रदान्त जावाल।

ऋषिपैल एवम् उनकी शिष्य परम्परा

वेदरूपी अनुपम ज्ञान-सम्पदा की सम्प्राप्ति परमेश्वर के ही अनुग्रह से ऋषियों को साक्षात् अपरोक्षानुभूति द्वारा हुई। इस निधि की सुरक्षा इन ऋषियों एवं इनकी वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा में हुई। मूल स्वरूप को यथावत् सुरक्षित रखने की, उच्चारण के यथावत् शुद्ध रूप को बनाये रखने की यही वाचिक श्रुति परम्परा है जो सम्पूर्ण विश्व के ज्ञान-इतिहास में अनुपम अद्वितीय परम विलक्षण है। यह उदात्त परम्परा परमपुरुष विष्णु के ज्ञानावतारी बादरायण कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास से अक्षुण्ण रूप में अद्यावधि चली आ रही है। मौखिकी यह श्रुति परम्परा आज भी प्रवहमान विद्यमान है। ऋषि पैल की शिष्य परम्परा भी विद्यमान है। पुराणों में इस उदात्त परम्परा का साधु निरूपण है।[14]

महर्षि वेदव्यास के प्रथम चार शिष्यों में पैल अन्यतम प्रथम हैं। श्रीगुरुदेव महर्षि से इन्होंने चारों वेदसंहिताओं में प्रधान ऋग्वेद को प्राप्त किया। श्रीगुरुदेव से प्राप्त इस महत्तम ज्ञाननिधि ऋग्वेद का इन्होंने संरक्षण संवर्द्धन किया तथा अपने व्युत्पन्न शिष्यों को इसे विधिवत् प्रदान किया।

---

14. पैल शिष्य परम्पर=पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः।
बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यःसंहितां स्वकाम्।।
चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव। पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान्।।
अध्यापयत् संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम्। तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान्।।
शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम्। वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात्।।
जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम्। बलाकपैलवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः।।
बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम्। चक्रे बालाय निर्भज्यः कासारश्चैवतां दधुः।।
बहुवृचाः संहिता ह्येता एभिब्रह्मर्षिभिर्धृताः।। भागवत, 12.6.54-60

विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड, भागवतादि पुराणों में गुरुपैल के चार शिष्यों के स्थान पर साक्षात् दो ही शिष्यों का उल्लेख मिलता है—

1. इन्द्रप्रमिति तथा 2. बाष्कल। पर चरणव्यूह के भाष्यकार महिदास ने इनके 5 शिष्यों का नामोल्लेख किया है। यथा—शाकल, शाङ्खायन, आश्वलायन माण्डूकायन तथा बाष्कल।

पैल के ऋग्वेदीय तथा गुरुव्यासदेव का शिष्य होने का उल्लेख महाभारत करता है। महाराज युधिष्ठिर द्वारा आयोजित राजसूययज्ञ में होता ऋत्विक् रूप में पैल विद्यमान थे। यह वसु के पुत्र हैं। धौम्य के साथ यह यज्ञानुष्ठान में सम्मिलित हुए थे।

पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत्। महाभा.सभा., 36.35

गुरु व्यासदेव से इन्होंने ऋग्वेद का अध्ययन किया था। इन्होंने इसकी दो शाखाएँ बनाई और दो शिष्यों को पढ़ाया—

1. बाष्कल तथा 2. इन्द्रप्रमति।

महिदास-प्रस्तुत गुरुपैल की इस शिष्य मण्डली में इन्द्रप्रमिति का नाम नहीं है। बाष्कल के साथ अन्य 4 शिष्य हैं जिनमें शाकल प्रधान हैं। इनके अनुसार श्री गुरुदेव पैल से इस ऋक्संहिता को प्रथमतः शाकल ने तदनन्तर अन्य 4 शिष्यों ने इसे प्राप्त किया। इस तरह शाकलादि ये सभी गुरुपैल के ही शिष्य हैं और सभी एकवेदिन् ऋग्वेदीय हैं।[15] अपने श्रीगुरुदेव पैल के श्रीमुख से प्राप्त इस ज्ञान-निधि का शाकलादि इन पाँच शिष्यों ने संवर्द्धन किया और इस प्रकार एक ही इस ऋग्वेद की 5 शाखाएँ हो गई जिनका चरणव्यूहकार महर्षि शौनक नाम ग्रहणपूर्वक उल्लेख करते हैं—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।

आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला। माण्डूकायनाश्चेति।।1.7,8

श्रीमद्भागवत पुराण 12.6.54-60 में ऋषिपैल की शिष्य परम्परा का विवरण इस प्रकार है—

गुरुपैल ने महर्षि व्यासदेव से प्राप्त अपनी ऋक्संहिता का दो विभाग करके एक भाग को शिष्य इन्द्रप्रमिति को तथा दूसरे भाग को बाष्कल को पढ़ाया। बाष्कल ने अपनी शाखा के 4 उपविभाग करके पृथक् पृथक् अपने 4 शिष्यों को पढ़ाया। यथा—

1. बोध्य 2. याज्ञवल्क्य 3. पराशर तथा 4. अग्निमित्र और आत्मसंयमी

---

15. साङ्ख्याश्वलायनी चैव मण्डूका बाष्कलास्तथा।
बह्वृचा ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः।। चरणव्यूहभाष्य महिदास, 1.10

इन्द्रप्रमिति ने अपनी संहिता को प्रतिभाशाली माण्डूकेय को प्रदान किया। इन माण्डूकेय के शिष्य थे देवमित्र। इन्होंने सौभरि आदि शिष्यों को अपनी संहिता का अध्ययन कराया। इन माण्डूकेय के एक पुत्र थे इनका नाम शाकल्य था। पितृश्री से वेदाध्ययन करने के बाद इन्होंने अपनी संहिता के 5 विभाग करके अपने 5 शिष्यों को पढ़ाया। इनको नाम हैं—

1. वात्स्य 2. मुद्गल 3. शालीय 4. गोखल्य तथा 5.शिशिर। इन 5 शिष्यों के अतिरिक्त गुरु शाकल्य के एक और अन्य शिष्य थे, नाम था जातूकर्ण्य। इन्होंने अपनी संहिता का तीन विभाग करके तत्सम्बन्धी निरुक्त के साथ अपने 4 शिष्यों को पढ़ाया। इनके नाम हैं—

1. बलाक 2. पैज 3. बैताल तथा 4. विरज। बाष्कल के पुत्र बाष्कलि ने सभी शाखाओं से मन्त्रों को लेकर बालखिल्य नाम की एक पृथक् संहिता की रचना की।

इस संहिता को बालायनि, भज्य तथा कासार नाम के 3 शिष्यों ने ग्रहण किया। इन सभी ब्रह्मर्षियों ने सम्प्रदाय के अनुसार ऋग्वेद सम्बन्धी बह्वृच शाखाओं को ग्रहण किया।

आश्वलायनगृह्यसूत्र 3.4 में देव- ऋषितर्पण विधान में ऋषियों का नामोल्लेख किया गया है। चारों वेद संहिताओं तथा पैल ऋषि के उत्तरवर्ती शिष्यों का नामोल्लेख है—

सुमन्तु-जैमिनि-वैशम्पायन-पैल- सूत्रभाष्यभारत-सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयं शाकलं बाष्कलं शौनकमाश्वलायनं वै चान्ये आचार्यस्ते सर्वे तृप्यन्तु। आ.गृ.सू. 3.4

इस प्रकार गुरु पैल की अत्यन्त समृद्ध प्रशस्त शिष्य परम्परा रही और इस श्रुति परम्परा में वेदनिधि का संरक्षण होता रहा।

ऋग्वेद के प्रमुख प्रकाशन

1. ऋक्संहिता सायणाचार्यविरचितभाष्यसंहिता पदपाठयुता च, सं महामहोपाध्याय राजारामशास्त्री बोडस शिवराम शास्त्री,
   गणपतिकृष्णजी मुद्रणालय, मुम्बई शक 1810 ई0, सन् 1888
2. ऋग्वेदसंहिता-सायणभाष्यसमेता, सं. नारायणशर्मा सोनटक्के एवं चिन्तामणि शर्मा गणेशकाशीकर,
   वैदिक संशोधनमण्डल, पूना, 4 भाग : 1933-46
3. ऋग्वेदसंहिता-मूल, सं.पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,
   स्वाध्यायमण्डल, पारडी, जिला वलसाड औंध, सतारा 1940; षष्ठ सं. 1997
4. ऋग्वेद : पदपाठसहित, स्कन्दस्वामी उद्गीथ वेंकटमाधवः सायणभाष्य तथा मुद्गलवृत्ति- सं. आचार्य विश्वबन्धु,
   विश्वेश्वरानन्द भारत भारती ग्रन्थमाला-20,विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान, होशियारपुर-1963
5. ऋग्वेद संहिता - श्रीमत्सायणाचार्य विरचित माधवीयवेदार्थप्रकाशसंहिता, द्वि भारतीय संस्करण, 4 भाग,
   कृष्णदास संस्कृत सीरीज ग्रन्थमाला 37, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1983
6. ऋग्वेदसंहिता - वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, सं. 1983
7. ऋग्वेद संहिता - नागप्रकाशन, जवाहरनगर, दिल्ली, प्रथम सं. 1994
8. आश्वलायनशाखीय ऋग्वेदसंहिता 2 भाग, सं0 डॉ0 ब्रज बिहारी चौबे,
   इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, 2009
9. ऋग्वेदसंहिता - सायणाचार्य भाष्य संवलिता हिन्दी भाषानुवाद,
   पं0 रामगोविन्दत्रिवेदी, 9 भाग, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1991
10. ऋग्वेदभाष्यम् - दयानन्द प्रकाशक वैदिक पुस्तकालय,
    दयानन्द आश्रम केसरगंज, अजमेर, पञ्चम सं. 2008
11. ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, महर्षि दयानन्द सरस्वती, 5 भाग,
    प्रकाशक तिलकराज, आर्य प्रकाशन, अजमेरी गेट, दिल्ली, 2010
12. भगवान् वेदः-सं. महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन
    सद्गुरु गङ्गेश्वर जनकल्याणन्यास, गुरु गङ्गेश्वरचतुर्वेदसंस्थानम्,
    वि0सं0 2027 मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी
13. शाङ्खायनशाखीया ऋग्वेदसंहिता पदपाठ संवलिता 4 भाग,
    सं0 अमलधारी सिंह, प्रधान सं0 प्रो0 रूपकिशोर शास्त्री, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन रजत जयन्ती पर्व, 2012-13

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥

(भागवत १.३.२१)

वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः।

(महाभारत)

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।

आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बास्कला माण्डूकायनाश्चेति॥

(माण्डूकायनाश्चेति)

द्वितीयाध्याय

ऋग्वेद की शाकल संहिता का स्वरूप

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।

(ऋ. १०. १९१. ४)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्व-
त्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वद-
न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋ. १.१६४.२०,४६)

आचार्य शाकल का ऋषित्व

सोऽयमेको यथा वेदस्तरुस्तेन पृथक्कृतः।
चतुर्धाथ ततो जातं वेदपादपकाननम्॥
बिभेद प्रथमं विप्र पैलो ऋग्वेदपादपम्। विष्णु. 3.4.15-16

भगवान् कृष्ण द्वैपायन ने ऋषि परम्परा से प्राप्त मन्त्रों का संकलन किया और ऋक्-यजुस्-साम-अथर्व रूप में चतुर्धा विभक्त करके पैल-वैशम्पायन-जैमिनि-सुमन्तु नामक अपने 4 शिष्यों को पढ़ाया। इस प्रकार एक ही वेदवृक्ष 4 भागों में विभक्त होकर वेदपादप कानन बन गया और इसी वेद विभाजन के कारण वे वेदव्यास इस अभिधान से सुप्रख्यात हो गए—

वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः। महाभा. वनपर्व

तदनन्तर श्रीगुरुदेव व्यास से प्राप्त ऋग्वेद पादप का विद्याप्रवीण पैल ने विभाजन करके अपने शिष्यों को पढ़ाया। इस तरह पुराणों के अनुसार गुरु वेदव्यास के पैल साक्षात् शिष्य हैं।

चरणव्यूह के अनुसार गुरुपैल ने अपनी ऋग्वेद संहिता को अपने 5 शिष्यों को पढ़ाया—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति॥ 1.7, 8

विष्णु 3.4.16-26, वायु 1.60.24-32, 63-66; 1.61.1-4, ब्रह्माण्ड अनुषङ्गपाद 34.24-32; 35.1-7, भागवत 12.6.54-59 आदि पुराणों में गुरुदेव व्यास की प्रशस्त समृद्ध शिष्य परम्परा का वर्णन है, परन्तु इन पुराणों में व्यास-पैल की साक्षात् शिष्य परम्परा में आश्वलायन-शाङ्खायनादि 5 शिष्यों का उल्लेख नहीं है। गुरुपैल के ये सभी साक्षात् शिष्य नहीं है। उनके साक्षात् दो शिष्य है- 1. इन्द्रप्रमिति तथा 2. बाष्कल। यद्यपि बाष्कल का नाम ग्रहण है पर ये बाष्कल आश्वलायनादि शिष्यों के सहपाठी हैं अथवा इनसे भिन्न। इन पुराणों के अनुसार इन्द्रप्रमिति के साक्षात् शिष्य माण्डूकेय तथा बाष्कल के चार शिष्य हैं—बोध्य-अग्निमाठर-याज्ञवल्क्य और पराशर।

गुरु पैलदेव ने अपनी ऋग्वेदसंहिता का प्रथमतः दो विभाग करके इन दोनों शिष्यों इन्द्रप्रमिति तथा बाष्कल को पढ़ाया, प्रथमतः विभागशः पुनः सम्पूर्ण संहिता का। सम्भवतः ऐसी परम्परा विधिवत् पाठ ग्रहण कराने की रही होगी। अथवा अध्यापन की सुविधा के

अनुसार कि पूरी संहिता का विभाग खण्ड-खण्ड करके शिष्यों को प्रथमतः मौखिक रूप से पढ़ाया जाता रहा होगा, विभाग का पूरी तरह ग्रहण कण्ठस्थ हो जाने के अनन्तर सम्पूर्ण संहिता का पाठ ग्रहण कराया जाता रहा होगा। इसी परम्परा के कारण संहिताओं में क्रमभेद हो गए और एक ही ऋग्वेद संहिता के 21 भेद शाखाएँ हो गई।

ऋक्प्रातिशाख्य का वचन है कि ऋचाओं के समूह की संज्ञा ऋग्वेद है। इसको श्रीगुरुमुख से सर्वप्रथम शाकल ने ग्रहण किया और उनके पश्चात् अन्य चार आश्वलायन, शाङ्खायन, बाष्कल तथा माण्डूकायन ने ग्रहण किया—

ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः।
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम्॥ ऋ. प्रा.

शाकल ने ही प्रथमतः इन ऋचाओं को सूक्तों तथा मण्डलों के रूप में विभक्त किया और इसीलिए 10 मण्डलों में विभक्त होने के कारण यह ऋग्वेद दशतयी संहिता नाम से सुप्रसिद्ध है।

साङ्ख्याश्वलायनौ चैव मण्डूका बाष्कलास्तथा।
बह्वृचा ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः। महिदास 1.10

इस प्रकार गुरुपैल के शिष्य शाकल हैं और यह शाखा प्रवर्त्तक हैं, यही वर्तमान में प्रचलित ऋक्संहिता शाकलसंहिता है।

वेद की संहिताओं का प्रकाशन

विश्ववारा सनातन भारतीय संस्कृति के वेद प्राचीनतम प्रथम हीरक ग्रन्थ हैं। दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत यह विमल ज्ञाननिधि ऋषि-वंशपरम्परा तथा गुरु-शिष्य परम्परा से पूर्ण रूप से सुरक्षित अद्यावधि चली आ रही है। वेदनिधि के रक्षण की यह वाचिक श्रुति परम्परा सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त अद्भुत एवं विलक्षण हैं।

ऋषियों ने इस महत्तम निधि के रक्षणहेतु 8 प्रकार के पाठों की साधु व्यवस्था की है। यह पाठविधि अष्टविकृति नाम से सुप्रख्यात है—

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

इस विशिष्ट पाठविधि का ही यह सुपरिणाम है कि इस वेदपाठ में कुछ भी जोड़ना या घटाना सम्भव ही नहीं है। इसलिए इस पाठ में किसी प्रकार का सम्मिश्रण नहीं है। यह पूर्णतः शुद्ध एवं सुरक्षित हैं। हमारी भारतीय संस्कृति की मूल-प्रतिष्ठा इन वेद-संहिताओं को प्रकाश में ले आने का अत्यन्त श्लाघनीय प्रशंसनीय कार्य प्रथमतः पाश्चात्य विद्वानों ने किया। इस प्रकार वेदों की सभी संहिताओं का प्रकाशन हो पाया। प्रकाशन विवरण इस प्रकार है—

वेदों के प्रथम प्रकाशन

1. Ṛgveda : Freidrich Rosen (1805-37) incomplete : 1838
2. Ṛgveda : F Max Mūller (1823-1900) complete in 6 parts with Sāyaṇa Bhāṣya, 1st part Oxford Oct. 1849; 6th 1873
3. Ṛgveda : Max Mūller, Text + Padapātha 2 vols. March 1873 & 77
4. Ṛgveda : Max Mūller, 2nd edition in 4 parts 1890-92 London, Henry Frowde Oxford University Press Warehouse, Amen Corner
5. Śukla Yajurveda : Albrecht Weber, 1852-59
6. Kṛṣṇa Yajurveda : Maitrāyaṇī in 2 parts Leopold V. Schroder, 1861-86
7. Kṛṣṇa Yajurveda : Kāṭhaka Saṁhitā 4 vols - 1900-1910
8. Sāmaveda German Translation Theodor Benfey, 1848
9. Atharvaveda : Roth & Whiteny Berlin, 1855-56
10. Atharvaveda : Pippalāda Saṁhitā

    Morris Bloomfield & Richard Grade (1857-1927)

ऋग्वेद = मण्डलक्रम संघटन

ऋग्वेद में ऋचाओं के मण्डलक्रम में संकलन संघटन करने में एक विशेष व्यवस्था दिखलाई पड़ती है। प्रथम मण्डल में शतर्चिन 100 ऋचाओं वाले ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्र सुव्यवस्थित संघटित हैं। इस मण्डल के ऋषि प्रायः 100 ऋचाओं के द्रष्टा हैं। द्वितीय से लेकर अष्टम मण्डल की ऋचाएँ विशेष ऋषियों या उनके वंशजों द्वारा साक्षात्कृत हैं। इसलिए इन मण्डलों की प्रसिद्धि वंशमण्डल नाम से है। यथा द्वितीय मण्डल गृत्समद, तृतीय विश्वामित्र, चतुर्थ वामदेव, पञ्चम अत्रि, षष्ट भरद्वाज, सप्तम वसिष्ठ तथा अष्टम में कण्व + अङ्गिरा। नवम मण्डल के सभी मन्त्र सोम विषयक हैं, इसलिए इस नवम मण्डल की संज्ञा सोममण्डल है। सोम को पवमान कहते हैं इसलिए इस मण्डल की पवमानमण्डल नाम से प्रसिद्धि है। दशममण्डल में क्षुद्र तथा महासूक्त है। दार्शनिक-सृष्टि विषयक एकेश्वर सर्वेश्वरवाद की इसमें प्रतिष्ठा है। प्रथम तथा दशम मण्डलों में सूक्तों की संख्या समान 191 है।

ऋषि शाकल के शिष्य हैं शिशिरि और वर्तमान ऋक्संहिता शैशिरीय संहिता है। आचार्य शौनक द्वारा प्रस्तुत सर्वानुक्रमणी के अनुसार इस संहिता में 85 अनुवाक, 1017 सूक्त तथा 10472 मन्त्र हैं। आचार्य शाकल्य ने इसी संहिता का पदपाठ, बाभ्रव्य ने क्रमपाठ और आचार्य सायण ने अपना भाष्य प्रस्तुत किया है।

इस संहिता के अष्टम मण्डल में (49 से 59 तक) 11 सूक्त वालखिल्य नाम से स्थित है, पर आचार्य शाकल्य ने इनका पदपाठ और आचार्य सायण ने इन पर अपना भाष्य नहीं प्रस्तुत किया है। इसलिए इनको खिलसूक्त माना जाता है।

आचार्य शौनक ने चरणव्यूह में परमगुरु व्यास से पैल तक सम्पूर्ण गुरु-शिष्य परम्परा का उल्लेख न करके सीधे पैल के अनन्तर ऋग्वेद की 5 शाखाओं का उल्लेख कर दिया है- आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला-बाष्कला-माण्डूकायनी। इस विवरण से इन संहिताओं शाखाओं के प्रवचनकर्त्ता 5 आचार्यों का बोध हो जाता है। यथा—आश्वलायन शाङ्खायन शाकल बाष्कल तथा माण्डूकायन। इस आधार पर चरणव्यूह भाष्यकार आचार्य महिदास ने परम्परा से प्राप्त वेदज्ञान को गुरु पैल से प्रथमतः प्राप्त करने में शाकल का उल्लेख किया है। तदनन्तर आश्वलायन-शाङ्खायन-बाष्कल तथा माण्डूकायन को इसकी प्राप्ति हुई।

इस प्रकार गुरु पैल के ये शाकलादि पाँच साक्षात् शिष्य हैं। इन आचार्यों की भी अपनी शिष्य परम्परा रही और इन्होंने प्रवचन द्वारा अपनी-अपनी संहिताएँ अपने-अपने

शिष्यों को प्रदान किया और इन शिष्यों द्वारा ग्रहण की गयी मन्त्र संहिताएँ इन्हीं के नाम से सुप्रख्यात हो गईं। इस प्रकार एक ही ऋक्संहिता की अनेक शाखाएँ संहिताएँ हो गईं।

शाकलसंहिता का प्रकाशन

वेदों की सभी संहिताएँ श्रुतिपरम्परा तथा पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित चली आ रही थीं, यही स्थिति सर्वप्राचीन प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद की भी थी। पाण्डुलिपियों में यह भी सुरक्षित था, पर प्रकाशन नहीं हो पाया था। इसके प्रथमतः प्रकाशन का श्रेय जर्मन देशीय विद्वान् फ्रेडरिक रोजेन को है। बर्लिन में सुप्रख्यात विद्वान् प्रो0 फ्रान्त्स बाप (Franz Bopp) से इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया था।

संस्कृत विद्या के प्रति इनकी विशेष अभिरुचि थी। ऋग्वेद के मूल पाठ सम्पादन के साथ ही इसका लैटिन भाषा में इन्होंने अनुवाद किया। वेदग्रन्थों के प्रकाशन के सम्बन्ध में इनकी महनीय योजना थी। वर्ष 1830 में इन्होंने (Rigveda Specimen) के रूप में इसके 7 सूक्तों को प्रकाशित किया। विधाता का कुछ विचित्र, मानव समझ के परे, विधान होता है। इस दिव्य विभूति का मात्र 32 वर्ष की आयु में वर्ष 1837 में असामयिक देहावसान हो गया और यह अपने महान् संकल्प को मूर्तरूप नहीं दे पाए। इनके देहावसान के एक वर्ष बाद 1838 में इस संहिता का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ, पर यह सुव्यवस्थित नहीं था। इस संकल्पित महत्त्वपूर्ण कार्य की सम्पूर्ति हुई सुप्रख्यात अन्य जर्मन देशीय विद्वान् प्रोफेसर फ्रेडरिक मैक्समूलर (1823-1900) द्वारा। इस संहिता का सुव्यवस्थित एवं पूर्णरूप में प्रथमतः प्रकाशन का गौरव इसी विद्वान् को है। प्रो0 ई0 बरनूफ़ के शिष्य बने। विद्याध्ययन के बाद यह भी पेरिस में प्रो0 फ्रान्त्स बाप के सान्निध्य में रहकर पेरिस से इंगलैण्ड आ गए और यहाँ पर आक्सफोर्ड को अपना कर्मक्षेत्र बनाकर 50 वर्षों तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न किया। सायणभाष्य सहित ऋग्वेद का भी 6 भागों में 1849 से 73=24 वर्षों में प्रकाशन किया। यही ऋग्वेद का प्रथमतः पूर्ण प्रकाशन है और आज भी मानकरूप में मान्य है। इस वेद की भगवान् पतञ्जलि द्वारा व्याकरण महाभाष्य में उल्लिखित 'एकविंशतिधा बाहवृच्यम्' 21 शाखाओं में यही शाकलसंहिता है।

इसका प्रथम भाग जब 1849 में प्रकाश में आया उस समय मैक्समूलर महोदय की अवस्था मात्र 26 वर्ष थी। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में यह योगदान स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया। ग्रन्थ का प्रकाशन बहुत सरल कार्य नहीं है और वह भी संस्कृत के 6000 पृष्ठों का। मैक्समूलर के समक्ष यह बहुत बड़ी विकट समस्या थी। तब एच0एच0 विल्सन महोदय के अनुरोध पर ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया के निर्देशन पर भारत स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन का सम्पूर्ण भार वहन किया। पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यह ग्रन्थरत्न शीघ्र ही समाप्त हो गया। अब इसके द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की आवश्यकता हुई। पर

एतदर्थ आर्थिक अनुदान हेतु कोई भी आगे नहीं आया। तब आखेट क्रीडा प्रेमी विद्यानुरागी यशस्वी महाराज विजयनगर ने इसके प्रकाशनार्थ सहर्ष 4000 पौंड से अधिक धनराशि प्रदान की तथा अपनी राजशाही कला-साहित्य के संरक्षण के प्रति अपनी सदाशयता का उदात्ततम स्वरूप उजागर किया। कृतज्ञ मैक्समूलर महोदय ने उनकी दानशीलता की भूरि भूरि प्रशंसा की है। इस तरह यह संस्करण 4 भागों में वर्ष 1890-92 में प्रकाश में आ गया।

RIG-VEDA-SAMHITA

A. The Sacred hymns of the Brahmanas together with the commentary of Sayanakarya edited by F. Max Muller, 1st Edition, Oct. 1849 Her Most Excellent Majesty Bictoria Queen of Great Britain and Ireland, Empress of India.

This earliest record of the Religious institutions of the Natives of India is by Gracious permission dedicated by her Majesty's faithful subjects and devoted servants.

Pasupati Ananda Gajapati Raj & Frederich Max Muller,
Oxford, Oct. 1849

B. Second Edition

Published under the patronage of His Highness the Maharajah of Vijayanagara,

London, Henry Froude, Oxford, University Press, Warehouse, Amen Corner, 1890

C. The princely and truly patriotic liberality of His Highness the Maharajah of Vijaynagar has enabled me to take up once more in the evening of my life that work which has occupied me during my youth and during my advancing years.

Generous offer from one of the most enlightened and distinguished princes of India the Maharajah Vijaynagar.

मैक्समूलर महोदय द्वारा प्रयुक्त पाण्डुलिपियों का विवरण

भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम हीरक ग्रन्थरत्न ऋग्वेद के पूर्णरूप में प्रथमतः प्रकाशन का गौरव मैक्समूलर महोदय को ही है। पर पाण्डुलिपियों के रूप में स्थित इस महनीय ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रकाशन कार्यहेतु वे इंगलैण्ड से भारतदेश नहीं आए। मुख्यतः दो वेदानुरागियों द्वारा संगृहीत तथा लंदन में ही सुरक्षित पाण्डुलिपियों का इन्होंने उपयोग किया। इस वेद की 21 शाखाओं में से उनको केवल एक ही शाखा शाकल उपलब्ध हुई। संहिता पाठ तथा पदपाठ की सभी पाण्डुलिपियाँ अष्टक क्रम में आठ भागों में सुव्यवस्थित थी।

कोलब्रुक महोदय द्वारा संगृहीत पाण्डुलिपियाँ ईस्ट इण्डिया हाऊस में क्रमाङ्क 129 से 132 में सुरक्षित थीं तथा डॉ० मिल महोदय द्वारा संगृहीत संहिता पाठ की दो-दो तथा पदपाठ की एक प्रति आक्सफोर्ड-बोडलिन लाइब्रेरी में क्रमाङ्क 147 से 150, 151 से 154 तथा 155 से 158 में सुरक्षित थीं। इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

Dr. Colebrook's Collection Deposited in East India House No. 129-132			Dr. Mill's collection presrved at Oxford-Bodlein Library No. 147-150		151-154		155-158	
			संहिता पाठ				पदपाठ	
अष्टक	पृष्ठ संख्या	समय	पृष्ठ संख्या	समय	पृष्ठ संख्या	समय	पृष्ठ संख्या	समय
प्रथम	59	विक्रम संवत् 1802	89	-	103	-	97	संवत् 1727 शक 1592
द्वितीय	60	विक्रम संवत् 1802	70	-	93	शक 1679	129	संवत् 1728
तृतीय	53	विक्रम संवत् 1802	92	संवत् 1777	97	शक 1677	109	-
चतुर्थ	54	विक्रम संवत् 1802	100	1776	92	शक 1679	107	संवत् 1727
पञ्चम	54	विक्रम संवत् 1802	102	1771	62		84	
षष्ठ	56	विक्रम संवत् 1802	104	-	80	-	89	-
सप्तम	56	विक्रम संवत् 1802	90	1777	76	-	95	संवत् 1672
अष्टम	61	विक्रम संवत्		1802	104	-	130	शक 1776 86 संवत् 1857 शक 1729
योग	453		751		733		706	

कोलबुक महोदय द्वारा संगृहीत सभी पाण्डुलिपियाँ विक्रम संवत् 1802 की तथा वाराणसी में लिखी गई हैं। प्रतिलिपिकर्त्ता हैं सोमगोप काशीनाथ। डॉ0 मिल द्वारा संगृहीत प्रथम पाण्डुलिपियों में प्राचीनतम संवत् 1771 तथा द्वितीय में प्राचीनतम शक संवत् 1677 (विक्रम संवत् 1814) की है एवं पदपाठ में प्राचीनतम विक्रम संवत् 1672 की है।

अलवर महाराज सवाई विनय सिंह को आश्वलायन तथा शाङ्खायन की जो 38+25=63 पाण्डुलिपियाँ हैदराबाद तथा अहमदनगर से प्राप्त हुई थीं उनमें आश्वलायन संहितापाठ की प्राचीनतम पाण्डुलिपि संवत् 1758 तथा पदपाठ की संवत् 1710 की है, जबकि शाङ्खायन संहितापाठ की प्राचीनतम पाण्डुलिपि संवत् 1659 तथा पदपाठ की संवत् 1517 की है। इस प्रकार उपलब्ध सभी पाण्डुलिपियों में शाङ्खायन की संहितापाठ तथा पदपाठ की प्राचीनतम हैं। इसके संहितापाठ के अष्टम अष्टक की पाण्डुलिपि नागरज्ञातीय ब्राह्मण द्वारा वाराणसी में ही सोमवार मार्गशीर्ष पञ्चमी संवत् 1659 में लिखी गई है

दवे अविमुक्तेश्वर नी पोथी
अष्टमाष्टकः
ॐ नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै
संवत् १६५९ सहस्रषट् नवपञ्चाशत् वर्षे मार्गशीर्ष
शुदि ५ सोमे श्रीमद्वाराणसीमध्यतो नागरज्ञातीय दबे
केशवसुत रघुनाथेन धर्मदत्तेन लिखापितमिदम्।
पाठकलेखकयोः कल्याणं भूयात्। शुभं भवतु।

ऋक्संहिता में ऋचाओं की संख्या

ऋक्संहिता सम्पूर्ण विश्व में उपलब्ध पहली पोथी, प्रथम ग्रन्थरत्न है। दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा तपश्चर्या से यह साक्षात्कृत है—

ऋषिर्दर्शनात्। ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः, साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।

मुख्य रूप से प्रकृति की उपासना में ऋषियों द्वारा समर्पित यह ऋचाओं का संकलन है। आचार्य कात्यायन के अनुसार इस ऋक्संहिता में कुल 10580 1/4 ऋचाएँ हैं

ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीर्तितम्॥ अनुवाकानुक्रमणी 43

आचार्य शाकल्य के अनुसार इस संहिता में शब्दों की कुल संख्या 1 लाख 53 हजार 8 सौ 26 है।

शाकल्यदृष्टेः पदलक्षमेकं सार्धं च वेदे त्रिसहस्रयुक्तम्।
शतानि चाष्टौ दशकद्वयं च पदानि षट् चेति हि चर्चितानि॥ अनुक्र. 45

तथा अक्षर संख्या कुल 4 लाख 32 हजार है।

चत्वारिंशत्सहस्त्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्त्राणि॥ अनुक्र. अन्त में

बालखिल्य मन्त्रों/सूक्तों सहित इस संहिता में कुल अक्षरों की संख्या 397265 है। द्रष्टव्य पं० सातवलेकरसम्पादित ई० सन् 1940, पृ० 762-681

गणना में इस भेद का कारण कुछ ऋचाओं का द्विपदा या चतुष्पदा होना है। अध्ययनकाल में कुछ चतुष्पदा ऋचाएँ प्रयोगकाल में द्विपदा हो जाती है।

आचार्य दुर्ग के अनुसार नैमित्तिक द्विपदा ऋचाएँ 140 (70) है। इस तरह मन्त्र संख्या 10552-70 = 10482 है। इन्होंने 17 द्विपदा ऋचाओं को बतलाया है जिनका स्वरूप सदैव द्विपदा ही रहता है। विभिन्न गणनाओं के अनुसार ऋचाओं की संख्या में भेद होने पर भी सर्वत्र शब्द तथा अक्षर की संख्या समान ही है। इसी प्रकार प्रमुख छन्दों की दृष्टि से इस संहिता में त्रिष्टुप् 4251, गायत्री- 2449, जगती- 1346, अनुष्टुप् 858, पंक्ति- 498, बृहती- 371 छन्द हैं। द्रष्टव्य युधिष्ठिर मीमांसक ऋग्वेद की ऋक्संख्या काशी संवत् 2006, पृ० 16-17।

शाकलसंहिता का विभाजन : संघटन

भगवान् श्रीहरि के अंशावतारी बादरायण कृष्णद्वैपायन ने अति विपुल विशाल मूलतः एक ही विमल ज्ञाननिधि वेद का ऋक्-यजुष्-साम-अथर्व रूप में चतुर्धा विभाजन कर दिया और इस तरह वह वेदव्यास इस अभिधान से सुप्रथित हो गए—

वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः। महाभा. वनपर्व

इन चारों वेदों में ऋग्वेद प्रथम स्थान पर प्रतिष्ठित है। ऋचां स्तुतीनां वेदः ऋग्वेदः- मुख्य रूप से इसमें विविध प्राकृतिक शक्तियों की दैवतभाव से भव्य मनोरम स्तुतियाँ प्रार्थनाएँ हैं।

इस ऋक्संहिता का द्विविध विभाजन है—अ- अष्टकक्रम तथा आ- मण्डलक्रम।

इन दोनों में अष्टकक्रम विभाजन प्राचीनतर है। अलौकिक मेधा दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत मन्त्रों की सुरक्षा तथा अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन पारायण की दृष्टि से यह विभाजन किया गया है। ऋषियों की वंश परम्परा तथा गुरु-शिष्यों की परम्परा में मन्त्रों के ग्रहण की वाचिक श्रुति परम्परा थी। श्रीपितृमुख एवं श्रीगुरुमुख से मौखिक उपदेश द्वारा इस अतिरिक्त विपुल मन्त्रराशि का ग्रहण होता था। इसलिए इनके ग्रहण की सुविधा की दृष्टि से समस्त मन्त्रराशि का समरूप में विभाजन किया गया। इस तरह आठ अष्टकों तदन्तर्गत आठ अध्यायों एवं वर्गों के रूप में यह लगभग समविभाजन है। इस ऋक्संहिता की हस्तलिखित सभी पाण्डुलिपियाँ इसी अष्टकक्रम में लिखित हैं तथा स्कन्दस्वामी,

वेंकटमाधव, सायणाचार्यादि सभी भाष्यकारों ने भी इसी विभाजन का अनुसरण करते हुए अपने-अपने भाष्यों को प्रस्तुत किया है।

मण्डलक्रम रूपी द्वितीय विभाजन अपेक्षाकृत इस अष्टकक्रम प्रथम विभाजन के बाद का है। यह विभाजन विशेष दृष्टि से किया गया है। इस संहिता में स्थित मन्त्र ऋषियों तथा उनके वंशजों द्वारा साक्षात्कृत हैं। अतः तत्तद् ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्र उन्हीं के नाम से संकलित सुव्यवस्थित हैं। इन्हीं की प्रसिद्धि वंशमण्डल नाम से है। इस संहिता में 10472 मूल मन्त्र ऋचाएँ हैं तथा वालखिल्य नाम से प्रसिद्ध 80 और ऋचाएँ हैं, इस तरह कुल 10552 ऋचाएँ हैं।

अष्टकक्रम—इस क्रम के अनुसार 10472 ऋचाओं वाली यह ऋक्संहिता लगभग समरूप में आठ अष्टकों में विभक्त है। अष्टकों का अवान्तर विभाजन आठ-आठ अध्यायों में किया गया है। पुनः अध्यायों का अवान्तर विभाजन वर्गों में किया गया है। इस तरह इस संहिता में 8 अष्टक 64 अध्याय 2006 वर्ग हैं। वर्गों के अन्तर्गत मन्त्र हैं। वर्गों में प्रायः 5 मन्त्र हैं, पर कुछ वर्गों में 9 मन्त्र हैं और एक मन्त्र का भी वर्ग है। 64 अध्यायों में विभक्त होने के कारण चतुष्षष्ठिसंहिता इस संज्ञा से इसकी प्रसिद्धि है।

मण्डलक्रम—10472 मन्त्रात्मक यही ऋक्संहिता इस मण्डलक्रम के अनुसार 10 मण्डलों में विभक्त है और मण्डलों के अवान्तर उपविभाग अनुवाक तथा सूक्त हैं। इस तरह इस संहिता में 10 मण्डल 85 अनुवाक तथा 1017 सूक्त हैं। 10 मण्डलों में विभक्त होने के कारण दशतयी संहिता के रूप में इसकी प्रसिद्धि है।

वालखिल्यसूक्त—इस ऋक्संहिता में मूलरूप में स्वीकृत इन 10472 मन्त्रों के अतिरिक्त 80 मन्त्र और मिलते हैं। वालखिल्यसूक्त नाम से इनकी प्रसिद्धि है। इन मन्त्रों का विभाजन 18 वर्गों या 11 सूक्तों में है। इनकी स्थिति षष्ठ अष्टक के चतुर्थ अध्याय में वर्ग क्रमाङ्क 14 से 31 तक है। इसी के अनुरूप इनकी स्थिति अष्टम मण्डल में सूक्त क्रमाङ्क 49 से 59 तक है। इस तरह इन वालखिल्य सूक्तों को सम्मिलित करने पर षष्ठ अष्टक के चतुर्थ अध्याय में वर्गों की संख्या 54 हो जाती है और अष्टम मण्डल में सूक्तों की संख्या 92+11 = 103 हो जाती है तथा मन्त्रों की कुल संख्या 10472+80 = 10552 हो जाती है। इस प्रकार वालखिल्य नाम से प्रख्यात इन 80 मन्त्रों को मिलाने पर इस संहिता में 2006+18 = 2024 वर्ग तथा तदनुसार 1017+11= 1028 सूक्त और 10472+80 = 10552 मन्त्र हो जाते हैं। पर इन मन्त्रों या सूक्तों पर आचार्य स्कन्दस्वामी, सायणादि भाष्यकारों का भाष्य नहीं मिलता तथा आचार्य शाकल्य का पदपाठ।

इसी आधार पर इनको खिलमन्त्र या खिलसूक्त माना जाता है। पर स्वाध्याय एवं यज्ञानुष्ठान में इनके विनियोग का विधान प्रस्तुत है।

मण्डल क्रम-विभाजन

ऋक्संहिता का इस मण्डलक्रम के रूप में विभाजित करने में एक विशेष दृष्टि पद्धति परिलक्षित होती है। तपःपूत दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों ने परमेश्वर के परम अनुग्रह से दिव्य तत्त्वज्ञान रूप मन्त्रों का प्रत्यक्ष दर्शन किया। इसी प्रकार उनके वंशजों ने भी स्वकीय तपस् साधना के प्रभाव से मन्त्रों को प्राप्त किया। इस तरह इन मन्त्रों का साक्षात्कार ऋषियों तथा उनके वंशजों द्वारा किया गया—

ऋषिर्दर्शनात्। ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।
साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः॥ निरुक्त, 1.6

इस प्रकार समस्त मन्त्रों की स्थिति पृथक्-पृथक् ऋषियों तथा उनके वंशजों द्वारा साक्षात्कृत होने से पृथक्-पृथक् बनी। ऋषियों तथा तद्वंशजों द्वारा साक्षात्कृत इन मन्त्रों की दृष्टि से पृथक् पृथक् मन्त्र-परिवार बन गए और महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने इन मन्त्रों के पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र रूप को बनाए रखने के लिए इनको पृथक्-पृथक् इन मण्डलों के रूप में सुव्यवस्थित कर दिया। इस तरह ऋषिविशेष तथा तद्वंशीय ऋषियों द्वारा दृष्ट इन मन्त्रों की अपनी स्वतन्त्र पहचान बनी। इसी दृष्टि से द्वितीय से लेकर अष्टममण्डल तक के मन्त्रों का संकलन है और इसीलिए इन मण्डलों की प्रसिद्धि वंशमण्डल के रूप में है। द्वितीय से लेकर अष्टम तक के मण्डलों की संज्ञा वंश मण्डल है। यथा—

द्वितीयमण्डल=गृत्समद, तृतीय=विश्वामित्र
चतुर्थ =वामदेव, पञ्चम =अत्रि, षष्ठ.= भरद्वाज
सप्तम = वसिष्ठ, अष्टम=कण्व तथा अठिरा।

वंशविशेष द्वारा दृष्ट मन्त्रों का संकलन संघटन होने के कारण वंशमण्डल अभिधान सर्वथा सार्थक है। संहिता में संघटित मण्डलों के क्रम में इन वंश मण्डलों को प्राचीन प्रथम माना जाता है।

सोम/पवमानमण्डल

ऋषियों तथा उनके वंशजों द्वारा दृष्ट मन्त्रों को द्वितीय से लेकर अष्टम मण्डल तक सुव्यवस्थित करने के अनन्तर सोमविषयक संकलित समस्त मन्त्रों को व्यासदेव ने पृथक् नवममण्डल में व्यवस्थित कर दिया। ये सभी मन्त्र सोमदेव से सम्बन्धित है।

सभी मन्त्रों का स्तुत्य देवता केवल सोम है। अतः इस नवम मण्डल की प्रसिद्धि सोममण्डल के रूप में हो गई। सोमलता से रस निकाल कर इसको छलनी द्वारा शुद्ध किया जाता है। अतः सोम को पवमान भी कहते हैं और इसीलिए इस मण्डल की संज्ञा **पवमान**

मण्डल भी है। मण्डल रूप में मन्त्रों के संघटन क्रम में यह नवम मण्डल वंशमण्डलों के अनन्तर द्वितीय स्थान पर आता है। अन्त में प्रथम तथा दशम मण्डलों का संघटन किया गया है। इन दोनों ही मण्डलों को अर्वाचीन सबसे अन्त में व्यवस्थित किया गया माना जाता है।

इन दोनों मण्डलों में सूक्तों की संख्या समान 191 है। देवताओं के स्वरूप में भी अन्य मण्डलों से इनमें अन्तर है। बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद सर्वेश्वरवाद पूर्ण अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा है। मानसिक भावनाओं श्रद्धा, मन्यु इत्यादि को देवत्त्व स्वरूप प्रदान किया गया है। नवीन भौतिक विषयों विवाह-श्राद्धकर्म, कृषि, वर्षा इत्यादि तथा दानस्तुतियों एवं संवाद सूक्तों की इनमें स्थिति है। इनमें भी दशम मण्डल को अर्वाचीनतम माना जाता है।

इस ऋक्संहिता में संकलित, संघटित ऋचाओं की दृष्टि से इस संहिता में तीन स्वरूप मिलते हैं। अपनी सर्वानुक्रमणी में आचार्य शौनक उल्लेख करते हैं—

शतर्चिन आद्ये मण्डलेऽन्त्ये क्षुद्रसूक्तमहासूक्ताः।
मध्यमेषु माध्यमाः।

वेदार्थदीपिका में षड्गुरुशिष्य का कथन है—

आद्यस्य ऋषेर्ऋक्शतयोगेन छत्रिन्यायेन शतर्चिनः सर्वे।

ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्रों सूक्तों के संघटन क्रम में आदि प्रथम मण्डल के ऋषि शतर्चिन हैं। इसमें ऋषियों द्वारा दृष्ट ऋचाएँ 100 या इससे कुछ अधिक हैं। प्रथम ऋषि विश्वामित्र पुत्र मधुच्छन्दा हैं इनके द्वारा दृष्ट ऋचाएँ 100 से अधिक है। इसी प्रकार इस मण्डल में अन्य ऋषियों को शतर्चिन संज्ञा से सम्बोधित किया गया है।

दशम मण्डल के ऋषि क्षुद्रसूक्त तथा महासूक्त वाले हैं। षड्गुरु शिष्य के अनुसार 129 नासदीप सूक्त से पूर्व के सूक्त महासूक्त हैं और इसके अनन्तर क्षुद्रशूक्त हैं और सूक्त मन्त्रद्रष्टा होने के कारण सूक्तों का ऋषिनामकरण है। द्वितीय से नवम मण्डल के मध्य स्थित ऋषिगण मध्यम सूक्त वाले हैं।

दशम मण्डल की अर्वाचीनता

इस ऋक्संहिता में मण्डलों के संघटन क्रम में दशम मण्डल सबसे अन्त में आता है। विद्वानों की दृष्टि में यह मण्डल सबसे बाद का अर्वाचीनतम है। इसका प्रमुख आधार देव स्वरूप में परिवर्तन है। पूर्व प्रथम से अष्टम मण्डलों तक बहुदेववाद है। अग्नि, इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, विष्णु, सवितृ, अश्विनौ, पूषन्, उषस् आदि विविध देवताओं की स्तुतियाँ हैं। वहीं यहाँ दशम मण्डल में इस देवस्वरूप की एकेश्वर सर्वेश्वरवाद के रूप में प्रतिष्ठा है। एक ही देवता का परम देवता सर्वस्वरूप में प्रतिपादन है। इसी को पुरुष प्रजापति हिरण्यगर्भ वाक् इत्यादि अभिधानों से सम्बोधित किया गया है। यह सर्वव्यापक परमदेव हैं। सम्पूर्ण

सृष्टि की अभिव्यक्ति इसी से हुई है। यही सृष्टि का धारणकर्ता हैं। सृष्टि के स्वरूप का भी यहाँ पर निरूपण है, पर यह सृष्टि तो अत्यन्त रहस्यात्मक दुर्बोध है। सद्-असद् विलक्षण होने से इसका स्वरूप अनिर्वचनीय है।

अत्यन्त गम्भीर रहस्यात्मक तत्त्वों आध्यात्मिक दार्शनिक सूक्तों की स्थिति इस मण्डल में है।

अनेक नवीन देवताओं का यहाँ पर उदय हो गया है। श्रद्धा-मन्यु जैसी मानसिक भावनाओं को देवत्व स्वरूप प्रदान किया गया है। तार्क्ष्य को देवता माना गया है। अरण्यानि औषधियों वनस्पतियों नदियों की दैवतभाव से प्रार्थना की गई है।

दानस्तुतियों में दान की महिमा का गान किया गया है। दानहेतु प्रेरणा दी गई है। एकाकी खाने वाला केवल पाप खाता है। बाँटकर विभाजन पूर्वक परस्पर एक साथ सेवन करना चाहिए।

ऋग्वेद में अध्यात्म

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'[1] श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण का उच्च उद्घोष है कि ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है, यह परमपवित्र है। इस ज्ञान का द्विविध रूप है—

1. स्वकीय आत्मस्वरूप का साक्षात्कार तथा
2. आत्मेतर पदार्थों का ज्ञान।

इनमें स्वकीय स्वरूप का ज्ञान ही श्रेष्ठ है। भगवान् मनु का कथन है कि—

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परम्- 12-85

अर्थात् आत्मज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान हैं। वस्तुतः ज्ञान का अभिप्राय ही है आत्मज्ञान। इसीलिए बृहदारण्यक में ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य का उपदेश है—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः[2]

अर्थात् दर्शनीय तो आत्मा ही है क्योंकि इसके जान लेने पर सब कुछ जाना गया हो जाता है, जानने के लिए कुछ भी भी शेष नहीं रह जाता।

तस्मिन् विज्ञाते सर्व विज्ञातं भवति, यज्ज्ञात्वा नेह भूयो ज्ञातव्यमवशिष्यते।[3]

इस सम्बन्ध में उनकी पत्नी मैत्रेयी का बहुत ही उत्तम एवं मार्मिक कथन है। सुन्दर आख्यान है। ब्रह्मर्षि की दो पत्नियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। प्रव्रज्या के लिए समुद्यत

---

1. गीता. 4.38
2. बृहदा. 2.4.5
3. गीता. 2.4.3

वह अपनी सारी सम्पत्ति को इन पत्नियों में विभाजन कर देना चाहते थे। मैत्रेयी की भौतिक धनसम्पत्ति के पाने में कोई रुचि नहीं रही और वह कहती है—

किमहं तेन कुर्यां येनाहं नामृता स्याम्।[4]

उस भौतिकी सम्पत्ति की क्या उपयोगिता, जिससे अमृतत्त्व की प्राप्ति न होवे। तब पत्नी की जिज्ञासा से प्रसन्न होकर उसको वह आत्मस्वरूप का बोध कराते हैं।

इसी प्रकार की जिज्ञासा बालक नचिकेता की मृत्यु देवता यमराज से है। सभी प्रकार की दुर्लभ काम्य पदार्थों को वह नचिकेता को देने के लिए उद्यत हैं[5] पर वह छोटा बालक एक सुस्पष्ट सपाट उत्तर देता है—

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः[6]

धन के द्वारा मनुष्य को सन्तृप्त नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप उस जिज्ञासु बालक की दृढ़ता को देखकर प्रमुदित हुए यमराज उसके प्रति आत्मस्वरूप का प्रकाशन करते हैं और भारतीय दर्शनों का दर्शनत्व ही है आत्मस्वरूप प्रकाशन।

सभी की प्रवृत्ति एतदर्थ हुई है जिससे परमपुरुषार्थ मोक्ष की सिद्धि होती है—दृश्यते प्रेक्ष्यते साक्षात्क्रियते ज्ञायते आत्मस्वरूपं येन तद् दर्शनम्। और इसीलिए दर्शनों में सांख्यदर्शन की प्रशंसा की गई है—

नास्ति सांख्यसमं ज्ञानम्।[7]

और सांख्यदर्शन को मोक्षदर्शन की संज्ञा प्रदान की गई है—

सांख्यं तु मोक्षदर्शनम्।[8]

यही आत्मा परमतत्त्व परमात्मा परमपुरुष ब्रह्म है। उपनिषदों का यही मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। इसलिए उपनिषदों की संज्ञा वेदान्त है। वेद+अन्त=वेदान्त, सर्वोच्च ज्ञान ब्रह्मज्ञान का इनमें प्रकाशन है और उपनिषद् शब्द का अर्थ ही है—

'षद्ऌ विशरणगत्यवसादनेषु'

---

4. बृहदा 2.4.3
5. ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
   इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
   आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः।। कठ 1.1.25
6. तदेव 1.1.27
7. महाभा.शा. 316.2
8. तदेव 300.5

जिस विद्या से बन्धनकारिणी अविद्या विनष्ट हो जाती है, आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो जाती है और जीवन-मरण का बन्धन शिथिल हो जाता है। आत्मस्वरूप का सम्यग् बोध महावाक्यों द्वारा कराया गया है। यथा—

अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि-ये उपदेश वाक्य है[9] और अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म,[10] अनुभव वाक्य हैं।

सम्पूर्ण वाङ्मय में प्रथम इस ऋग्वेद में अध्यात्मतत्त्व का सम्यक् प्रकाशन है। ऋचां स्तुतीनां वेदः ऋग्वेदः रूप से इसमें अग्नि-इन्द्र-वरुण-सवितृ-अश्विनौ-उषस् आदि विविध देवताओं की स्तुतियाँ हैं। इस तरह इसमें मुख्य रूप से बहुदेववाद है, अनेक देवताओं की प्रार्थनाओं से यह संवलित है। पर यही बहुदेववाद एकेश्वर सर्वेश्वरवाद में प्रतिष्ठित हो जाता है। सभी देवों में एक ही अनुस्यूत है और इसी को सर्वस्व कहा गया है यही है पूर्ण अद्वैतवाद। अदिति, पुरुष, प्रजापति, हिरण्यगर्भ, वाक् इत्यादि अभिधानों से इस एक ही परमतत्त्व को सम्बोधित किया गया है। यथा—

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम्॥
सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च
इन्द्रं॑ मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमा॑हु॒रथो॑ दि॒व्यः स सु॑प॒र्णो ग॒रुत्मा॑न्।
एकं॒ सद् विप्रा॑ बहु॒धा व॑दन्त्य॒ग्निं य॒मं मा॑त॒रिश्वा॑नमाहुः॥
पुरु॑ष ए॒वेदं सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भव्य॑म्।
हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ आसीत्।
अ॒हं रु॒द्रेभि॒र्वसु॑भिश्चराम्य॒हमा॑दि॒त्यैरु॒त वि॒श्वदे॑वैः।
अ॒हं मि॒त्रावरु॑णो॒भा बि॑भर्म्य॒हमि॑न्द्रा॒ग्नी अ॒हम॒श्विनो॒भा॥[11]

इत्यादि रूप से सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही तत्त्व ओत-प्रोत परिव्याप्त है। उसी से इसकी अभिव्यक्ति होती है, स्थिति होती है और पुनः उसी में इसका तिरोभाव हो जाता है। उपनिषदों में इसका उपबृंहण है—

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्-ऐत. 1.1.1,

---

9. बृहदा. 2.5-19, छान्दोग्य. 6.8.16
10. बृहदा. 1.4.10, छान्दोग्य. 3.14.1
11. ऋ. 1.89.10, 1.115.1, 1.164.46, 10.90.2, 10.121.1, 10.125.1

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्। माण्डूक्य 1

तज्जलानिति, यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्ति अभिसंविशन्ति—छान्दोग्य, 3.14.1

पुरुषसूक्त (10.90) में सृष्टि प्रक्रिया का साधु निरूपण है। ब्राह्मण-क्षत्रिय- वैश्य-शूद्र चारों वर्णों की अभिव्यक्ति का प्रथमतः यहीं पर कथन है।[12] इस वेद का नासदीय सूक्त (10.129) तो मुख्य रूप से सृष्टि स्वरूप का निरूपण करता है। वस्तुतः सद्-असद् रूप से यह सृष्टि अनिरूपाख्य अवर्णनीय है। नामरूपात्मक भावपदार्थों के समान यह सद्रूपा नहीं है और शशशृंगवद् सर्वथा अभावरूप भी नहीं है। उभय रूप से यह विलक्षण अत्यन्त रहस्यात्मक है।[13] अस्य वामीयसूक्त (1.164) में सृष्टि की इसी रहस्यात्मकता का कथन है। यहाँ पर द्वादश अरों वाले निरन्तर गतिशील ऋत के चक्र का निरूपण है।[14] इत्यादिरूप से इस ऋग्वेद में मुख्यरूप से अध्यात्मतत्त्व की ही प्रतिष्ठा है और वस्तुतः सभी मनुष्य अमृतरूप हैं—

'अमृतस्य पुत्राः' का प्रतिपादन है और मनुष्य बने रहने के लिए साधु उपदेश वचन है- **मनुर्भव**-10. 53. 6

इस तरह ऋग्वेद में मुख्य रूप से अद्वैततत्त्व की ही प्रतिष्ठा है।

ऋग्वेद की व्याख्या-परम्परा

'ब्रह्म वै मन्त्रः' ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः, मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेवम्। मन्त्र ब्राह्मणात्मको वेदः, मन्त्रस्तु ब्रह्म तद् व्याख्यानं ब्राह्मणम्।

मन्त्र ही ब्रह्म, मूलभाग हैं और इन्हीं मन्त्रों की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। इसीलिए मन्त्र और ब्राह्मण दोनों भागों के सम्मिलित रूप को वेद नाम से सम्बोधित करते हैं अर्थात् वेद के अन्तर्गत दो भाग हैं- 1. मन्त्र और 2. ब्राह्मण। वस्तुतः मन्त्र मूल है अर्थात् मन्त्रभाग की व्याख्या ही ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। इसीलिए ब्राह्मणग्रन्थों को यज्ञों की वैज्ञानिक आधिभौतिकी तथा आध्यात्मिकी मीमांसा प्रस्तुत करने वाला एक महनीय विश्वकोश कहा गया है।

यज्ञ को विस्तार के कारण वितान कहा गया है। ब्राह्मणग्रन्थ यज्ञों का सुविशद साङ्गोपाङ्ग विवरण प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक मन्त्र का ऋषि देवता तथा छन्द होता है। इन मन्त्रों का विनियोग यज्ञों में होता है। ब्राह्मणग्रन्थ इन्हीं मन्त्रों के विनियोग को बतलाता है।

12. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ १०।९०।१२
13. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्॥ १०।१२९।१
14. ऋ. 1.164.12

यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञो वै प्रजापतिः' यज्ञ को विष्णु तथा प्रजापति का स्वरूप कह करके इनके अतिशय महत्त्व को प्रकाशित किया गया है तथा 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' यज्ञ को अभीष्ठ मनोवाञ्छित फलप्रदायक सर्वोत्तम कर्म कहा गया है। इनसे कुछ भी असाध्य अप्राप्य नहीं है। यज्ञ के द्वारा लौकिक अभ्युदय तथा शरीर त्याग के अनन्तर स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है अर्थात् यज्ञ द्वारा लौकिक तथा पारलौकिक उभय प्रयोजनों की सिद्धि होती है। 'अग्निष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्'। मन्त्रों का ही विनियोग यज्ञों में होता है, इस तरह ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रभाग की यज्ञीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। मन्त्रद्रष्टा को ऋषि तथा ब्राह्मण द्रष्टा को आचार्य कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थ सर्वथा गद्यात्मक हैं।

इस ब्राह्मणभाग के अन्तर्गत तीन उपविभाग हैं- 1. ब्राह्मण 2. आरण्यक तथा 3. उपनिषद्। इन्हीं को कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञानकाण्ड कहा गया है। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञीयविधानों में निहित गूढ़ रहस्यों का विवेचन है और उपनिषद् पूरी तरह आध्यात्मिक तत्त्वों का निरूपण करते हैं, इसलिए इनको वेदान्त कहा गया है, सर्वोच्च पराविद्या का इनमें विवेचन है।

मन्त्रभाग की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। इसलिए प्रत्येक मन्त्रभाग के अपने-अपने व्याख्यानात्मक भाग होने चाहिए, पर सम्प्रति सभी उपलब्ध नहीं है। ऋग्वेद संहिता के उपलब्ध व्याख्यानात्मक ब्राह्मण भाग इस प्रकार है—

(अ) ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेयारण्यक, ऐतरेयोपनिषद्

(आ) शाङ्खायन ब्राह्मण, आरण्यक एवम् उपनिषद्

(इ) बाष्कल मन्त्रोपनिषद्।

ऐतरेय ब्राह्मण

महिदास ऐतरेय इस ब्राह्मण के द्रष्टा आचार्य हैं। इतरा का पुत्र होने से ऐतरेय नाम से इनकी प्रसिद्धि हैं। इस ब्राह्मण में 40 अध्याय हैं जो 5-5 की 8 पञ्चिकाओं में विभक्त है। मन्त्रभाग ऋग्वेद की यह यज्ञीय कर्मकाण्डीय व्याख्या प्रस्तुत करता है। होता नामक ऋत्विक् के कार्यकलापों का इसमें सुविशद वर्णन है। एतदर्थ होतृकर्महेतु यह ऋचाओं के विनियोग को बतलाता है। प्रारम्भिक 13 अध्यायों में अग्निष्टोम का निरूपण हैं। यही अग्निष्टोम समस्त सोमयागों की प्रकृति है। तृतीय तथा चतुर्थ पञ्चिकाओं में प्रातः, माध्यन्दिन तथा सायंकालीन सवनों में प्रयुज्यमान शस्त्रों का निरूपण है। इसी के अन्तर्गत ज्योतिष्टोम की 7 विकृतियों का निरूपण है। यथा—

1. अग्निष्टोम 2. अत्यग्निष्टोम 3. उक्थ्य 4. षोडशी 5. अतिरात्र 6. वाजपेय तथा 7. आप्तोयाम। इसी में गवामयन अग्निरसामयन तथा आदित्यनामयन सत्रयागों का भी

निरूपण है। पञ्चम पञ्चिका में द्वादशाह, षष्ठ में विविध सोमयागों, सप्तम में राजसूय तथा अष्टम पञ्चिका में ऐन्द्रमहाभिषेक का सविस्तर निरूपण है।

अन्त में पुरोहित के धार्मिक तथा राजनैतिक महत्त्व का प्रकाशन है।

यह ब्राह्मण अनेक ऐतिहासिक पुरुषों का भी उल्लेख करता है। यथा=जनमेजय, शर्यात, सुदास, पैजवन शतानीक, भरत इत्यादि। अतीव रोचक आख्यानों से भी यह अभिमण्डित है जिनमें उदात्त प्रेरणास्पद जीवनमूल्यों की शिक्षा दी गई है। राजसूय प्रकरण में शुनः शेप का सुप्रख्यात आख्यान है जिसमें निरन्तर कर्महेतु 'चरैवेति चरैवेति रूप से सुन्दर प्रेरणा दी गई है।

यह ऋग्वेदीय ब्राह्मण है। पर इसमें वालखिल्य तथा महानाम्नी ऋचाओं का विनियोग बतलाया गया है, उनकी महिमा का गान है जो शाकलसंहिता के मूलभाग में नहीं है। इसका यही अभिप्राय है कि यह किसी अन्य शाखा से भी सम्बद्ध है।

ऐतरेयारण्यक

'अरण्याध्ययनाद् आरण्यकमितीर्यते' तैत्तिः आ. भाष्य में आचार्य सायण ने अरण्य में अध्ययन किए जाने के कारण इनको आरण्यक संज्ञा प्रदान की है। ब्राह्मण ग्रन्थों में गृहस्थ यजमानों के लिए द्रव्ययागों का विधान है, पर आरण्यक ग्रन्थ वानप्रस्थी साधकों के लिए हैं जो अब यज्ञानुष्ठान नहीं कर सकते।

आरण्यक ग्रन्थों की स्थिति ब्राह्मण भाग के परिशिष्ट तथा उपनिषदों के पूर्वरूप में है। दोनों भागों को जोड़ने वाले ये मध्य की कड़ी हैं। वेदों का सारभूत कहकर इनके अतिशय महत्त्व का प्रकाशन किया गया है। भगवान् वेदव्यास का महाभारत में कथन है कि यथा दधि से नवनीत की, मलयाचल से चन्दन की तथा औषधियों से अमृत की प्राप्ति होती है उसी प्रकार वेदों के सारभूत हैं आरण्यक—

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा।
आरण्यकं च वेदेभ्यो ओषधिभ्योऽमृतं यथा॥ शा. 331.3

मुख्यरूप से आरण्यकों में प्राणविधा कालचक्रादि अतिगूढ रहस्यात्मक विषयों का विवेचन है।

यह ऐतरेयारण्यक 5 आरण्यकों में विभक्त है जिनके अन्तर्गत 18 अध्याय हैं। प्रथमारण्यक में महाव्रत का निरूपण है। यह गवामयन नामक सत्रयाग का उपान्त्य दिन है। द्वितीय के प्रथम तीन अध्यायों में उक्थ्य, प्राणविद्या तथा पुरुष का निरूपण है। इसका चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठ अध्याय ही सुप्रसिद्ध ऐतरेयोपनिषद् है।

इसी प्रकार तृतीय आरण्यक संहितोपनिषद् नाम से सुप्रख्यात है। चतुर्थारण्यक में महाव्रत में प्रयुक्त होने वाली महानाम्नी ऋचाएँ हैं तथा पञ्चमारण्यक में निष्केवल्यशस्त्र का निरूपण है।

यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि महानाम्नी ऋचाओं की स्थिति शाकलसंहिता में नहीं है, जबकि ऐतरेय ब्राह्मण में इनका विनियोग बतलाया गया है।

ऐतरेयोपनिषद्

भारतीय वाङ्मय में उपनिषदों का अत्यन्त विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक वाङ्मय के अन्तिम भाग होने से वेदान्त संज्ञा से इनकी प्रसिद्धि है। वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान और ज्ञान का उदात्ततम स्वरूप इनमें विद्यमान है, इसलिए इनकी संज्ञा वेद+अन्त=वेदान्त सर्वथा अन्वर्थक है। ज्ञान की पराकाष्ठा है आत्मज्ञान—

अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। गीता, 10.32

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्।
ज्ञानस्य ह्येषा पराकाष्ठा यदात्मैकत्वविज्ञानम्।। मनु. 12-85

वस्तुतः ज्ञान का अभिप्राय ही है आत्मज्ञान और यही आत्मतत्त्व है प्रमुख प्रतिपाद्य विषय इन उपनिषदों का। दर्शनीय तो आत्मा ही है। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' बृहदा. 2. 4. 5 ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य का उपदेश वचन है। पर आत्मा या ब्रह्मतत्त्व अत्यन्त दुर्बोध रहस्यात्मक है, इसलिए इनके स्वरूप का विवेचन करने वाले उपनिषदों को आत्मविद्या ब्रह्मविद्या अध्यात्मविद्या रहस्यविद्या कहा गया है।

आत्मस्वरूप का बोध होते ही परमपुरुषार्थ मोक्ष की सिद्धि हो जाती है, सभी बन्धन शिथिल हो जाते हैं और जीवात्मा का इस लोक में पुनरागमन नहीं होता—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। मुण्डक. 2.2.18

इसीलिए उपनिषदों की मोक्षविद्या, अमृतविद्या के रूप में प्रसिद्धि है और स्वयम् उपनिषद् शब्द से इनके स्वरूप की सुस्पष्ट प्रतीति हो जाती है-

उपनि+सद्+क्विप्।
षद्लृविशरणगत्यवसादनेषु।

इस विद्या के अध्ययन से बन्धनकारिणी अविद्या विनष्ट हो जाती है (विशरण), नित्य शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो जाती है (गति) और इस तरह जनन-मरण के समस्त बन्धन शिथिल हो जाते हैं (अवसादन) और इसीलिए उपनिषदों की सर्वोच्च विद्या

पराविद्या के रूप में प्रसिद्धि है जिसके द्वारा अविनाशी अक्षर स्वकीय स्वरूप का बोध हो जाता है—

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। मुण्डक., 1.1.5

और वस्तुतः आत्मस्वरूप का बोध हो जाना ही मोक्ष है।

ऐतरेयोपनिषद तथा संहितोपनिषद् दोनों ही ऐतरेयारण्यक के अन्तर्गत हैं। इस आरण्यक में द्वितीय आरण्यक का अध्याय चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठ ही ऐतरेयोपनिषद् है तथा तृतीय आरण्यक है संहितोपनिषद्।

ऐतरेयोपनिषद् में तीन अध्याय है जो 5 खण्डों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में 3 खण्ड है और द्वितीय तथा तृतीय में एक-एक। इस उपनिषद् में परमात्मा से सम्पूर्ण सृष्टि रचना का सुन्दर क्रमिक निरूपण है। पुनः वैराग्यभाव की उत्पत्तिहेतु शरीर की अनित्यता तथा पुनर्जन्म का कथन है। अन्त में प्रज्ञा की महिमा का वर्णन है। प्रज्ञानं ब्रह्म-इस महावाक्य द्वारा प्रज्ञान की महिमा का प्रकाशन है।

संहितोपनिषद् में संहिता, पद, क्रमादि पाठों का निरूपण है, पुनः स्वर-व्यञ्जनों के स्वरूप को सुव्यक्त किया गया है।

ऋग्वेद का काव्य-सौन्दर्य : अपौरुषेय काव्य

दिव्यदृष्टिसम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत ऋग्वेद सम्पूर्ण विश्व की शब्दात्मक प्रथमा आद्या सृष्टि अभिव्यक्ति है। परमेश्वर के अनुग्रह से ऋषियों के अन्तःकरण में स्फुरित यह अपौरुषेय नित्य काव्य है। सृष्टि के साथ ही इसकी अभिव्यक्ति हुई है।

यथा सृष्टि का उद्भव एवं तिरोभाव, पुनः युगानतर में तद्वत् प्राकट्य होता है, उसी प्रकार इस दिव्य काव्य = वेदों का भी—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा॥ महाभा. वनपर्व

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति। अथर्व. 10.8.32

यह काव्य नित्य है, इसकी केवल अभिव्यक्ति होती है, नवीन सृष्टि नहीं। यह ऋग्वेद मुख्यरूप से प्रकृति की शक्तियों का स्तुतियों के रूप में चित्ताकर्षक हृदयावर्जक मनोमुग्धकारी चित्रण है। प्रकृति सुन्दरी देवी की सुषमा सौन्दर्य का सहज निरूपण है। भोले भाले सरल हृदय ऋषियों की यह सुनृता वाणी है। प्रकृति के सहज स्वाभाविक अकृतिम अब्याज मनोहर नैसर्गिक सौन्दर्य का प्रकाशन है। सौन्दर्य का उपमान प्रतिमान तो स्वयं प्रकृति ही है। प्रकृति के बाह्य तथा उसमें सन्निहित अन्तः सौन्दर्य का ऋषियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से सूक्ष्म निरीक्षण

किया है। ऋषियों का यही सौन्दर्य बोध है और उनकी छन्दोमयी वाणी की यही प्रथमा अभिव्यक्ति है। इस तरह आह्लादक काव्य सौन्दर्य से यह अभिमण्डित है।

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित=त्रिविध स्वरों से सम्पृक्त होने से इसमें गेयात्मकता संगीतमयता है। इसीलिए अपौरुषेय यह ऋग्वेद काव्यकला, सौन्दर्य का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है।

छन्द लालित्य

छन्दों के विनियोग से काव्य में सहज ही आह्लादकता का आधान हो जाता है। प्रकृति देवी की मानवीकृत विविध शक्तियों की ऋषियों ने विविध छन्दों में भव्य स्तुति की है। छन्दों के प्रथम अवतरण का निदर्शन गायत्री छन्द के रूप में वाणी का प्रथमतः प्रकाशन होता है और यह सम्पूर्ण ऋग्वेद छन्दोबद्ध है—

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम्।।1. 1. 1।।

मुख्यरूप से इसमें 7 प्रकार के छन्दों का उल्लास दर्शनीय है। तीन पाद वाले गायत्री, उष्णिक्, चार पाद वाले अनुष्टुप्, बृहती, त्रिष्टुप्, जगती तथा पाँच पाद वाले पंक्ति छन्द की आह्लादिनी छटा से अभिमण्डित यह ऋग्वेद रसमय आह्लादमय दिव्य काव्य है।

अलंकार-सौन्दर्य

ऋग्वेद ऋषियों की अलंकारमण्डित वाणी की प्रथमा अभिव्यक्ति है। काव्यजगत् में अलंकारों का प्रथम अवतरण यहीं ऋग्वेद में हुआ है। उपमा-रूपक उत्प्रेक्षादि अलंकारों की मनोहारिणी नैसर्गिकी छटा इसमें दर्शनीय है। इसका प्रथम मन्त्र ही रूपकालंकार के सहज सौन्दर्य से प्रकाशित हो रहा है। इस अलंकार के माध्यम से अग्नि के देव-पुरोहित, ऋत्विक्-होता, सर्वाधिक रमणीय धन प्रदाता स्वरूप को प्रकाशित किया गया है—

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम्।। 1. 1. 1

उषस्

ऋग्वेद में प्रार्थित चित्रित देवियों में उषस् प्रमुख है। ज्योतिर्मयी यह सुषमा सौन्दर्य रूपमाधुरी की देवी है। यह सौन्दर्य रूपलावण्य का प्रतिमान है। यह कमनीया कुमारी कन्या है। मधुर मन्दहास वाली स्मितवदना युवती है। ऊर्ध्वस्थल पर स्नान करती हुई युवती है। प्रति प्रातःकाल प्राची क्षितिज पर उदित होने वाली यह नित्य नवीना पुराणी युवती है। सूर्य को अपने क्रोड में रख कर प्रतिप्रातः उपस्थित होने वाली यह माता है। स्वर्णिम चमकीले प्रकाशमय वस्त्रालंकारों से अलंकृत रंगमञ्च पर उल्लासपूर्वक नृत्य प्रस्तुत करती हुई यह नर्तकी है। अपने दायभाग की अभ्यर्थना हेतु सभामञ्च पर आरूढ हुई यह अभ्रातृका कन्या है। प्रातः

प्राची में अपने लावण्यमय स्वरूप को उसी प्रकार अभिव्यक्त करती है जैसे शोभन वस्त्रों से विभूषित कामनाओं वाली पत्नी अपने पति के समक्ष। सौन्दर्य सुषमा सम्पन्न सूनरी युवती की तरह यह प्रति प्रातः उपस्थित होकर सकल लोक को यथायोग्य कार्यों में संलग्न करती है इत्यादि रूप से उपमा-रूपक उत्प्रेक्षादि अलंकारों के माध्यम से उषस् के मनोरम स्वरूप का सजीव चित्रण उद्भासित हुआ है और इसमें दिव्य दृष्टिसम्पन्न ऋषियों की प्रज्ञा का उदात्ततम स्वरूप भी अभिव्यक्त हुआ है—

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्। 5. 80. 5
कन्येव तन्वा ३ शाशदानाँ। 1. 123. 10
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्। 1. 124. 7
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः॥
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती। 1. 48. 5

समान पर्णवाले दो पक्षियों के उपमान द्वारा जीवात्मा तथा परमात्मा के स्वरुप का सुष्ठु प्रकाशन हो रहा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥ 1. 164. 20

वर्षा ऋतु का अत्यन्त मनोरम आह्लादक चित्र उपमा के माध्यम से सुचित्रित हो रहा है। आह्लादित मण्डूकगण परस्पर उसी प्रकार ध्वनि कर रहे हैं जैसे श्रुतिपरम्परा में बटुक एक साथ उच्चध्वनि में मन्त्रपाठ करते हैं—

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः। 7. 103. 5

पिता के उपमान द्वारा अग्निदेव का सर्वविध कल्याणकारक स्वरूप साधुरूप में प्रकाशित हो रहा है—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ 1. 1. 9

इन्द्र तथा वृत्र के तुमुल युद्ध का अतीव रोमाञ्चकारी सजीव चित्र उपमालंकार के द्वारा सुप्रकाशित हो रहा है। वृत्र का वध करके इन्द्र उसके द्वारा निरुद्ध जल की धाराओं को मुक्त कर देते हैं। विमुक्त हुई जल की धाराएँ गर्जन करती हुई प्रबल वेग से प्रवाहित होती हुई समुद्र की ओर उसी प्रकार गईं जैसे अपने बछड़े से दिन भर दूर रहने वाली गाएँ सन्ध्याकाल में गोचरभूमि से उतावली रँभाती हुई बछड़े के पास वेगपूर्वक दौड़ती हैं।

अत्यन्त प्रबल जलप्रवाह का यह सहज स्वाभाविक चित्र उपमा के माध्यम से सुव्यक्त हो रहा है—

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जःसमुद्रमव जग्मुरापः॥ 1.32.2
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव॥ 1.32.8

समुन्नत पर्वत-क्रोड से निकल कर प्रभूत जलापूर से भरी हुई प्रबल वेग से प्रवाहित होने वाली व्यास तथा शतलज नदियों का सुन्दर चित्रण बन्धन विमुक्त स्पर्धा में तेजी से दौड़ने वाली दो घोड़ियों तथा अपने बछड़े को चाटने के लिए दौड़ने वाली शुभ्र वर्ण की दो गायों के उपमान द्वारा किया गया है—

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते॥ 3.33.1

इस प्रकार यह ऋग्वेद अलंकारों की सहज स्वाभाविक मनोहारिणी छटा से अभिमण्डित है।

रसपेशलता

ऋग्वेद ऋषियों द्वारा मानवीकृत प्राकृतिक शक्तियों की भव्य स्तुति है। उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वरों से संवलित ये प्रार्थनाएँ रससिक्त अत्यन्त सरस रसपेशल हैं।

गेयात्मकता संगीतात्मकता इनका विशेष गुण है और रसमय होने से देवस्वरूप में तन्मय तल्लीन कर देने वाली हैं और इसीलिए ये प्रार्थनाएँ अत्यन्त प्रभावशाली अमोघा हैं।

इन्द्र शौर्य वीर्य पराक्रम युद्ध का अप्रतिम देवता है। इसके स्वरूप निरूपण, स्तुति में तेजस्विता वीररस की सुष्ठु अभिव्यक्ति हुई है। उषस् की रूपमाधुरी के चित्रण में शृङ्गाररस की मधुर अभिव्यक्ति हुई है। सुकोमल मधुरभावों का मनोमुग्धकारी हृदयावर्जक चित्रण है। सुन्दर वस्त्रालंकारों से विभूषित भावभरित पत्नी जैसे अपने पति के प्रति अपने स्वरूप को प्रस्तुत विवृत कर देती है उसी प्रकार सुषमामयी यह उषस् प्रतिप्रातःकाल अपने सौन्दर्य को प्रकाशित कर देती है। यम-यमी के संवाद में प्रणय याचना है और पुरूरवा-उर्वशी संवाद में प्रणयनिवेदन में शृङ्गाररस की मधुर अभिव्यक्ति हुई है, साथ ही इसमें विप्रलम्भ की वेदना अच्छी तरह अभिव्यञ्जित हुई है। भक्ति को नवम रस कहा गया है। ऋषियों द्वारा की गई देवताओं की भावप्रवण प्रार्थनाओं में इसी रस का साम्राज्य है।

इस प्रकार रसपेशल अपौरुषेय यह ऋग्वेद भारतीय वाङ्मय का प्रथम उत्तम काव्य है।

ऋग्वेद के भाष्यकार

ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत सकल ज्ञान-निधि ऋग्वेद के अर्थप्रकाशन में ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद् तथा निरुक्तादि वेदाङ्ग ग्रन्थों की सार्थकता उपयोगिता है, इसी रूप में भारतीय भाष्यकारों तथा पाश्चात्य अनुवादकों की महनीय भूमिका है। समासरूप में इनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

आचार्य स्कन्दस्वामी

सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय के प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद पर प्रथमतः भाष्य प्रस्तुत करने का गौरव आचार्य स्कन्द स्वामी को है। यह ऋग्वेद के प्रथम भाष्यकार हैं। भाष्य के प्रत्येक अध्याय के अन्त में यह उल्लेख करते हैं—

वलभीविनिवास्येतामृगर्थागमसंहतिम् ।
भर्तृध्रुवसुतश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथास्मृति॥

इसके अनुसार यह गुजरात की सुप्रसिद्ध नगरी वलभी के निवासी हैं तथा पिता का नाम भर्तृध्रुव है। शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी ने इनको अपना गुरु बतलाया है—

व्याख्यां कृत्वाऽऽध्यापयन्मां श्रीस्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरुः॥7॥
ततोऽधीतमहातन्त्रो विश्वोपकृतिहेतवे।
व्याचिख्यासुः श्रुतेरर्थं हरिस्वामी नतो गुरुम्॥8॥

तथा इनके काल का निर्णय भी शतपथ ब्राह्मण भाष्य के एक हस्तलेख से होता है—

यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशच्छतानि वै।
चत्वारिंशत्समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिदं कृतम्॥

इस प्रकार इस भाष्य का रचनाकाल कलियुग के 3740 वर्ष बीत जाने पर है। कलि का प्रारम्भ 3102 ई०पू० है। अतः 3740-3102=638 है। यह समय भाष्यकर्त्ता हरिस्वामी का है। इससे पूर्ववर्ती हैं इनके गुरु आचार्य स्कन्दस्वामी।

भाष्य-क्रम एवं स्वरूप

आचार्य स्कन्दस्वामी ने ऋग्वेद का यह भाष्य अध्यायक्रम के अनुसार प्रस्तुत किया है अर्थात् प्रथमाष्टक के आठ अध्यायों के अनन्तर द्वितीयाष्टक का। आचार्य ने यह भाष्य अधियज्ञपरक प्रस्तुत किया है। यह अत्यन्त सुविशद भाष्य है। आचार्य यास्क के निरुक्त को इन्होंने विशेष महत्त्व प्रदान किया है तथा अर्थ के सुस्पष्टीकरणार्थ यह ब्राह्मण तथा आरण्यकों से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। मन्त्रगत पदों का व्याकरण दिया है। इनकी दृष्टि में मन्त्रार्थ बोधहेतु ऋषि तथा देवता का ज्ञान आवश्यक है, पर छन्द का नहीं। आचार्य सायण ने इस भाष्य को विशेष महत्त्व प्रदान किया है।

स्कन्दस्वामी का यह भाष्य सम्पूर्ण ऋग्वेद पर न होकर पञ्चमाष्टक तक ही है। इस अपूर्णभाष्य को आचार्य नारायण तथा उद्गीथ ने पूर्ण किया है। आचार्य वेंकटमाधव के अनुसार इन तीनों ही आचार्यों ने मिलकर सम्मिलित रूप से इसको पूर्णता प्रदान की है—

स्कन्दस्वामी नारायण उद्गीथ इति ते क्रमात्।
चक्रुः सहैकमृग्भाष्यं पदवाक्यार्थगोचरम्॥

ऋग्भाष्य अष्टमाष्टक चतुर्थाध्याय के प्रारम्भ में ऐसा वे उल्लेख करते हैं पर यह सामान्यतः स्वीकृति है कि आचार्य स्कन्दस्वामी ने प्रथम 5 अष्टकों पर, नारायण ने मध्यभाग षष्ठ तथा सप्तम अष्टकों पर और उद्गीथ ने अष्टमाष्टक पर भाष्य प्रस्तुत किया है।

आचार्य उद्गीथ भी याज्ञिकपद्धति से भाष्य प्रस्तुत करते हैं। ब्राह्मण तथा आरण्यकों को महत्त्व देते हैं तथा निरुक्त की उपयोगिता को स्वीकार करते है। डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर से 1935 में यह भाष्य प्रकाशित हैं पर इसमें नारायण भाष्य नहीं है।

भाष्य प्रकाशन :

1. सम्पादक साम्बशिवशास्त्री- त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरिज 94 तथा 114 में दो भागों में क्रमशः 1929 तथ्य 1935 में प्रकाशित।
2. डॉ0 कुन्हनराजा- मद्रास विश्वविद्यालय संस्कृत सीरिज 8 में वर्ष 1935 में।
3. रविवर्मा त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरिज 147 में वर्ष 1942 में ट्रावणकोर से।
4. आचार्य विश्वबन्धु=स्कन्द- वेंकट-मुद्गल- उद्गीथ भाष्यसहित, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, वर्ष 1965 में।

आचार्य माधवभट्ट

आचार्य सायण के अग्रज तथा विजयनगर सम्राट् महाराज बुक्कदेव के गुरु, मीमांसा के सुप्रख्यात मर्मज्ञ निष्णात पण्डित माधव से यह भिन्न हैं। वेंकटमाधव तथा सायण दोनों ने इनका आदरपूर्वक उल्लेख किया है तथा इनके भाष्य का अनुसरण किया है। इनका भाष्य ऋग्वेद के प्रथमाष्टक पर ही उपलब्ध है और यह डॉ0 कुन्हनराजा द्वारा सम्पादित मद्रास विश्वविद्यालय संस्कृत सीरिज में दो भागों में प्रकाशित हैं यह अति संक्षिप्त भाष्य है। ब्राह्मण ग्रन्थों, निघण्टु, निरुक्त को विशेष रूप से आधार बनाया गया है।

आचार्य वेंकटमाधव

ऋग्वेद के भाष्यकारों में आचार्य वेंकटमाधव का अन्यतम स्थान है। सम्पूर्ण ऋग्वेद पर भाष्य प्रस्तुत करने वाले यह प्रथम भाष्यकार हैं, परन्तु इनका यह भाष्य अति संक्षिप्त हैं। प्रत्येक अध्याय के अन्त में इन्होंने अपना परिचय प्रस्तुत किया है। तदनुसार पितामह का नाम माधव, पिता का वेंकट तथा माता का नाम सुन्दरी है, गोत्र कौशिक है। मातामह भवगोल, अनुज संकर्षण तथा दो पुत्र वेंकट और गोविन्द हैं।

भाष्य के प्रारम्भ में ग्रन्थ की निर्विघ्न सम्पन्नता हेतु विनायक की स्तुति करते हैं। वर्जयन् शब्दविस्तरम् रूप से यह भाष्य अत्यन्त संक्षिप्त है।

अष्टक के अन्तर्गत अध्याय क्रम से है। यह भाष्यकार मन्त्रगत पदों को उद्धृत नहीं करते, अपितु उनका पर्यायवाची पद रख देते हैं। इसलिए यह भाष्य अति प्रबुद्धजनों के लिये उपयोगी है, पर सामान्य अध्येताओं के लिए नहीं। क्योंकि पद उद्धृत नहीं हैं, अतः अनुक्त पदों में अर्थ किस पद का है- यह संगति लगानी पड़ती है। भाष्य में ब्राह्मण ग्रन्थों तथा निरुक्त को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। व्याकरण की अपेक्षा निरुक्त को प्रधानता दी है। मन्त्रार्थ बोध में स्वरों की महत्ता को स्वीकार करते हैं। यावत्प्राणं तथा स्वरम् यथा जीवन के प्राणतत्त्व उसी प्रकार मन्त्रार्थ प्रकाशन में स्वरों का स्थान है। यथा अन्धकार में दीपक पथ प्रदर्शन करता है उसी प्रकार स्वरों की सहायता से अर्थ स्फुट सुस्पष्ट हो जाते हैं—

अन्धकारे दीपकाभिर्गच्छन्न स्खलति क्वचित्।
एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इति॥

इसी प्रकार मन्त्रार्थ प्रतीति में ऋषिज्ञान आवश्यक है—

अर्थज्ञान ऋषिज्ञानं भूयिष्ठमुपकारकम्। भूमिका, 1.1

प्रथम मन्त्र का भाष्य

अग्निमीले मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः।
अग्निम् स्तौमि पुरोनिहितमुत्तरवेद्यां यज्ञस्य द्युस्थानं स्वे स्वे काले देवानां यष्टारं ह्वातारं देवानाम् रमणीयानां धनानां दातृतमम्।

इनका मन्तव्य है कि निरुक्तशास्त्र को प्रधान बनाकर उपसर्गों को क्रिया पदों से जोड़कर लोक प्रचलित अर्थ के अनुरूप पद विभाग करके अर्थ की संगति कर लेनी चाहिए।

लोकप्रचलितार्थमनुसृत्य व्याख्यानं पदविभागं कृत्वा
अर्थसंगतिः कुर्यात्।

आचार्य वररुचि

आचार्य वररुचि का मन्त्रार्थ प्रकाशन में अत्यन्त विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह निरुक्त प्रक्रिया के मर्मज्ञ आचार्य हैं, इसी को आधार बनाकर इन्होंने निरुक्त समुच्चय नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इस ग्रन्थ में सर्वाणि नामानि आख्यातजानि यास्कीय सिद्धान्तों के आलोक में इन्होंने 102 वेद मन्त्रों की व्याख्या प्रस्तुत की है। वस्तुतः यह ग्रन्थ यास्क-निरुक्त की टीका नहीं है, अपितु तदनुसार मन्त्रों की व्याख्या है और इस तरह यह सुस्पष्ट करते हैं कि मन्त्रार्थ बोध में यह प्रक्रिया अत्यन्त उपयोगी है। इसी के अनुसार यह ऋषि देवता तथा विनियोग का प्रदर्शन करते हुए मन्त्रों की व्याख्या करते हैं और यह याज्ञिकपक्ष का अनुसरण करते हैं। इनकी व्याख्या निर्वचन प्रधान है। वेद कल्याणी वाणी है, अतः सूर्य प्रकाश की तरह सभी मानवों के लिए कल्याणकारी हैं।

आनन्दतीर्थ

सगुणोपासना की प्रतिष्ठा करने वाले वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत ब्रह्मसम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य मध्व ही आनन्दतीर्थ हैं। यही पूर्ण-बोध तथा पूर्ण-प्रज्ञ नाम से भी सुप्रख्यात हैं। दक्षिण भारत में उडुपी के समीप इनकी जन्मभूमि है।

समय है वि.सं. 1255-1335। यह द्वैतवादी आचार्य हैं। इन्होंने प्रभूत भाष्य ग्रन्थों को प्रस्तुत किया है। उपनिषद्-गीता-ब्रह्मसूत्र प्रस्थानत्रयी के साथ ही भागवत तात्पर्य निर्णय तथा महाभारत।

इन्होंने ऋग्वेद के प्रारम्भिक 40 सूक्तों पर ही अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। इनकी व्याख्या श्रीनारायण परक है। यही श्रीनारायण वेदों के प्रतिपाद्य हैं। यथा

सपूर्णत्वात् पुमान्नाम पौरुषे सूक्त ईरितः।
स एवाखिलवेदार्थः सर्वशास्त्रार्थ एव च॥

इनका भाष्य श्लोकात्मक है।

आचार्य महेश्वर

यह आचार्य स्कन्द स्वामी के परवर्ती आचार्य हैं। स्कन्द स्वामी द्वारा प्रस्तुत निरुक्त-वृत्ति को ही इन्होंने सरल सुबोध सुस्पष्ट बनाया है। इनका स्वतन्त्र भाष्य नहीं है। **स्कन्दमहेश्वर निरुक्त वृत्ति** संज्ञा से यह प्रसिद्ध है।

आचार्य सायण (1315-87 = 72 वर्ष)

वेद भाष्यकारों में आचार्य सायण अत्यन्त विशिष्ट अनुपम सर्वोत्तम सर्वोपरि है। वैदिक वाङ्मय के बहु व्यापक भाग पर भाष्य प्रस्तुत करने का गौरव इन्हीं आचार्य को है। वेदों की 5 संहिताओं, 11 ब्राह्मणों तथा 2 आरण्यक इस तरह कुल 18 ग्रन्थों पर इन्होंने अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण सुविशद भाष्य प्रस्तुत किया है। यथा=कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीयारण्यक, ऋग्वेदीय शाकल संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण तथा ऐतरेयारण्यक, सामवेद, शुक्ल यजुर्वेदीय काण्वसंहिता, शतपथ ब्राह्मण, अथर्ववेद तथा सामवेदीय सभी 8 ब्राह्मण। यथा—

1. ताण्ड्यमहाब्राह्मण 2. षड्विंश 3. सामविधान 4. आर्षेय
5. देवताध्याय 6. उपनिषद ब्रा. 7. संहितोपनिषद् ब्रा. 8. वंश ब्राह्मण।

इन्हीं आचार्य द्वारा प्रस्तुत भाष्यों ने पाश्चात्य विदेशी विद्वानों का मार्ग वेदानुवाद हेतु प्रशस्त किया तथा भाष्य दृष्टि में मतभेद होने पर भी उन पाश्चात्य अनुवादकों को अर्थबोध हेतु एक उत्तम आधार मिल गया।

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्राचीन भारतीय संस्कृति में विद्याधनी मनीषी विद्वान् अपने व्यक्तित्व के प्रकाशन के प्रति प्रायः मौन ही रहे हैं। आत्मश्लाघा प्रशंसा से सदैव विरत रहे हैं। इसीलिए अपनी कृतियों में उन्होंने अपना जीवन परिचय नहीं दिया है। पर आचार्य सायण ने भाष्यों के आदि एवम् अन्त में अपना सुविशद परिचय प्रदान किया है।

वस्तुतः अपने विद्यागुरुदेव तथा आश्रयदाता के गुणानुवाद में स्वयं इनका अपना भी व्यक्तित्व परिचय सुप्रकाशित हो गया है और इसी ब्याज से इनका निःसंदिग्ध प्रामाणिक परिचय प्राप्त हो पा रहा है। जैसा कि ऋग्वेदभाष्य भूमिका में वे प्रस्तुत कर रहे हैं—

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्॥
यत्कटाक्षेण तद्रूपं दधद् बुक्कमहीपतिः।
आदिशन् माधवाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥
यो पूर्वोत्तरमीमांसे ते व्याख्यायातिसंग्रहात्।
कृपालुर्माधवाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः॥
आध्वर्यस्य यज्ञेषु प्राधान्याद् व्याख्यातः पुरा।
यजुर्वेदोऽथ हौत्रार्थमृग्वेदो व्याकरिष्यते॥2-5॥

स्वयं आचार्य द्वारा प्रस्तुत भाष्यों तथा इनके आश्रयदाता राजाओं के शिलालेखों के माध्यम से इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सुस्पष्ट प्रकाशन होता है।

यह आन्ध्र प्रदेश में तुङ्गभद्रा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित विजय नगर राज्य के निवासी हैं। इनका जन्म पारम्परिक विद्यामण्डित द्विज कुल में हुआ। इनके पिता का नाम मायण तथा माता का नाम श्रीमती या श्रीमायी है। गोत्र भरद्वाज तथा गृह्यसूत्र बौधायन है। वेदशाखा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय हैं। यह तीन भाई हैं और इनकी एक बहन भी है। ज्येष्ठ भ्राता माधव तथा कनिष्ठ भोगनाथ हैं। इन तीन भाइयों में यह मध्यम हैं। इनकी बहन का नाम सिंगले है। लक्ष्मीधर देव तथा अधबलपण्डित नामक दो भागिनेय हैं। इनके तीन पुत्र हैं—कम्पन- मायण तथा शिंगव जो क्रमशः संगीत, कविकर्म तथा वैदिक यज्ञविद्या में विशारद हैं।

तीन गुरुदेवों से विद्याधन ग्रहण करने का इनको सौभाग्य मिला। विद्यातीर्थ, भारती तीर्थ तथा श्रीकण्ठ। यह परम श्रेष्ठ गुरुभक्त हैं। परमात्मस्वरूप मानकर श्रीगुरुदेव के प्रति श्रद्धा भक्तिभाव प्रकाशित करते हैं—

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमोहार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरम्॥

वेदार्थ प्रकाश नामक अपने ऋग्वेद भाष्य को इन्होंने अपने श्रीगुरुदेव विद्यातीर्थ को महेश्वर रूप में समर्पित किया है।

आचार्य सायण ने अपने आश्रयदाता राजाओं का बहुत सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है और उनको वैदिक मार्ग का प्रवर्त्तक कहा है। विजय नगर संगम राजवंश के चार राजाओं का इनको पूरा पूरा संरक्षण मिला है। इस राजवंश की स्थापना महाराज संगम ने की। इनके आश्रयदाताओं में क्रमशः 1. कम्पण 2. संगम द्वितीय 3. बुक्क प्रथम तथा 4. हरिहर द्वितीय हैं। यह राज्य के महामात्य के महिमाशाली पद पर प्रतिष्ठित रहे। इस तरह आचार्य सायण का समय 1315 से 87 तक=72वर्षों का है। इस तरह इनको एक सुदीर्घ जीवन काल मिला। इनके अग्रज आचार्य माधव पराशर स्मृति की टीका में स्वयं ही अपने वंश कुल का परिचय प्रदान कर रहे हैं—

श्रीमतीजननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता।
सायणो भोगनाथश्च मनोबुद्धी सहोदरौ॥
यस्य बोधमयं सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी।
भारद्वाजकुलं यस्य सर्वज्ञः स हि माधवः॥

आचार्य सायण का परिचय प्रदान करने वाला यह अत्यन्त प्रबल अन्तः प्रमाण है।

राज्याश्रय

आचार्य सायण को विजय नगर के 4 राजाओं का पूर्ण संरक्षण एवम् आश्रय प्राप्त करने का गौरव है। जैसा कि उन्होंने स्वयं ही अपने आश्रयदाताओं का आदरपूर्वक उल्लेख किया है। यथा ऋग्वेदभाष्य के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर—

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर वैदिक मार्ग-
प्रवर्त्तक श्रीवीरबुक्क भूपालसाम्राज्यधुरन्धरेण
सायणाचार्येण विरचिते माधवीयवेदार्थप्रकाशे
ऋक्संहिताभाष्ये प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः।

इस तरह वैदिक वाङ्मय के इतिहास में आचार्य सायण अत्यन्त विलक्षण व्यक्तित्व के धनी हैं। शास्त्र एवं शस्त्र राजनीतिशास्त्र कर्म कौशल के साथ ही युद्ध कौशल में सुदक्ष निपुण हैं और सर्वत्र सफलता अर्जित करने वाले हैं। गुरुकृपा एवं भगवत्कृपा के भाजन हैं। अत्यन्त महनीय उपलब्धियों से अभिमण्डित देदीप्यमान इनका मानव जीवन है।

ऋग्वेद का भाष्य मुख्य रूप से महाराज बुक्क के शासनकाल (1364-80) में सम्पन्न हुआ होगा। यह सर्वोत्तम समय था। आचार्य के अग्रज माधव इनसे लगभग 15 वर्ष बड़े थे जो अत्यन्त वैदुष्य सम्पन्न व्याकरण तथा मीमांसा शास्त्र के उद्भट मर्मज्ञ आचार्य थे तथा बुक्कमहाराजा के गुरु थे। जैमिनीय न्याय मालाविस्तर इनका प्रमुख ग्रन्थ है। सायण ने

अपने अग्रज से ही विद्या ग्रहण की और महाराज बुक्क की प्रार्थना पर माधव ने स्वयं वेदों का भाष्य न करके अपने अनुज सायण को एतदर्थ प्रेरित किया और इसीलिए सायण ने अपने भाष्य का नाम **माधवीयवेदार्थप्रकाश** रखा है।

आचार्य सायण अत्यन्त मेधावी प्रतिभाशाली थे। ज्येष्ठ भ्राता तथा तीन श्रीगुरुदेवों से विद्या ग्रहण करने का इनको सुयोग मिला। विविध शास्त्रों का स्वयं गहन अध्ययन किया। फलस्वरूप शास्त्रों में इनकी अप्रतिहत गति हो गयी। प्रशासन कर्म में श्रेष्ठ होने के साथ ही यह युद्ध-विद्या में भी पारंगत थे और युद्ध विजयी योद्धा रूप में प्रसिद्ध हो गए। राज्य सीमा का विस्तार एवं संवर्द्धन किया। इस तरह अप्रतिम अद्वितीय अनुपम व्यक्तित्व के धनी हो गये।

अत्यन्त व्यस्त व्यापृत जीवन होने पर भी इन्होंने वेद भाष्यों को प्रस्तुत किया और इनके द्वारा अपने आश्रयदाताओं को भी अमर बना दिया, अक्षय सुकीर्ति से अभिमण्डित कर दिया।

कर्त्तृत्व

आचार्य सायण सनातन भारतीय याज्ञिक संस्कृति के प्रबल समर्थक उपासक एवं सम्पोषक हैं। इसके संरक्षण एवं संवर्द्धन के प्रति वे जागरूक रूप से प्रयत्नशील हैं। वैदिक वाङ्मय के बृहद् भाग पर वैदुष्यपूर्ण भाष्य प्रस्तुत किया है। यह याज्ञिक प्रक्रिया के प्रतिनिधि आचार्य हैं। यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म (शतपथ 1.7.1.5)। इसलिए इनका भाष्य याज्ञिकपद्धति प्रधान है। ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत होने से वेद सर्वथा अनवद्य एवं सकल ज्ञान निधान है। स्वतः प्रकाशत्व सूर्य-चन्द्र की तरह वेदों का स्वतः प्रामाण्य है।

आचार्य सायण तैत्तिरीय शाखाध्यायी ब्राह्मण हैं। यज्ञानुष्ठान कर्म सम्पादक ऋत्विजों में अध्वर्यु की प्रधानता होती है। यह यज्ञ का नेता निष्पादक होता है। वेदों में यजुर्वेद यज्ञ का शरीर है, ऋग्वेद आभूषण है और सामवेद मणिमुक्ता रूप है। शरीर की निष्पत्ति होने के अनन्तर ही अलंकरण हेतु आभूषण तथा मणियों की आवश्यकता होती है—

जाते देहे भवत्यस्य कटकादिविभूषणम्।
आश्रितं मणिमुक्तादिः कटकादौ यथा तथा॥
यजुर्जाते यज्ञदेहे स्यादृग्भिस्तद्विभूषणम्।
सामाख्या मणिमुक्ताद्या ऋक्षु तासु समाश्रिताः॥

ऋ.भा.भू. 12-13

इसीलिए आचार्य ने यजुर्वेद का भाष्य सबसे पहले प्रस्तुत किया है—

अर्थज्ञानस्य तु यज्ञानुष्ठानार्थत्वात् तत्र तु यजुर्वेदस्यैव प्रधानत्वात् तद् व्याख्यानमेवादौ युक्तम्। ऋ.भा.भू.

क्योंकि अर्थज्ञान बिना यज्ञानुष्ठान सम्भव नहीं है। मन्त्रार्थ बोध हेतु ऋषि, देवता,

छन्द तथा स्वर का ज्ञान आवश्यक है। इनके बोध बिना अध्यापन या जपकार्य नहीं करना चाहिए, अन्यथा दोष की प्राप्ति होती है—

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद् वापि पापीयाञ्जायते तु सः॥ 1.1.1॥
ऋषिच्छन्दो दैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि।
अविदित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यत्॥ 1.1.1॥

इसीलिए सूक्त के आदि में यह ऋषि, देवता और छन्द का उल्लेख करते हैं। मन्त्र के स्वरूप बोध हेतु स्वर-वर्ण अक्षर मात्रा विनियोग तथा अर्थ को जानना चाहिए—

स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थ एव च।
मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे॥ 1.1.1॥

इसलिए यह मन्त्र के विनियोग को बतलाते हैं—

तत्र अग्निमीळे इति सूक्तं प्रातरनुवाके आग्नेये क्रतौ विनियुक्तम्।

भाष्य पद्धति

आचार्य सायण ने मन्त्रों को सुबोध सुस्पष्ट बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। उनके भाष्यपद्धति की प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1. मन्त्र भाग की प्रथम व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, इसलिए यह ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थित मन्त्रों, शब्दों की व्याख्या को ग्रहण कर लेते हैं।
2. आचार्य यास्क की व्याख्या को पूरी तरह ग्रहण कर लेते हैं।
3. अपनी व्याख्या की सम्पुष्टि हेतु यह इतिहास पुराण तथा स्मृति ग्रन्थों को प्रमाण-स्वरूप उद्धृत करते हैं।
4. मन्त्र व्याख्या के अनन्तर यह पद-निर्वचन तथा व्याकरणप्रक्रिया का निर्देश करते हैं।
5. मीमांसाशास्त्र से प्रभावित इनकी याज्ञिकी अधियज्ञ परक व्याख्या है, कहीं कहीं पर अधिदैवत तथा अध्यात्मपरक व्याख्या है।
6. अपने पूर्ववर्ती भाष्यकारों की भाष्यपद्धति को बहुमानपूर्वक स्वीकार करते हैं। इनकी व्याख्यापद्धति का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं—

1. मन्त्रगत पदों का अर्थ प्रकाशन
2. व्युत्पत्ति, स्वर, व्याकरणादि का निर्देश
3. अर्थों की सुस्पष्ट प्रतीति एवं संगति हेतु आख्यानों का उपयोग।

इस प्रकार वेदभाष्यों में आचार्य सायण प्रस्तुत भाष्य मानक है। इसके द्वारा वेद-दुर्ग

में प्रवेश सुकर हो गया। पाश्चात्य वेद मनीषियों, अनुवादकों का भी मन्त्रार्थ बोध में मार्ग दर्शन किया। विल्सन, ग्रीफिथादि इनसे बहुत प्रभावित हैं तथा अनेक विद्वानों की प्रवृत्ति वेदाध्ययन में हुई।

इस तरह वेदों के संरक्षण एवम् अर्थ प्रकाशन में आचार्य सायण का महत्तम योगदान है।

आचार्य मुद्गल

वेदों के भाष्यकारों की समृद्ध प्रशस्त परम्परा में आचार्य मुद्गल का विशिष्ट स्थान है। यह आचार्य सायण का अनुसरण करते हैं, मानो उनके भाष्य का संक्षेपीकरण कर रहे हैं। ऋग्वेद का इनका भाष्य मण्डल क्रमानुसार है। जबकि आचार्य सायण का अष्टकक्रमानुसार। इनका सम्पूर्ण भाष्य उपलब्ध नहीं है। प्राप्त भाष्य प्रथम मण्डल सूक्त 1-121 तक, पञ्चम मण्डल सूक्त 9 से समाप्ति तक, षष्ठ मण्डल सूक्त 1 से 9 तक।

यह भाष्य संक्षिप्त तथा अतीव सुबोध है। यथा—द्वितीयमन्त्र की

ऋग्वेदस्याऽऽश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूका चेति पञ्चशाखाः। शाकल को प्रधान मानकर भाष्य प्रस्तुत कर रहे हैं—

अग्निः अयमग्निः। पूर्वेभिः पुरातनैः भृग्वङ्गिराप्रभृतिभिः ऋषिभिः (ईड्यः स्तुत्यः। उत अपि च नूतनैः नवैः अस्माभिः स्तुत्यः। सः अग्निः स्तुतः सन् इह यज्ञे देवान् आ वक्षति आ वहतु॥2॥

स्वामी आत्मानन्द

स्वामी आत्मानन्द अध्यात्म-प्रज्ञा सम्पन्न एक संन्यासी विद्वान् एवं विलक्षण भाष्यकार हैं। इनका समय 13वीं शताब्दी है। पिता का नाम विष्णु प्रकाशक तथा अग्रज का लक्ष्मीधराचार्य है। यह ऋग्वेद के केवल अस्यवामीय सूक्त (1.164) के 52 मन्त्रों पर ही भाष्य प्रस्तुत करते हैं। यह भाष्य अध्यात्मपरक है, अधियज्ञ या अधिदैवतपरक नहीं। यह अद्वैत भाव से मन्त्रों की व्याख्या करते हैं। इस अस्यवामीय सूक्त में अनेक देवता हैं, पर यह केवल एक ही परमात्मा को मानते हैं। इस सूक्त का प्रतिपाद्य विषय केवल ब्रह्म ही हैं यह इनका स्वतन्त्र चिन्तन हैं। जैसाकि यह स्वयं ही उल्लेख करते हैं—

अस्य वामस्येति द्विपञ्चाशन्मन्त्रात्मकमिदं सूक्तम् दैर्घतमसम्।
आत्मा दैवतम्, सूक्ष्मब्रह्मप्रतिपादनम्।

संशय- प्रश्न - समाधान - यह त्रिक इनके भाष्य का वैशिष्ट्य है। संशय तथा प्रश्न उपस्थित करके इनका समाधान उत्तर दिया गया है।

अद्वैतवेदान्तसिद्धान्त के अप्रतिम आचार्य शंकर से यह प्रभावित हैं, तथापि सामाजिक विषयों का भी प्रतिपादन करते हैं। यथा वेद अध्ययन-अध्यापन, उपदेश प्रदान करने में

स्त्रियों तथा शूद्रों की अर्हता अधिकार के ये पक्षधर है। क्योंकि वेद तो कल्याणी वाणी हैं, बिना वर्ग लिङ्ग भेद के सभी के लिए समान रूप से उपकारक हैं।

पं० नीलकण्ठभट्ट

पञ्चमवेद के रूप में सुप्रथित संस्कृत वाङ्मय का एक लक्ष श्लोकात्मक बृहत्तम ग्रन्थ महाभारत के टीकाकार पं० नीलकण्ठ भट्ट का वेद भाष्यकारों में अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। वेदों में लौकिक इतिहास नहीं है। इसी प्रकार रामायण, महाभारत तथा पुराणों में चित्रित श्रीराम श्रीकृष्णादि का चरित्र भी नहीं है। फिर भी इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् स्वयं व्यासदेव के वचनानुसार वेदों में सन्निहित रहस्यों के प्रकाशन में ऐतिहासिकी तथा पौराणिकी दृष्टि की उपयोगिता है।

पं० भट्ट ने महाभारत के ऊपर **भारतभावदीप** नाम की अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण टीका प्रस्तुत की है। इसी प्रकार **मन्त्ररामायणम्** तथा **मन्त्रभागवतम्** में भी वेद मन्त्रों की प्रस्तुत व्याख्या में इन्होंने एक व्याख्याकार की विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। इन दोनों लघु ग्रन्थों में इन्होंने सुप्रख्यात श्रीराम तथा श्रीकृष्ण की कथाओं को वैदिक आधार प्रदान किया है और इस तरह वेदों में भागवतधर्म का प्रतिपादन किया है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में निरूपित श्रीकृष्ण के चरित्र के अनुरूप ऋग्वेद के 107 मन्त्रों की श्रीकृष्णपरक व्याख्या की है। इन ऋचाओं का इन्होंने चतुर्धा वर्गीकरण किया है। यथा—

1. गोकुल काण्ड 2. वृन्दावन काण्ड 3. अक्रूर काण्ड तथा 4. मथुरा काण्ड।

इन काण्डों में श्रीकृष्णावतार, पूतना, शकट, धानुकादि राक्षसों का संहार, कालियनागदमन, अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाना, कंस का वध, समुद्र जल क्रीड़ा, श्रीकृष्ण का ऊर्ध्वलोक प्रस्थान इत्यादि कथाओं का साधु सुसंगत प्रदिपादन किया है।

पं० नीलकण्ठ के अनुसार ऋग्वेद के सभी मन्त्रों का प्रतिपाद्य देवता श्रीकृष्ण ही है। अग्नि इन्द्रादि विविध देवों की स्तुति में वस्तुतः विष्णुदेव के ही विविध कर्मों का निरूपण है। यथा मणिखचित भवन में स्थित एक ही पुरुष नाना रूपों में प्रतिभासित होता है उसी प्रकार सभी देवों में वस्तुतः विष्णु ही विराजमान हैं। अपने इस मत की सम्पुष्टि के लिए वे आचार्य यास्क के देवविषयक सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं—

महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्तिः-निरुक्त।

पं० भट्ट अपनी इस व्याख्या के लिए ऋग्वेद में स्थित अदिति के स्वरूप का अनुगमन कर रहे हैं—

अद्वितिर्द्यौ (1.89.10) में एक ही अदिति का सर्वरूप में प्रतिपादन किया गया है।

अग्निमीळे पुरोहितं इस प्रथम मन्त्र में एक ही अग्नि पुरोहित ऋत्विक् होता रत्न-प्रदाता है।

आचार्य यास्क का कथन है कि एक ही पुरुष कर्मभेद से नाना प्रकार की भूमिकाओं में उपस्थित होता है। कर्मानुसार वह कभी होता कभी अध्वर्यु कभी उद्गाता और वही कभी ब्रह्मा बन जाता है, उसी प्रकार यह एक ही परमात्मा विष्णु अग्नि इन्द्रादि विविध देवों के रूप में सर्वत्र विराजमान है।

ऋग्वेदीय मन्त्रों की मन्त्रभागवतम् इस व्याख्या में पं. भट्ट ने अग्नि इन्द्रादि देवों को विष्णु रूप में तथा अहि वृत्रादि असुरों को कालियनाग के रूप में प्रस्तुत किया है। यह इनकी पौराणिकी आध्यात्मिकी व्याख्या हैं। इसमें सर्वेश्वरवाद अद्वैततत्त्व की स्थापना है। ग्रन्थ के आदि में वे प्रतिज्ञा करते हैं—

सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्तद्विष्णोः परमं पदम्।
प्राप्तुं मन्त्रेषु गोपालविष्णोः कर्माणि पश्यत॥
यत्किंचिद्देवतो मन्त्रो विष्णुलीलोपबृंहिताः।
वैष्णवः सः यतो विष्णुः सर्वदैवतनामभृत्॥ भूमिका 1, 3

इस प्रकार पं. नीलकण्ठ भट्ट का वेद-भाष्यकारों टीकाकारों में महत्त्वपूर्ण प्रशंसनीय स्थान है। अपनी पौराणिकी व्याख्या के माध्यम से उन्होंने ऋग्वेद में भागवत धर्म-दर्शन का साधु प्रतिपादन किया है।

ऋषि दयानन्द (12.2.1824 से 30.10.1883)

वेद-भाष्यकारों में ऋषि दयानन्द का अत्यन्त विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाष्य प्रस्तुत करने का इनका प्रयोजन है अनर्थ निवारण सत्यार्थ प्रकाशन। वेदों के विषय में भ्रान्तियों का निराकरण करके सामान्य जनों को भी वेदों के महत्त्व एवम् उपयोगिता से परिचय कराना हैं क्योंकि वेद कल्याणी वाणी हैं बिना किसी भेदभाव के सर्वहित सम्पादक हैं, सभी के लिए उपयोगी है। सामान्य जन भी वेदज्ञान से लाभान्वित हो सकें, जनजागरण होवे, इसीलिए ऋषिवर वेदों का भाष्य संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रस्तुत करते हैं।

वेदों के द्विविध अर्थ हैं—1. व्यावहारिक तथा 2. पारमार्थिक। प्रत्येक मन्त्र में दो प्रकार के अर्थ निहित हैं। इस तरह ऋषि दयानन्द सनातनी संस्कृति के रक्षणार्थ युगबोध के अनुरूप वेदों की समाजोन्मुखी व्याख्या करते हैं। इनसे पूर्व वेदों की व्याख्या मुख्य रूप से कर्मकाण्ड सीमित यज्ञ परक रही है। वेद समस्त सत्यविद्याओं के आकर हैं। ज्ञान-विज्ञान के सभी विषय इनमें विद्यमान हैं। वेद सर्वज्ञानमय हैं, आधुनिक भौतिक विज्ञान का मूल इनमें सन्निहित है। ज्ञान-गुणों की इनमें कोई इयत्ता नहीं है। वेद असीमित ज्ञाननिधि हैं।

यह गुर्जर प्रदेशीय औदीच्य ब्राह्मण हैं। बचपन का नाम मूल शङ्कर है। 22 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया और दयानन्द इस अभिधान से सुप्रख्यात हुए। स्वामी विरजानन्द से दीक्षा ली। भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का, बाल विवाहादि सामाजिक कुरीतियों के निवारण का संकल्प किया।

शास्त्र-शिक्षा पर विशेष बल दिया। गुरुकुल शिक्षा पद्धति का उन्नयन किया। वर्ष 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। मुख्य रूप से जीवन के अन्तिम 10 वर्षों में यह समाज सुधार के कार्यों तथा लेखन कार्य के प्रति समर्पित रहे। लगभग 20 हजार पृष्ठात्मक इनके 33 ग्रन्थ हैं, उल्लेखनीय हैं। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाः, यजुर्वेदभाष्य, ऋग्वेदभाष्य-अपूर्ण, सप्तम मण्डल सूक्त 6 द्वितीय मन्त्र तक।

व्याख्या पद्धति

ऋषि दयानन्द अपने वेदभाष्य में आचार्य यास्क का अनुगमन करते हैं, सायण तथा महीधर का नहीं। मन्त्रार्थ प्रतीति में स्वरों के विशेष महत्त्व को स्वीकार करते हैं। ऋषि, देवता और छन्द का उल्लेख करते हैं। मन्त्रों का विनियोग न बतलाकर इनके प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत करते हैं। इस तरह मन्त्रार्थ बोध में अधिक सुस्पष्टता आ रही है।

देवताओं के त्रिविधरूप हैं- मूर्त, अमूर्त तथा मूर्तामूर्त। पर उपास्य देवता केवल परमात्मा ही है। तद्यथा- तत्राद्ये मन्त्रेऽग्निशब्देनेश्वरेणात्मभौतिकावर्थावुपदिश्येते।

इस प्रकार मन्त्र में आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही अर्थ निहित है। अग्नि ईश्वर परमेश्वर है और वहीं व्यावहारिक भौतिक अग्नि भी है।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द वेदों की मानवोपयोगिता का प्रतिपादन करते हैं। देवताओं के अभौतिक तथा भौतिक दोनों स्वरूपों को स्वीकार करते हैं। यथा ईश्वर सन्मार्ग का प्रकाशन करके उपकार करता है उसी प्रकार भौतिक अग्नि भी मनुष्यों का उपकार करता है। इस प्रकार ऋषिवर की व्याख्या में औचित्य उपयुक्तता पर विशेष बल है। मन्त्रार्थ को युक्तिसंगत होना चाहिए।

त्रैतवाद

ऋषि दयानन्द त्रैतवाद के पक्षधर है। प्रकृति, जीव तथा परमात्मा तीनों तत्त्व नित्य हैं, इनका कोई कारण नहीं है, अपितु तीनों पदार्थ जगत् के कारण हैं।

भाष्यक्रम

अति गम्भीर रहस्यात्मक मन्त्रों को सामान्य जनों के लिए भी सुबोध सुग्राह्य बनाने के लिए ऋषिवर ने संस्कृत के साथ ही हिन्दी में भी अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। भाष्य का क्रम इस प्रकार है—

1. मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय, 2. पदपाठ, 3. संस्कृत पदार्थ, 4. अन्वय, 5. संस्कृत भावार्थ, 6. हिन्दी पदार्थ, 7. हिन्दी भावार्थ।

इस प्रकार सामान्य अध्येताओं का भी वेदों में प्रवेश सुगम हो गया और वस्तुतः यही है शास्त्र का रक्षण, उसका प्रयोजन, सामाजिक उपयोगिता। ऋषिवर के इस भाष्य को व्यापक आधार मिला। इन्होंने यह भी बलपूर्वक प्रतिपादित किया कि वेदाध्ययन पठन-पाठन तथा उपदेश प्रदान करने में स्त्रियों को पूर्ण अधिकार है। उनको शास्त्र तथा शस्त्र उभय विधाओं में पारंगत होना चाहिए। इस तरह अपने भाष्यों के माध्यम से ऋषिवर ने समाज में एक नई चेतना जागृत कर दी।

टी.वी. कपालीशास्त्री

आधुनिक वेदभाष्यकारों में दक्षिण भारतीय पं. कपाली शास्त्री जी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह महर्षि रमण तथा योगी अरविन्द घोष से प्रभावित हैं। विलक्षण मेधा सम्पन्न अप्रतिम विद्वान् है। प्रभूत साहित्य सम्पत्ति सम्पन्न है। उल्लेखनीय है—

ऋग्वेद-सिद्धाञ्जनभाष्य, ऋग्भाष्यभूमिका, उमासहस्रम्

The book of light.

यह ऋषियों को कविरूप में स्वीकार करते हैं, इस तरह वेदों के अपौरुषेयत्व के पक्षधर नहीं है। वेदों का संघटन विभिन्न कालखण्डों में हुआ है। इनमें जडप्रकृति की चेतनावत् स्तुतियाँ हैं। मन्त्र रहस्यात्मक हैं। इनके दोनों प्रकार के अर्थ हैं—

1. आध्यात्मिक तथा 2. स्थूल भौतिक।

अनेक देव हैं पर परमदेव एक ही है। अन्य सभी इसी के नामधेय हैं। यह परम देव नाना रूपों में प्रकट होता है। सभी देवों का इसी परम देव में विलय भी हो जावेगा।

महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्दसरस्वती (1881-1992)=111 वर्ष—

आधुनिक वेदमनीषियों में म.म. स्वामी गङ्गेश्वरानन्द सरस्वती का अत्यन्त विशिष्ट उल्लेखनीय स्थान है। लगभग 10 हजार पृष्ठों में प्रकाशित इनकी ग्रन्थ सम्पत्ति है। इसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है **भगवान् वेदः।** सभी संहिताओं का कृष्णयजुर्वेद को छोड़कर इसमें एक ही जिल्द में संघटन है। इसका भौतिक भार 21 किलो है। ऋग्वेद संहिता के लिए इसमें शाखा का नाम **शाकलशाखा** का उल्लेख है और वैदिक वाङ्मय के इतिहास में शाखा का यह प्रथमतः उल्लेख है, इससे पूर्व केवल ऋक्संहिता या ऋग्वेद का उल्लेख है, शाखा का नाम नहीं।

स्वामी जी ने वेद शब्द की निष्पत्ति 5 धातुओं से बतलाई है—

1. विद् ज्ञाने वेत्ति धातुपाठ 1064
2. विद् सत्तायां विद्यते धातुपाठ 1171

3. विद् विचारणे विन्ते धातुपाठ 1451
4. विद्लृलाभे विन्दति 1433
5. विद् वेदयते चेतनाख्याननिवासेषु 1709

विद् चेतनाख्याननिवासेषु वेद्यते निवसति सर्वो देवगणः पाठकशरीरे येन, चेत्यते ज्ञायते धर्मब्रह्मतत्त्वं येन, आख्यायते रामकृष्णादिचरितजातं येन स वेदः।

वेद शब्द की इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रज्ञाचक्षु यह महामण्डलेश्वर वेदों में श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के चरित्र को प्रदर्शित करते हैं। यथा अग्निमीळे पुरोहितमिति प्रथमे मन्त्रे अग्निम् अग्निसदृशम् बकासुरेण निगीर्णे सति तस्य अग्निवत् तालुमूलदाहकम् तच्च भागवते 10.11.50 स्फुटम्। तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवत् इत्यादि।

पद्मभूषण पं0 श्रीपाददामोदर सातवलेकर (1867-1968)=101 वर्ष

वेदों के आधुनिक व्याख्याकारों में पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शकसंवत् 1789 भाद्रकृष्ण षष्ठी गुरुवार को रत्नगिरि स्थित सावन्तवाड़ी रियासत के कोलगाँव में भगवान् दत्तात्रेय के अनुग्रह से पं0 दामोदरपन्त-लक्ष्मीबाई के कुलदीपक के रूप में इनका आविर्भाव हुआ। यह अत्यन्त विलक्षण प्रतिभा के धनी परम मेधावी थे। सनातन भारतीय संस्कृति के समुज्ज्वल स्वरूप के प्रकाशनार्थ तथा इसके सर्वस्वरूप वेदों के रक्षण एवं इनमें निहित विद्याओं के व्यापक प्रचार प्रसार हेतु इनको 101 वर्षों का निरामय स्वस्थ जीवन मिला।

एतदर्थ इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। यद्यपि प्रारम्भ में वह अत्यन्त कुशल चित्रकार थे।

भारतीय संस्कृति अध्यात्मप्रतिष्ठित धर्ममूलक है और धर्मस्वरूपबोध हेतु वेदार्थबोध आवश्यक है। सामान्यजनों का भी वेदों से परिचय होना चाहिए। इसी दृष्टि से इन्होंने बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किए। यथा—

1. संस्कृत वाग्वर्द्धिनी, विवेकवर्द्धिनी तथा स्वाध्यायमण्डल संस्थानों की स्थापना
2. वेद-संहिताओं का शुद्ध प्रकाशन
3. सभी संहिताओं, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता की हिन्दी भाषा में व्याख्या।
4. वेद स्वयं शिक्षक 2 भाग, वेद परिचय 3 भाग, संस्कृत पुस्तक माला 25 भाग तथा पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं वेद परीक्षाओं का आयोजन।

लोकसमाज की दृष्टि से वेदों का हिन्दी में शब्दार्थ सहित सुविशद व्याख्या/सुबोध भाष्य इसका नामकरण सर्वथा सार्थक है।

इस प्रकार हिन्दी भाषा के माध्यम से वेद निहित विद्याओं के प्रकाशन में पं. प्रवर सातवलेकर का अत्यन्त विशिष्ट महनीय योगदान है।

पश्चिम में वेदाध्ययन का स्वतन्त्र चिन्तन

College de Frank में प्रो0 ई0 बरनूफ़ संस्कृत के प्रोफेसर थे, वेदाध्ययन के प्रति इन्होंने विशेष रुचि ली, अनेक उत्कृष्ट शिष्यों को तैयार किया जिन्होंने वेदाध्ययन पर स्वतन्त्र चिन्तन किया तथा बहुल महत्वपूर्ण लेखन कार्य किया। इन विद्वानों का प्रमुख प्रयोजन था विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों से पाश्चात्य जगत् का परिचय कराना, इनके प्रति रुचि उत्पन्न करना। इन्होंने भारतीय पण्डितों तथा सायण-भाष्य से हटकर वेदार्थबोध हेतु अन्य मार्ग बनाया, यही है तुलनात्मक भाषाविज्ञान का पथ।

प्रो0 बरनूफ़ स्वयं प्रकाण्ड भाषाविद् थे। इन्होंने वेदभाषा की ग्रीक लैटिन तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं के साथ तुलना की और इनमें सादृश्य पाया और इस तरह इन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि तुलनात्मक भाषा विज्ञान के द्वारा वेदों का अर्थबोध ठीक ठीक किया जा सकता है, क्योंकि इनकी धारणा थी कि वेद केवल भारतीय संस्कृति के ही आदिम ग्रन्थ नहीं हैं, अपितु यूरोपीय परिवार के भी प्राचीनतम शब्दनिधि हैं। इनके शिष्यों में प्रमुख थे रुडाल्फ रॉथ तथा फ्रेडरिक मैक्समूलर। इस तरह वेदाध्ययन में एक नई क्रान्ति सी आ गई, एक नए युग का प्रारम्भ हो गया और वेदाध्ययन के लिए दो विचारधाराएँ बन गई—

1. वेदार्थबोध हेतु सायणभाष्य के माध्यम से भारतीय परम्परा को आधार बनाना
2. तुलनात्मक भाषा विज्ञान

पाश्चात्य भाष्यकार इन्हीं दो वर्गों में विभक्त हो गए, एक दूसरे के परस्पर कटु आलोचक भी हो गए। कुछ प्रबल अतिवादी हो गए, फिर भी कुछ मध्यममार्गीय रहे और दोनों ही पद्धतियों के गुणों, विशेषताओं को ग्रहण किया।

कोलब्रुकमहोदय (1765-1837)

पाश्चात्य देशों में वेदाध्ययन का प्रदीप प्रज्ज्वलित करने का श्रेय इसी विद्या-विभूति को है। वर्ष 1805 में उन्होंने एशियाटिक रिसर्चेज नामक शोधपत्रिका में वेदविषयक एक सुविस्तृत निबन्ध प्रकाशित किया जिससे वेदाध्ययन के प्रति पश्चिमी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ और इस तरह वेद ग्रन्थों के सम्पादन, प्रकाशन तथा अनुवाद सम्बन्धी प्रभूत कार्य होने लगे। भारत में रहकर इन्होंने वेदों की पाण्डुलिपियों का संग्रह किया और उनको इंगलैण्ड भेजा। इन्हीं के संग्रह से मैक्समूलर ने ऋग्वेद की पाण्डुलिपियों का उपयोग किया और उनको भारत नहीं आना पड़ा। इस तरह ऋग्वेद के प्रथम पूर्ण प्रकाशन में कोलब्रुक महोदय का महनीय योगदान है।

ऋग्वेद के सम्पादक प्रकाशकों एवं अनुवादकों में निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

वेद-निधि प्रकाशन में पाश्चात्य विद्वानों का योगदान

प्रो0 फ्रेडरिक रोजेन Freidrich Rosen (1805-37)

भारतीय संस्कृति की महत्तम सम्पदा वेदनिधि के रक्षण एवं प्रकाशन में पाश्चात्य विद्वानों का अत्यन्त श्लाघनीय विशिष्ट योगदान है। इनमें जर्मन देशीय विद्वान् प्रो0 फ्रेडरिक रोजेन बहुत ही आदरणीय प्रशंसनीय हैं। ऋग्वेद भारतदेश का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व का अब तक उपलब्ध प्रथम ग्रन्थरत्न है। यह मौखिकी श्रुति परम्परा तथा हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित था। इसका प्रथमतः सम्पादन तथा लैटिन भाषा में अनुवाद करने का श्रेय इसी विद्वान् को है। पर कालदेवता की लीला बहुत ही विचित्र तर्कबुद्धि से परे होती है। इस युवा विद्वान् का वर्ष 1837 में मात्र 32 वर्ष की अवस्था में असामयिक देहावसान हो गया, इस कारण यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न न हो सका। इनके निधन के एक वर्ष के अनन्तर वर्ष 1938 में इसके प्रथम भाग का प्रकाशन हो पाया; पर यह सुव्यवस्थित तथा पूर्ण नहीं था, फिर भी ऋग्वेद को प्रथमतः प्रकाश में ले आने का श्रेय गौरव इसी विद्वान् को है।

बर्लिन में सुप्रख्यात विद्वान् प्रो0 फ्रान्त्स बाप Franz Bopp (1791-1867) से इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। वर्ष 1826 में 'Specimen of the Chief Sanskrit Roots' पर शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया तथा वर्ष 1827 में Sanskrit Roots पर पुस्तक। वर्ष 1827 में यह बर्लिन से पेरिस चले गए। यहाँ पर University College of London में Oriental Language के अध्यक्ष पद पर आमन्त्रित किए गए।

यहाँ पर इनको संस्कृत पाण्डुलिपियों की समृद्ध सम्पदा के अध्ययन का सुन्दर अवसर मिला और इस प्रकार संस्कृत विद्या के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन में पूरी लगन के साथ संलग्न हो गए। इसी समय यह ऋग्वेद के मूलपाठ के सम्पादन के साथ ही लैटिन भाषा में इसके अनुवाद कार्य में संलग्न हो गए। इसी क्रम में इन्होंने अनुभव किया कि संस्कृत भाषा एवं साहित्य के स्वरूप एवं प्रवृत्ति का वास्तविक अध्ययन इसके मूलाधार एवं सर्वप्राचीन ग्रन्थ वेदों के अध्ययन के बिना सम्भव नहीं है। वेदाध्ययन अनिवार्य है और इस तरह इन्होंने ऋग्वेद के सम्पादन तथा अनुवाद का सत्संकल्प किया। वर्ष 1830 में Rigveda Specimen के रूप में अपनी योजना व्यक्त की तथा इसके 7 सूक्तों को प्रकाशित किया। सायणभाष्य को अपना आधार बनाया तथा कठिन दुर्बोध शब्दों के अर्थबोध में आचार्य यास्क के निर्वचन निरुक्त तथा पाणिनि व्याकरण को उपयोगी माना। प्रारम्भिक वैदिककाल के जीवन तथा धर्म पर यह महत्त्वपूर्ण लेखन कार्य करना चाहते थे, पर इनका मन्तव्य पूर्ण नहीं

हो सका और वर्ष1837 में असमय में ही इनका निधन हो गया और इस तरह संस्कृत विद्या के क्षेत्र में इस मनीषी विद्वान् द्वारा संकल्पित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य पूर्णता को न प्राप्त कर सका।

प्रो0 फ्रेडरिक मैक्समूलर (Freidrich Max Muller) (6.12.1823-28.10.1900)

भारतीय वाङ्मय के अनेकानेक बहुल ग्रन्थरत्नों को प्रकाश में ले आने वाले तथा भारतीय प्रज्ञा के प्रकाश को पश्चिमी देशों में प्रसारित करने वाले विद्वानों में जर्मनदेशीय विद्वान् फ्रेडरिक मैक्समूलर का स्थान अग्रगण्य उल्लेखनीय एवं सर्वोपरि है। भारतीय वाङ्मय का ही नहीं, अपितु विश्व वाङ्मय के सर्वप्राचीन हीरक ग्रन्थ ऋग्वेद के पूर्णरूप में प्रथमतः प्रकाशन का गौरव इसी वेदमनीषी को है। वर्ष 1849 से 73 तक 24 वर्षों में सायणभाष्य सहित 6 भागों में इस महत्तम ग्रन्थ को प्रकाशित करने का श्रेय इसी विद्वान को है। इनके पूर्व डॉ0 फ्रेडरिक रोजेन द्वारा सम्पादित एवं लैटिन भाषा में अनूदित इसके प्रथम भाग का प्रकाशन उनके देहावसान के एक वर्ष पश्चात् वर्ष 1838 में हुआ था, पर यह सुव्यवस्थित तथा पूर्ण नहीं था। इसके साथ ही प्राच्य ग्रन्थमाला Sacred Books of the East के अन्तर्गत 51 जिल्दों में इन्होंने भारतीय वाङ्मय के बहुविधा के ग्रन्थों को प्रकाशित करके वास्तव में स्वयं अपने को गौरवान्वित तथा अमर बना लिया तथा इस प्रकार सनातन भारतीय संस्कृति की अत्यन्त बहुमूल्य ग्रन्थ सम्पत्ति को संरक्षित करके भारत देश को अपना ऋणी भी बना लिया। फलस्वरूप भट्ट मोक्षमूलर इस सम्माननीय अभिधान से यह सुप्रख्यात हो गए। इन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के सम्पादन एवं प्रकाशन के साथ ही इन्होंने अपने मौलिक ग्रन्थों के द्वारा भी भारतीय विद्या के स्वरूप को प्रकाशित किया। प्रमुख ग्रन्थ हैं—

History of Ancient Sanskrit Literature.

Six Systems of Indian Philosophy.

The Vedas, India : What it ean teach us.

मैक्समूलर का जन्म जर्मनी में 6 दिसम्बर 1823 को हुआ, इसके पिता Wilhelm Max Muller एक सुप्रख्यात कवि थे। इस तरह वैदुष्य विद्या इनको विरासत में मिली थी। यह अत्यन्त प्रतिभाशाली मेधावी थे। पश्चिमदेशीय संस्कृत विद्वानों में इनका प्रमुख स्थान है।

प्रारम्भिक शिक्षा के अनन्तर उच्चशिक्षा हेतु यह लाइप्त्सिंग Leipzig चले गए और वहाँ से बर्लिन। यहाँ पर विश्वविद्यालय में प्रथमतः नवसृजित संस्कृत प्रोफेसर पीठ पर हरमैन बोखोस Hermann Broekhaus आसीन थे। यहीं पर मैक्समूलर सुप्रख्यात भाषा वैज्ञानिक प्रो0 फ्रान्त्स बाप (Franz Bopp (1791-1867) तथा सुप्रसिद्ध दार्शनिक शेलिंग Schelling के सम्पर्क में आए और इन दोनों उद्भट विद्वानों से यह बहुत ही प्रभावित

अनुप्राणित हुए। इनका मानसिक और बौद्धिक उन्नयन हुआ। यहाँ से 23 वर्ष की आयु में यह पेरिस चले गये तथा जेन्दा अवेत्सा तथा वेद विद्या के मूर्धन्य विद्वान् ई0 बरनूफ Eugen Burnouf का शिष्यत्व ग्रहण किए। प्रो0 बारनूफ के संरक्षण में वेदाध्ययन का सुयोग मिला। यहीं पर इनके समकालीन सहपाठियों में रुडाल्फ रॉथ तथा थ्यूडोर गोल्डस्टूकर प्रमुख थे। जिन्होंने आगे चलकर सुप्रख्यात आचार्य बनने का गौरव प्राप्त किया।

यहाँ पेरिस से यह इंगलैण्ड चले गये और आक्सफोर्ड को अपना कर्मक्षेत्र बनाया। यहीं पर लगभग 50 वर्षों तक अपने जीवन काल को संस्कृत विद्या के अध्ययन, अध्यापन तथा लेखन कार्य के प्रति पूर्णतः समर्पित कर दिया और इस तरह प्राच्य विद्या Wisdom of East का प्रकाश व्यापक रूप में प्रसारित किया। अपने गहन अध्ययन और लेखन कार्य में इन्होंने तुलनात्मक भाषा विज्ञान, धर्म तथा पुरातत्त्व को भी आधार बनाया। इस तरह ग्रन्थ सम्पादन, अनुवाद, मौलिक लेखन तथा प्रकाशन के रूप में मैक्समूलर महोदय का यूरोपीय पाश्चात्य विद्वानों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वेदाध्ययन

मैक्समूलर महोदय अपने अध्ययनकाल (1846-47) में College de France में प्रो0 ई0 बरनूफ़ के व्याख्यानों को बहुत ही ध्यान से सुनते थे। इनसे यह बहुत ही प्रभावित हुए और वेदाध्ययन के प्रति विशेष अभिरुचि इनमें जागृत हुई। अध्ययन के प्रति उत्कट इच्छा और उत्साह हुआ। इस समय यह भारतीय विद्याओं के बहुत ही नवयुवा गम्भीर अध्येता थे। भारतीय विद्याओं की उत्कृष्टता का इनको बोध हुआ और इनको प्रकाशित करने का सत्संकल्प किया। इस प्रयोजन की सम्पूर्ति हेतु कठिन परिश्रम किया। पूरा ध्यान और कर्म इस ओर केन्द्रित किया।

ऋग्वेद का प्रकाशन

ऋग्वेद सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय का सर्वप्राचीन प्रथम ग्रन्थ है। यह श्रुतिपरम्परा में पूरी तरह सुरक्षित चला आ रहा था तथा इसकी हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ विद्यमान थीं तथा फ्रेञ्च जर्मन लैटिन में इसके कुछ अनुवाद भी हो चुके थे। इस महनीय ग्रन्थ का प्रकाशन मैक्समूलर महोदय का अनिवार्य एवं प्रथम संकल्प था, इनसे पूर्व डॉ0 फ्रेडरिक रोजेन द्वारा लैटिन भाषा में अनूदित सम्पादित इसका प्रथम भाग वर्ष 1838 में प्रकाशित था,पर सुव्यवस्थित नहीं था और अपूर्ण भी।

मैक्समूलर महोदय आचार्य सायण की विचारधारा से बहुत ही प्रभावित थे। आचार्य के प्रति इनमें विशेष श्रद्धाभाव था। अतः सायणभाष्य सहित सम्पूर्ण ऋग्वेद के प्रकाशन की अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी महती योजना संकल्पित की। प्रथमतः प्रमुख कार्य था इसकी हस्तलिखित

पाण्डुलिपियों का संग्रह करना। साथ ही आचार्य द्वारा अपने भाष्य में अनेकानेक शास्त्रों एवं ग्रन्थों से लिए गए उद्धरणों की सम्पुष्टि, सम्परीक्षण करना, सभी सन्दर्भों को देना आवश्यक है। अतः सबकी अनुक्रमणी बनाना अनिवार्य है। उपलब्ध पाण्डुलिपियाँ भी पूर्ण-अपूर्ण-खण्डित, शुद्ध-अशुद्ध भी थी। इन सभी की प्रतिलिपि करना, इत्यादि बहुत सरल कार्य नहीं था। पर वे अपने सत्संकल्पित कार्य की सम्पूर्ति हेतु दृढ़निश्चयी रहे। सम्पादन कार्य धीरे-धीरे व्यवधानों के बीच चलता रहा। कभी-कभी इनको निराशा भी होने लगी कि इतना बृहत्कार्य कैसे पूरा हो पावेगा और यह भी अति गम्भीर समस्या थी कि संस्कृत भाषा में लिखित 6000 पृष्ठात्मक बृहदाकार इस ग्रन्थ का प्रकाशन कैसे होगा?

फिर भी सत्संकल्पधनी दृढ़ निश्चयी वेदानुरागी इस अनुपम व्यक्तित्व ने सम्पादन कार्य पूर्ण कर लिया। इसके प्रकाशनार्थ प्रभूत विपुल धनराशि अपेक्षित थी, पर कोई भी संस्था एतदर्थ समुद्यत नहीं हुई। ऐसी विषम परिस्थिति में इनके कार्य के प्रशंसक उत्साहवर्द्धक चिन्तक मित्र प्रो० एच०एच० विल्सन तथा बारोन वनुसन सहर्ष आगे आए और इनके अनुरोध पर महारानी विक्टोरिया के निर्देशन से भारत स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी प्रकाशन के व्ययभार वहन हेतु तैयार हुई।

वस्तुतः उस समय यहाँ भारत में ऐसी स्थिति चल रही थी कि विदेशी अंग्रेज लोग केवल भारतदेश का आर्थिक शोषण ही कर रहे हैं, कुछ दे नहीं रहे हैं। इस धारणा की कुछ निवृत्ति के लिए ही सही, यह कम्पनी प्रकाशनार्थ धन देने के लिए राजी हो गई।

यह प्रदर्शन करने के लिए कि अंग्रेज भारत का केवल आर्थिक शोषण ही नहीं कर रहे हैं, अपितु शिक्षा एवं संस्कृति के प्रश्रय हेतु उदारतापूर्वक धन भी प्रदान कर रहे हैं। जैसा कि धनस्वीकृति के पत्र में उल्लेख है—

.........is in a peculiar manner deserving of the patronage of the East India Company connected as it is with the early religion, history and language of the great body of their Indian subject.

फलस्वरूप सायणभाष्यसहित सम्पूर्ण ऋग्वेद का यह प्रथम संस्करण 6 भागों में प्रकाश में आ पाया। प्रथम भाग वर्ष 1849 में तथा अन्तिम छठाँ भाग वर्ष 1873 में।

द्वितीय भाग 1853, तृतीय 1856, चतुर्थ 1862, पञ्चम भाग- इस प्रकार विश्व के समक्ष सम्पूर्ण ऋग्वेद का यह संस्करण पहली बार पूर्णरूप में प्रस्तुत करने का गौरव प्रो० मैक्समूलर को मिला। इस महनीय ग्रन्थ का प्रथम भाग 1849 में जब प्रकाश में आया तब इनकी अवस्था मात्र 26 वर्ष थी।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यह ग्रन्थरत्न शीघ्र ही समाप्त हो गया। अब इसके द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की आवश्यकता हुई। पर एतदर्थ कोई भी आगे नहीं आया। तब आखेट-क्रीडा प्रेमी परम विद्यानुरागी यशस्वी महाराज विजयनगर ने इसके प्रकाशन हेतु सहर्ष 4000 पौंड से अधिक धनराशि प्रदान की तथा अपनी राजशाही कला साहित्य के संरक्षण की अपनी सदाशयता का उदात्ततम स्वरूप उजागर किया और इस तरह यह द्वितीय संस्करण 4 भागों में वर्ष 1890-92 में प्रकाश में आ गया। केवल मूलसंहिता का प्रथम संस्करण दो भागों में वर्ष 1873 तथा द्वितीय संस्करण 1877 में प्रकाश में आया।

जी. स्टीवेन्सन (G. Stevenson)

भारतदेश आकर यहाँ के वेद पण्डितों की सहायता से ऋग्वेद का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करने वालों में यह अग्रणी प्रमुख हैं। प्रथमाष्टक तृतीय अध्याय के तृतीय सूक्त तक का वह अनुवाद कलकत्ता से वर्ष 1850 में प्रकाशित हुआ।

ई. एडुअर्ड रोएर (E. Roer)

ऋग्वेद के प्रथमाष्टक दो अध्यायों का अंग्रेजी में अनुवाद इन्होंने प्रस्तुत किया है।

एस.ए. लांगलोइस (S.A. Longlois)

यह फ्रांसीसी विद्वान् हैं। इन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेद का फ्रांसीसी में अनुवाद किया है जो पेरिस से वर्ष 1848-51 में चार भागों में प्रकाशित हुआ। पुनः यह सम्पूर्ण भाष्य एक भाग में वर्ष 1870 में प्रकाशित हुआ।

इनकी व्याख्या पद्धति डॉ. रोजेन से भिन्न रही। इनका प्रयोजन था ऋग्वेद के अस्पष्ट एवं रहस्यात्मक मन्त्रों की सुस्पष्ट, सरल एवं बुद्धिगम्य व्याख्या करना और अपने इस संकल्पित प्रयास में यह बहुत सफल भी हुए। फिर भी यह ऋग्वेद के मूल भाव को सुरक्षित रखने में पूर्णतया सचेत और सावधान नहीं रहे। कहीं कहीं पर यह मूल परम्परा से हटकर अधिक दूर चले गए हैं। इसीलिए मैक्समूलर ने इस अनुवाद को पूर्णतः काल्पनिक तथा व्यक्तिगत रुचि के अनुसार किया गया बतलाया है। इसका मुख्य कारण यही था कि इन्होंने पाण्डुलिपियों के आधार पर ऋग्वेद का यह अनुवाद प्रस्तुत किया है।

उस समय तक ऋग्वेद का कोई भी प्रामाणिक संस्करण प्रकाश में नहीं आ पाया था, फिर भी हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के आधार पर अनुवाद करने के लिए यह अत्यन्त प्रशंसनीय है। वस्तुतः डॉ. रोजेन से लेकर लांगलोइस तक जो भी अनुवाद कार्य हुआ है। वह भारतीय वेद-पण्डितों की श्रुति परम्परा तथा पाण्डुलिपियों के रूप में स्थित सायणभाष्य पर आधारित वेदविषयक ज्ञान था।

थ्यूडोर बेनफे (Theodor Benfey) : 1809-81

यह प्रो० रुडाल्फ रॉथ की विचारधारा के अनुयायी हैं, इसलिए उन्हीं की व्याख्यापद्धति का अनुसरण किया। ऋग्वेद- प्रथम मण्डल के 130 सूक्तों का जर्मन भाषा

में अनुवाद किया जो वर्ष 1862-64 में लाइप्त्सिंग (Leipzig) से प्रकाशित हुआ। वेदव्याख्या के लिए इन्होंने तुलनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति को उपयोगी माना तथा भारतीय परम्परा को अविच्छिन्न नहीं माना, जिसके कारण व्याख्या में भ्रान्तियाँ हुई।

हेरमान ग्रासमान (Hermann Grassmann) : 1809-77

प्रो० रुडाल्फरॉथ के प्रिय शिष्य हैं अतः उन्हीं की विचारधारा के अनुयायी हैं। विशिष्ट गणितज्ञ यह वेदानुरागी हैं, वह जर्मनदेशीय हैं। ऋग्वेद का इन्होंने जर्मन भाषा में पद्यानुवाद किया जो दो भागों में वर्ष 1876-77 में प्रकाशित हुआ। मूल उद्धरणपूर्व ऋग्वेद का शब्दार्थ निर्णय हेतु कोश इन्होंने तैयार किया जो 1873-75 में प्रकाशित हुआ। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में इन्होंने ध्वनिनियम बनाया जो इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है तथा ग्रिमनियम का पूरक है।

अल्फ्रेड लुडविग (Afred Ludwig) : 1832-1911

जर्मन देशवासी यह प्राग विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक थे। यह प्रो० रुडाल्फरॉथ के अनुगामी हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद का इन्होंने जर्मन भाषा में अनुवाद किया तथा सुविस्तृत भूमिका से इसको समृद्ध बनाया। डेर ऋग्वेद नाम से यह 6 भागों में 1876-88 में प्रकाशित हुआ।

एच.एच. विल्सन (Horace Hayman Wilson) 1786-1860

ऋग्वेद के अनुवादकों में इंगलैण्डदेशीय विद्वान् विल्सन महोदय का अत्यन्त विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेदाध्ययन एवं व्याख्या में यह आचार्य सायण को उपयोगी तथा आवश्यक मानते हैं और इस दिशा में भारतीय परम्परा को सुप्रतिष्ठित करने का श्रेय इसी विद्वान् को है। 1833 में यह ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में नियुक्त थे। भारत में इनका अधिक समय तक रहना हुआ था।

ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करने का इन्होंने पवित्र एवं बड़ा संकल्प किया। इनसे पूर्व डॉ. रोजेन, रोएर, स्टीवेंसन तथा लांगलोइस के अनुवाद अंशतः प्रकाशित था जो किसी प्रामाणिक संस्करण पर आधारित नहीं थे, अपितु हस्तलिखित पाण्डुलिपियों पर आधारित थे।

अनुवाद की दृष्टि

विल्सन महोदय की अनुवाद दृष्टि प्रशंसनीय है। ऋषियों के मूलभाव को सुरक्षित रखना तथा अनुवाद को बुद्धिगम्य सुबोध बनाना। इसीलिए इन्होंने अपने अनुवाद का आधार सायणाभाष्य को बनाया तथा इसके संघटनात्मक क्रम अष्टक-अध्याय-वर्ग को बनाए रखा इनके समकक्ष अंग्रेजी शब्द chapter part section इत्यादि नहीं।

अपने अनुवाद में आचार्य सायण का अनुमोदन समर्थन किया तथा भाषाविज्ञान की तुलनात्मक पद्धति को महत्त्व नहीं दिया और उसके खोखलेपन को भी उजागर किया। पर

इस वेदानुरागी मनीषी का 1860 में देहावसान हो गया। इस समय तक चतुर्थ भाग के केवल 144 पृष्ठ ही प्रकाशित हो पाए थे। इनके अनन्तर इनके ही उत्तराधिकारी डॉ. बैलेन्टाइन (Ballentine) ने अपूर्ण कार्य की पूर्ति का भार अंगीकार किया पर इस विद्वान् का भी देहावसान हो गया। तदनन्तर विल्सन के ही अनुयायी, गोल्डस्टुकर (Gold Stuker), ई बी कावेल (E.B. Covell) तथा डब्ल्यू एफ वेबस्टर (W.F. Welstor) ने इस अनुवाद को पूर्णता प्रदान की। इस तरह इसका अन्तिम 6ठाँ भाग 1888 में प्रकाश में आ पाया। इन सभी विद्वानों का विल्सन महोदय के प्रति आदर श्रद्धाभाव तथा वैदिक वाङ्मय के प्रति अनुराग था साथ ही भारतीय व्याख्याकारों के प्रति भी आस्था थी।

राल्फ टी.एच. ग्रिफिथ (Ralph T.H. Griffith) : 1826-1906

विल्सन महोदय के श्रेष्ठ शिष्य हैं ग्रिफिथ। सम्पूर्ण ऋग्वेद का अंग्रेजी में पद्यानुवाद प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। वर्ष 1861 से 78 तक यह काशी गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल पद पर आसीन रहे। विल्सन की तरह इनमें भी आचार्य सायण के प्रति श्रद्धाभाव था और वेदज्ञान के प्रति उनको प्रथम गुरु तथा पथप्रदर्शक मानते हैं, अतः इन्होंने अपने अनुवाद का आधार सायणभाष्य को बनाया।

अनुवाद के साथ ही मन्त्रों की यह संक्षिप्त टिप्पणी भी देते हैं। ऋग्वेद के साथ ही इन्होंने सभी वेदों पर पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। अनुवादकों में इनको मध्यम मार्गीय माना जाता है।

हरमान ओल्डेनवर्ग (Hermann Oldenberg) : 1854-1920

यह जर्मनदेशीय विद्वान् हैं। विस्तृत व्याख्या सहित इन्होंने ऋग्वेद के 130 सूक्तों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया है जो पवित्र प्राच्य ग्रन्थमाला (Sacred Books of the East) के 46वें खण्ड में वर्ष 1897 में प्रकाशित है। अनुवाद में यह विल्सन तथा ग्रिफिथ दोनों से प्रभावित हैं उनकी शब्दावलियों को ग्रहण कर लेते हैं।

कार्ल एफ गेल्डनर (Karl F. Geldner) : 1852-1929

जर्मनदेशीय यह प्रो. रुडाल्फ रॉथ के प्रमुख शिष्य हैं। इन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेद का जर्मन भाषा में गद्यानुवाद के साथ ही 70 सूक्तों का पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किया है जो वर्ष 1875 में प्रकाशित हुआ है। राथ का शिष्य होने पर भी यह विल्सन तथा ग्रिफिथ के अनुवादों से प्रभावित हो गए। इनकी दृष्टि में परिवर्तन आ गया। रॉथ महोदय का प्रभाव कम हो गया। इनकी धारणा बन गई कि ऋग्वेद पूर्णतः भारतीय मान्यताओं से ओतप्रोत कृति है। अतः इसकी व्याख्या इसी परम्परा के अनुसार होनी चाहिए। पुनः वर्ष 1908 में इन्होंने ऋग्वेद के कतिपय सूक्तों का स्वतन्त्र रूप में जर्मन भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया।

इस प्रकार ऋग्वेद शाकल संहिता के प्रकाशन तथा अनुवाद में पाश्चात्य विद्वानों का अत्यन्त विशिष्ट महत्त्वपूर्ण योगदान है।

सं. ऋ.

॥१॥ ॐ नमः श्रीगणेशाय॥ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं। होतारं रत्नधात
मं॥ अग्निः पूर्वेभिरृषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति॥ अग्निना रयिमश्नव
त्पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमं॥ अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति॥ अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरा ग
मत्॥१॥ यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥ उप त्वाग्ने दि
वेदिवे दोषावस्तर्धिया वयं। नमो भरन्त एमसि॥ राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदि
विं। वर्धमानं स्वे दमे॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥ ॐ
॥२॥ वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवं॥ वाय उक्थेभिर्ज

नो

॥१॥

: ऋ

तृतीयाध्याय

ऋग्वेद की बाष्कल-संहिता का स्वरूप

तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥

–ऋ. बाष्कल १०.१९२.१५

संज्ञानमुशना वदत्संज्ञानं वरुणो वदत्।
संज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च संज्ञानं सविता वदत्॥
संज्ञानं नः स्वेभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम्॥

(बाष्कल १०.१९२.१-२)

आचार्य बाष्कल का ऋषित्व

वेद के ऋषियों में आचार्य बाष्कल का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ऋग्वेदीय ऋषि हैं तथा एक शाखा के प्रवर्तक हैं और यह शाखा इन्हीं के नाम से सुप्रख्यात **बाष्कलसंहिता** है। व्याकरण महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि द्वारा 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' ऋग्वेद की उल्लिखित 21 शाखाओं के अन्तर्गत बाष्कल की गणना की गई है, यद्यपि महाभाष्यकार ने केवल शाखाओं की संख्या 'एकविंशतिधा' कहा है, इन शाखाओं का नामोल्लेख नहीं। पर 13वीं शताब्दी के महर्षि शौनक ने अपने चरणव्यूह नामक लघुग्रन्थ में ऋग्वेद की 5 शाखाओं का नाम ग्रहणपूर्वक उल्लेख किया है[1]—

आश्वलायनी, शाङ्खायनी, शाकला, बाष्कला तथा माण्डूकायनी

इन 5 शाखाओं के अन्तर्गत बाष्कल भी परिगृहीत है। अपने प्रवर्तक ऋषि के नाम से यह संहिता प्रसिद्ध है यही हैं आचार्य बाष्कल। सम्प्रति यह बाष्कल संहिता उपलब्ध नहीं है, फिर भी यत्र तत्र उल्लिखित सन्दर्भों के आधार पर इसके स्वरूप का बहुत कुछ प्रकाशन होता है। ऋग्वेदीय इस शाखा के प्रवचनकर्ता ऋषि बाफल हैं और इन्हीं के नाम से यह संहिता प्रसिद्ध है।

वेदनिधिरक्षण की मौखिकी श्रुति परम्परा के कारण आचार्य, स्थान तथा उच्चारण भेद से मूल रूप में विद्यमान एक ही वेद की असंख्य शाखाएँ हो गईं। पुराणों के अनुसार महर्षि कृष्णद्वैपायन ने अत्यन्त विपुल विशाल एक ही ज्ञाननिधि वेद का ऋक्-यजुष्-सामन्-अथर्व रूप में चतुर्धा विभाजन करके चार संहिताएँ बनाई और इनको पैल-वैशम्पायन-जैमिनि-सुमन्तु नामक अपने चार शिष्यों को प्रदान किया। इन मेधावी व्युत्पन्न शिष्यों ने श्रीगुरुमुख से गृहीत इन संहिताओं को अपने-अपने शिष्यों को पढ़ाया। इस तरह गुरु व्यासदेव से ऋक्संहिता को ग्रहण करने वाले प्रथम शिष्य पैल हैं। इन्हीं पैलगुरु के शिष्य हैं बाष्कल। विष्णु 3.14.16-26; वायु 1.60.24-32; 63.33; 61.14; ब्रह्माण्ड 34.24-31; 35.1.7; भागवत 12.6.54-59। पुराणों द्वारा प्रस्तुत गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार गुरुपैल के साक्षात् शिष्य दो हैं—

1. इन्द्रप्रमिति तथा 2. बाष्कल। पुनः बाष्कल ने स्वगुरुदेव से प्राप्त इस ऋक्संहिता को अपने 4 शिष्यों को पढ़ाया—

1. बोध्य 2. अग्निमाठर 3. पराशर तथा 4. जातूकर्ण्य।

---

11. एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शांखायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति।। चरणव्यूह 1.7; 8

विष्णुपुराण (3.4.16-17) में बाष्कल का श्रीगुरुदेव पैल से प्राप्त ऋक्संहिता के प्रवचनकर्त्ता के रूप में सुस्पष्ट उल्लेख है। यहाँ पर बाष्कल का बाष्कलि नाम से कथन है। ब्रह्माण्डपुराण बाष्कल को ऋषिरूप में उल्लेख करता है।[2] जिन्होंने श्रीगुरुदेव से प्राप्त ऋक्संहिता की 4 संहिताएँ बनाकर अपने चार शिष्यों को पढ़ाया। पं० भगवद्दत्त ने याज्ञवल्क्य के स्थान पर जातूकर्ण्य को स्थापित किया है जातूकर्ण्यमथापराम्।[3]

इस तरह गुरु-शिष्यपरम्परा में बाष्कल गुरु के साक्षात् शिष्य चार हुए— 1. बौध्य 2. अग्निमाठर 3. पराशर तथा 4. जातूकर्ण्य।

श्रीमद्भागवत में बाष्कल की शाखा-प्रवर्त्तक ऋषि रूप में स्वीकृति है। गुरुपैल ने अपनी ऋक्संहिता को अपने दो शिष्यों को प्रवचन द्वारा प्रदान किया—

1. इन्द्रप्रमिति तथा 2. बाष्कल।

इस इन्द्रप्रमिति के शिष्य हुए माण्डूकेय तथा बाष्कल के चार शिष्य हुए।[4] इन चारों शिष्यों में अन्यत्र गृहीत जातूकर्ण्य के स्थान पर यहाँ अग्निमित्र को ग्रहण किया गया है।

आश्वलायनगृह्यसूत्र में ऋषितर्पण के प्रकरण में 23 ऋषियों का नामग्रहणपूर्वक उल्लेख हुआ है, इनमें बाष्कल ऋषि रूप में परिगणित है।[5]

आचार्य आश्वलायन इस गृह्यसूत्र के प्रणेता हैं और ऋषि तर्पण में स्वयं वह भी सम्मिलित हैं।

महर्षि शौनक अपने चरणव्यूह में नाम ग्रहणपूर्वक ऋग्वेद की 5 शाखाओं का उल्लेख करते हैं—

---

2. चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलो द्विजसत्तमः।
 शिष्यानध्यापयामास शुश्रूणाभिस्तान् हितान्।।
 बौध्यं तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम्।
 पराशरीं तृतीयां तु याज्ञवल्क्यमथापराम्।। ब्रह्माण्ड पूर्वभाग 34.26; 27
3. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ० 167
4. पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः।
 बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम्।।
 चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव।
 पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान्।।
 अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम्।। भागवत् 12.4.54-56
5. सुमन्तु जैमिनि वैशम्पायन पैल-माण्डूके-सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयं शाकलं-बाष्कलं-शौनकमाश्वलायनं.... ये चान्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यन्तु। आ.गृ.सू. 3.4.4

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।

आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति॥ 1.7,8

इन शाखाओं की प्रसिद्धि इनके प्रवचनकर्ता आचार्यों के नाम से है। इस प्रकार गुरु पैल के साक्षात् शिष्य पाँच होते हैं—

1. आश्वलायन 2. शाङ्खायन 3. शाकल 4. बाष्कल तथा 5. माण्डूकायन।

श्रीगुरुदेव पैल के इन पाँच शिष्यों में बाष्कल परिगृहीत हैं। चरणव्यूह के भाष्यकार आचार्य महिदास सुस्पष्ट करते हैं कि गुरु पैल से ऋक्संहिता को प्रथमतः शाकल ने ग्रहण किया, तदनन्तर शाङ्खायन, आश्वलायन, माण्डूकायन तथा बाष्कल ने प्राप्त की। आचार्य महिदास के अनुसार गुरु पैल के साक्षात् शिष्य पाँच हैं और उन्हीं में बाष्कल भी हैं। वे सभी पाँचों शिष्य एक वेदित् ऋग्वेदीय हैं।[6]

यहाँ पर गुरुपैल के 5 साक्षात् शिष्यों का कथन है, पर पुराणों में इनके केवल दो ही शिष्यों का कथन है- 1. इन्द्रप्रमिति तथा 2. बाष्कल।

शां. गृ. सू. में बूहलर Buhler का कथन है कि—

It is well known that

> तच्छंयोरा वृणीमहे
> is the last verse in the Baskala-Samhita which was adopted by the Samkhayana school.
> SBE Vol. XXIXp#1, p 13

यहाँ पर इस 15 मन्त्रात्मक संज्ञान सूक्त को बाष्कलसंहिता के साथ ही शांखायन का अन्तिम मन्त्र माना गया है। इसी आधार पर पं० भगवद्दत्त का कथन है कि—

'शांखायनों की अपनी संहिता है और यह सूक्त उसका भी अन्तिम सूक्त होगा, परन्तु यह निश्चित है कि शांखायनों की संहिता अपनी ही थी।[7]

व्याडिमुनिकृत विकृतिवल्ली की टीका में भट्टाचार्य गदाधर आचार्य शाकल की शिष्य परम्परा का उल्लेख करते हैं—

---

6. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ० 170
7. ऋचांसमूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः।
   पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम्।।
   शाङ्खयाश्वलायनौ चैव माण्डूका बाष्कलास्तथा।
   बहवृचः ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः।। चरणव्यूहभाष्य, पृ० 23, 24

शाकलस्य शतं शिष्याः......

पञ्चैते शाकलाः शिष्याः शाखाभेदप्रवर्त्तकाः।

आचार्य शाकल के सौ शिष्यों में पाँच शाखाप्रवर्त्तक हैं, इनमें बाष्कल भी परिगणित हैं। यहाँ पर गुरु शाकल के शाखा प्रवर्त्तक शिष्यों में बाष्कल, शांखायन तथा आश्वलायन का उल्लेख है। इस विवरण के अनुसार बाष्कल आचार्य शाकल के शिष्य हैं, जबकि चरणव्यूह में ये सभी पाँचों गुरु पैल के शिष्य हैं और सभी एक वैदिक गुरु भाई हैं, यद्यपि इनमें शाकल प्रधान प्रथम हैं। गुरु पैल से इन्होंने ही प्रथमतः ऋक् संहिता प्राप्त की थी और इनके अनन्तर अन्य चार शिष्यों को इसकी प्राप्ति हुई। पुराणों में भी बाष्कल को गुरुपैल का साक्षात् शिष्य कहा गया है।

इस प्रकार आचार्य बाष्कल का ऋषित्व सिद्ध ही है, यह ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक हैं जो इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है, यह संहिता सम्प्रति उपलब्ध नहीं है, पर अन्यत्र स्थित सन्दर्भों के आधार पर इसके बहुत कुछ स्वरूप का प्रकाशन होता है। इस शाखा का केवल बाष्कल मन्त्रोपनिषद् सम्प्रति उपलब्ध है।

बाष्कलसंहिता विषयक सन्दर्भ

ऋग्वेद की यह बाष्कलसंहिता सम्प्रति उपलब्ध नहीं है, पर यत्र तत्र उल्लिखित सन्दर्भों के आधार पर इसके स्वरूप का बहुत कुछ प्रकाशन हो जाता है। इस शाखा का केवल एक उपनिषद् बाष्कल मन्त्रोपनिषद् सम्प्रति उपलब्ध है। भगवान् पतञ्जलि ने अपने व्याकरणमहाभाष्य में 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' रूप से ऋग्वेद को 21 शाखाओं से संवलित विभूषित बतलाया है, इसका यही अभिप्राय है कि ई0पू0 द्वितीय शताब्दी में इस वेद की 21 शाखाएँ रहीं होगी। महाभाष्यकार यहाँ पर ऋग्वेद की शाखा संख्या का उल्लेख करते हैं, इनके नाम का नहीं। महर्षि शौनक अपने चरणव्यूह में नामग्रहणपूर्वक ऋग्वेद की 5 शाखाओं का उल्लेख करते हैं—

एतेषां शाखाः पञ्च विधा भवन्ति।

आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति॥1.7; 8

इन शाखाओं का नामग्रहणपूर्वक उल्लेख होने से यह सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि इनके समय में इस वेद की 21 शाखाओं में से 5 सुरक्षित रही होगी। चरणव्यूह के भाष्यकार आचार्य महिदास उल्लेख करते हैं कि कृष्णद्वैपायन व्यास ने ऋक्संहिता को पैल को प्रदान किया और इन्होंने प्रवचन द्वारा शाकल शाङ्खायन, आश्वलायन, माण्डूकायन तथा बाष्कल को प्रदान किया। यही आचार्य शाखा-प्रवर्त्तक हो गए और इस तरह एक ही ऋग्वेद की 5 शाखाएँ संहिताएँ हो गईं। जो इन्हीं के नाम से सुप्रख्यात हुईं। इस प्रकार

बाष्कल संहिता का बोध होता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में ऋक्संहिता के अन्तिम मन्त्र का उल्लेख है इससे पृथक् पृथक् दो शाखाओं संहिताओं का बोध होता है।

समानी व आकूतिरित्येका। 3.5.8

तच्छंयोरा वृणीमह इत्येका। 3.5.9

कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र सं. 27 पर बाष्कलशाखीय संहिता तथा ब्राह्मण का उल्लेख है।

इस प्रकार ऋग्वेद की शाखारूप में बाष्कलसंहिता का यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। इस गृह्यसूत्र के भाष्यकार हरिदास ने इसी आधार पर माना है—

'समानी व इति शाकलस्य समाम्नायस्यान्त्या, तदध्यायिनामेषा

तच्छंयोरिति बाष्कलस्य तदध्यायिनामेषा।' 3.5.8,9

गृह्यसूत्र के अन्त में स्थित इन्हीं मन्त्रप्रतीकों के आधार पर वृत्तिकार नारायण शाकल संहिता की समाप्ति 'समानी व' से तथा बाष्कल की समाप्ति तच्छंयो मन्त्र से मानते हैं।

शाकलसमाम्नायस्य बाष्कलसमाम्नायस्य चेदमेव सूत्रं गृह्यं चैत्यध्येतृप्रसिद्धम्। तत्र शाकलानां समानी व आकूतिरित्येषा भवति संहितान्त्यत्वात्। बाष्कलानां तु तच्छंयोरा वृणीमहे इत्येषा भवति संहितान्त्यत्वात्।

इस प्रकार आश्वलायन गृह्यसूत्र में स्थित मन्त्रप्रतीकों से ऋग्वेद की शाकल तथा बाष्कल दो संहिताओं का सुस्पष्ट बोध होता है, पर यहाँ पर अन्य संहिताओं का उल्लेख नहीं किया गया है और यह गृ.सू. तो आश्वलायनशाखीय है। शाकलसंहिता की समाप्ति संज्ञान सूक्त से होती है। इसमें 4 मन्त्र हैं। इस सूक्त के अनन्तर एक अतिरिक्त संज्ञानसूक्त है इसमें 15 मन्त्र हैं और बाष्कल संहिता की समाप्ति इसी अतिरिक्त संज्ञानसूक्त से होती है। इससे बाष्कल संहिता के स्वरूप का बोध होता है। समाप्ति पर इसमें दो संज्ञान सूक्त 4+15- 19 मन्त्र हैं। इसी आधार पर पं. भगवद्दत्त प्रतिपादित करते हैं कि—

अतः बाष्कलों का अन्तिम सूक्त संज्ञानसूक्त है। शांखायनगृह्यसूक्त 4.5 का भी यही मत है। इससे ज्ञात होता है कि शांखायन संहिता का अन्त भी संज्ञानसूक्त के साथ होता है। इस विषय में बाष्कलों और शांखायनों का अधिक मेल है। वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ0 169

आश्वलायनश्रौतसूत्रभाष्य में शाकल तथा बाष्कल दो आम्नायों का उल्लेख है—

''शाकलस्य बाष्कलस्य चाम्नायद्वयस्यैतदाश्वलायनसूत्रं नाम प्रयोगशास्त्रमित्यध्येतृप्रसिद्धं सम्बन्धविशेषं द्योतयति''

यहाँ पर आश्वलायन श्रौतसूत्र को शाकल तथा बाष्कल दोनों आम्नायों का प्रयोगशास्त्र कहा गया है पर इस सूत्र ने स्वयं अपनी शाखा संहिता आश्वलायन का उल्लेख नहीं किया है। इसका यही अभिप्राय है कि शाकल तथा बाष्कल संहिताओं का अपना श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र नहीं है, उनके श्रौतविधान गृह्यकर्म इसी आश्व.श्रौ.सू. के अनुसार सम्पन्न होते हैं। अपनी शाखा का तो यह निरूपण करते ही हैं, पर संहिता नहीं है, उस समय संहिता अवश्य रही होगी।

महर्षि कात्यायनकृत **ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी** के भाष्य में षड्गुरुशिष्य ऋग्वेद की दो शाखाओं का उल्लेख करते हैं—

शाकलस्य संहितैका। बाष्कलस्य तत्रापरा
द्वे संहिते समाश्रित्य ब्राह्मणान्येकविंशतिः।
ऐतरेयकमाश्रित्य तदेवान्यैः प्रपूरन्।

शाकल तथा बाष्कल संहिताओं का आश्रय लेकर तथा ऐतरेय ब्राह्मण का आश्रय लेकर और शेष 20 ब्राह्मणों से इसकी पूर्ति करके यह आश्वलायनकल्प बना है। यहाँ पर बाष्कल संहिता का सुस्पष्ट उल्लेख है। इसका यही अभिप्राय है कि अनुक्रमणीकार कात्यायन के समय यह संहिता बाष्कल अवश्य रही होगी। शुक्लयजु. प्रतिज्ञासूत्र 8 अनन्तभाष्य में 'बाष्कलादिब्राह्मणानां तानरूपैकस्वरम्' अर्थात् बाष्कल आदि ब्राह्मणों का तानरूप एक स्वर होता है। इसके अनुसार बाष्कल की संहिता के साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थ की भी सत्ता थी।

आचार्य शौनक कृत **अनुवाकानुक्रमणी** के अनुसार बाष्कलसंहिता के स्वरूप का सुष्ठु प्रकाशन हो रहा है। आचार्य सुस्पष्ट रूप से उल्लेख करते हैं बाष्कल संहिता में शाकल से 8 सूक्त अधिक हैं—

एतत्सहस्रं दश सप्त चैवाष्टावतो बाष्कलेऽधिकानि।
तान्पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टानखिलेषु विप्राः॥36॥

यहाँ पर आचार्य ने ऋग्वेद की शाकल तथा बाष्कल दो संहिताओं का नामग्रहणपूर्वक उल्लेख किया है। इस तरह इन दोनों ही संहिताओं के स्वरूप का सुष्ठु प्रकाशन हो रहा है। शाकल में कुल 1017 सूक्त हैं और बाष्कल में इससे 8 अधिक 1017+8= 1025 सूक्त हो जाते हैं। आठ अधिक इन सूक्तों में बाष्कल के अन्त में स्थित 15 ऋचाओं वाला एक संज्ञानसूक्त है तथा सुप्रख्यात 11 वालखिल्य सूक्तों में से प्रथम 7 सूक्तों को ग्रहण कर लिया गया है और इनको अष्टम मण्डल में सम्मिलित किया गया

है। इस तरह इस मण्डल में 92+7=99 सूक्त हो जाते हैं और अन्तिम दशममण्डल में 191+1=192 सूक्त।

वेदसंहिताओं के स्वरूपप्रकाशन में महर्षि शौनक प्रोक्त चरणव्यूह का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत विमल ज्ञानराशि वेद अत्यन्त विपुल विशाल है। इस राशि के चतुर्धा विभाग की संज्ञा चरण है और इन चारों चरणों का समुदाय ही है चरणव्यूह—

चरणव्यूहः वेदराशेश्चतुर्विभागाच्चरण उच्यते।

तस्य व्यूहः समुदायः चतुर्वेदानां समुदायः॥ महिदास उपोद्घात।

पञ्चखण्डात्मक इस ग्रन्थ में सभी चारों वेदों की शाखाओं का सुविशद निरूपण है। महर्षि शौनक नामग्रहणपूर्वक ऋग्वेद की पाँच संहिताओं का उल्लेख करते हैं—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।

आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति। 4.7.8

तथा **'तेषामध्ययनम्' 1-9 तेषामाश्वलायनीयादिशाखानां समानाध्ययनं सूचयति** द्वारा सभी पाँचों शाखाओं के अध्ययन की सूचना प्रदान करते हैं अर्थात् सभी संहिताओं का अध्ययन प्रचलन में था। सभी का पारायण होता था।

अध्यायाश्च चतुष्षष्टिर्मण्डलानि दशैव तु। 1.10

'अग्निमीळे—अयं देवाय इत्यादि 64 अध्याय तथा 10 मण्डल इसका परिमाण है। आचार्य महिदास सुस्पष्ट रूप से उल्लेख करते हैं कि अन्तिम संज्ञान सूक्त 'संसमित्' से शाकलसंहिता की समाप्ति हो जाती है और इसके अनन्तर 15 मन्त्रों का एक अन्य संज्ञानसूक्त है इसी से बाष्कल संहिता की परिसमाप्ति होती है—

'अन्ते सं समित्' (अष्ट अ. 8 वर्ग 49) सूक्तानन्तरं पञ्चदश ऋचात्मकं 'सञ्ज्ञानमुशनावदत्' इत्यादि

'तच्छंय्योरा वृणीमह इत्यन्तं वेदसमाप्तिरिति बाष्कलशाखाध्ययनम्'

पृ0 26

तथा शाकल से बाष्कल में 8 सूक्त अधिक हैं—

'सूक्तसहस्रसप्तदशाधिकात् अष्टौसूक्तानि बाष्कलस्याधिकानीत्यर्थः'

पृ0 26

साथ ही आचार्य महिदास यह भी उल्लेख करते हैं कि इस बाष्कलसंहिता में

परिगृहीत सुप्रख्यात एकादश बालखिल्य सूक्तों में से अन्तिम चार का लोप है—

'प्रति ते (अष्ट अ. 4 वर्ग 27), युवं देवाः (अष्ट. 6 अ. 4 वर्ग 28) यमत्विजो (अष्ट 6 अ. 4 वर्ग 29), इमानि वाम् (अष्ट 6 अ. 4 वर्ग 30) इति चत्वारि वालखिल्यसूक्तानां लोप इत्यर्थः। पृ0 26

इस बाष्कलसंहिता की समाप्ति होती है अतिरिक्त संज्ञानसूक्त के इस मन्त्र से—

तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥10.192.15

इसकी सम्पुष्टि में आश्वलायन गृह्यसूत्र प्रमाण है।[8] शाकलसंहिता की समाप्ति समानी व आकूतिरित्येका 3.5.8 तथा बाष्कल की 'तच्छंयोरा वृणीमह इत्येका' 3.5.9 मन्त्र से होती है।

इस प्रकार शाकलसंहिता की समाप्ति दशम मण्डल के सूक्त क्रमाङ्क 191 के चतुर्थ मन्त्र से होती है। 64 अध्यायों वाली इस चतुष्षष्ठि संहिता के 64वें अन्तिम अध्याय में 49 वर्ग हैं। बाष्कलसंहिता में इसके अनन्तर 15 मन्त्रात्मक एक अन्य संज्ञानसूक्त क्रमाङ्क 192 है। इसमें 4 वर्ग हैं। इस तरह इस संहिता के अन्तिम 64वें अध्याय में वर्गों की संख्या 49+4=53 हो जाती है।

वालखिल्यसूक्त शाकलसंहिता में अष्टम मण्डल में सूक्त क्रमाङ्क 49 से 59 तक अर्थात् षष्ठ अष्टक के चतुर्थ अध्याय में वर्ग क्रमाङ्क 14 से 31 तक हैं। इन 11 वालखिल्यसूक्तों में मन्त्रों ऋचाओं की संख्या 80 है, यही 18 वर्गों में विभक्त हैं। अतिरिक्त संज्ञानसूक्त में 15 ऋचाएँ मन्त्र है जो 4 वर्गों में विभक्त हैं। शाकल संहिता में इन वालखिल्यसूक्तों को मूलरूप में नहीं स्वीकार किया गया है। इनको खिलसूक्त माना गया है। पर इस बाष्कलसंहिता में 11 एकादश इन वालखिल्य सूक्तों में से प्रारम्भिक 7 सूक्तों को मूलरूप में ग्रहण कर लिया गया है तथा अन्तिम 4 सूक्तों को नहीं सम्मिलित किया गया है। इन प्रारम्भिक 7 सूक्तों में 61 मन्त्र हैं जो 13 वर्गों में विभक्त हैं और अन्तिम 4 सूक्तों में 19 मन्त्र है जो 5 वर्गों में विभक्त हैं।

इस संहिता की समाप्ति 15 मन्त्रात्मक एक अतिरिक्त संज्ञानसूक्त से होती है। इस

---

8. इति संज्ञानसूक्तं पञ्चदशर्चात्मकम्। अस्य ग्रहणे प्रमाणमाश्वलायनगृह्यसूत्रम् समानी व हुतशेषाद्धविः प्राश्नन्ति- कौ. गृ. सू. 4 अ. 5 खण्ड

तरह इसके दशममण्डल में 191+1=192 सूक्त हो जाते हैं। इस प्रकार 7 वालखिल्य तथा 1 अतिरिक्त संज्ञानसूक्त को सम्मिलित करने पर इस बाष्कलसंहिता का स्वरूप बनता है—

सूक्त संख्या 1017+7+1=1028; वर्ग 2006+13+4=2023;

मन्त्र संख्या 10472+61+15=10548

इस तरह इस बाष्कलसंहिता में मूल शाकल से 8 सूक्त, 17 वर्ग तथा 76 मन्त्र अधिक हैं।

बाष्कलमन्त्रोपनिषद्

बाष्कल श्रीगुरुदेव पैल के शिष्य हैं। यह ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक हैं, पर इस शाखा की संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इसलिए इस संहिता के स्वरूप का पूर्ण बोध नहीं हो पा रहा है। केवल यत्र तत्र उल्लिखित सन्दर्भों के आधार पर इसके स्वरूप का प्रकाशन किया गया है। इस शाखा का केवल एक ही ग्रन्थ उपनिषद् उपलब्ध है वो **बाष्कल मन्त्रोपनिषद्** नाम से प्रसिद्ध है। यह मोतीलाल बनारसी दास द्वारा वर्ष 1970 में प्रकाशित **उपनिषत्संग्रह** के द्वितीय भाग में पृ0 37 से 39 तक स्थित है तथा वर्ष 2009 में महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठान उज्जयिनी द्वारा ऋजुग्रन्थमाला-2 के अन्तर्गत प्रकाशित है। संस्कृतवृत्ति तथा हिन्दी अनुवाद समन्वित सुविस्तृत भूमिका संवलित यह प्रो0 श्री किशोरमिश्र द्वारा सम्पादित है। यह अत्यन्त लघु ग्रन्थ हैं, इसमें केवल 25 मन्त्र हैं। पर विषय की दृष्टि से यह अत्यन्त गम्भीर एवं प्रौढ़ है।

एक कथा के माध्यम से परमतत्त्व ब्रह्म के स्वरूप का इसमें साधु प्रकाशन है। इन्द्रदेव मेष के रूप में ऋषि कण्व के पुत्र मेधातिथि के पास पृथिवीलोक आते हैं और उसको उठाकर स्वर्गलोक ले जाते हैं। इन्द्र से मेधातिथि प्रश्न करते हैं कि तुम अपना परिचय दो, तुम मेष रूप में हो और मेष तो पृथिवी पर चलता है और तुम पृथिवी का बिना स्पर्श किये चल रहे हो, तुम तो सर्वज्ञ हो। तब इन्द्र मेष रूप में परमतत्त्व ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हैं। इसमें अद्वैत स्वरूप की प्रतिष्ठा हैं।

उत्तम पुरुष प्रयोग द्वारा सर्वव्यापक परमतत्त्व का यहाँ पर सुन्दर प्रकाशन है। मैं ही मन्त्र हूँ, यज्ञ हूँ, अग्नि हूँ, देवों तथा समस्त भुवनों का पालक हूँ। सम्पूर्ण विश्व में मैं परिव्याप्त हूँ और इससे पृथक् भी हूँ। मैं वेद, यज्ञ, छन्द, रवि सभी को बनाने वाला हूँ। मैं ही परम ज्योति अमृतरूप हूँ। सम्पूर्ण विश्व का शासक एवं धारणकर्त्ता हूँ। आत्मा

को ही ज्योति, हंस, साक्षी कहा गया है। गुहा में निहित इसका स्वरूप अत्यन्त रहस्यात्मक है।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। 1.164.46

तथा वाक्सूक्त 10.125 की ही तरह यहाँ पर सर्वेश्वरवाद अद्वैतवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा है।

आपिः पिता सूरहमस्य विष्वङ। अहं वेदानामुत यज्ञानामहं छन्दसामविदं रयीणाम्, अहमित्रु परमो जातवेदा, अहं चरामि भुवनस्य मध्ये, अहं ज्योतिरहममृतं, विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपः मन्त्र 13, 14, 15, 18, 23, 24

बाष्कलमन्त्रोपनिषद्

मेधातिथिं काण्वमिन्द्रो जहार द्या मेषभूयोपगतो विदानः।
तमन्य इत्तमनं परिप्राद् पद एनं नियुयुजे परस्मिन्॥1॥
को ह स्मैष भवसि व्यवायो नावायो म इह शश्वदस्ति।
सुशेवमिच्चङ्क्रमसि प्रपश्यन्नित्था न कश्चोरणमाचचक्षे॥2॥
नेमामस्पृक्षदिदुदस्यमानः को अद्धामूमभिचङ्क्रमीति।
तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमो न त्वाश्नवद्ब्रह्म रिषा मयस्वि॥3॥
इन्द्रो नृचक्षा वृषभस्तुराषाट् प्रसासहिस्तपसा मा विचक्षे।
स इद्देवो ऋतमन्वयन्तं प्रभीमकर्मा तवसोऽपविद्धात्॥4॥
कुहेव मावशमितो नयातै कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा।
कुहाचिदेष स्वपिता पिता नो यो न वेद न हृतं हरन्तम्॥5॥
प्रत्यङ्ङवाङ्प्राङ्ङितरौ च नेह नाहमेनाननुपतस्थिरद्धा।
न मामिमे नूनमित्था पथो विदुर्ये मा न यन्ति मिथु चाकशानाः॥6॥
परः स्मियानो अविवरस्य शूकं किं सीमिच्छरणं मन्यमानः।
न ह त्वाहमप्रणीय स्वविष्ठामित्था जहामि शपमानमिन्द्र॥7॥
अहमस्मि जरितृणामु दावा अहमाशिरमहमिदं दधग्वान्।
अहं विश्वा भुवना विचक्षन्नहं देवानामासन्नवोऽदः॥8॥
मम प्रतिष्ठा भुव आण्डकोशा वि चैमि सं च हि नु यो विरप्शी।
अहं न्वहिं पर्वते शिश्रियाणमुग्रो न्वहं तवसावस्युरद्धा॥9॥
प्रवङ्क्णा अभिदं पर्वतानां यत्सीमिन्द्रो अकरोदनीकैः।
को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् को अश्नवदभिमातिं विजघ्नुषः॥10॥

को मे अवो दाशुषो विष्वगूतीरित्था ददर्श्रे भुवनाधि विश्वा।
रूपं रूपं जनुषा बोभवीमि मायाभिरेको अभिचाकशानः॥11॥
विश्वं विचक्षे यमयन्नभीको नेशे मे कश्च महिमानमन्यः।
अहं द्यावापृथिवी आततानो बिभर्मि धर्ममवसे जनानाम्॥12॥
अहमु ह प्रवर्तिं यज्ञियामियामहं वेद भुवनस्य नाभिम्।
आपिः पिता सूरहमस्य विष्वङ् अहं दिव्या आन्तरिक्ष्यास्तुकावहम्॥13॥
अहं वेदानामुत यज्ञानामहं छन्दसामविदं रयीणाम्।
अहं पचामि सरसः परस्य यदिदेतीव सरिरस्य मध्ये॥14॥
अहमिन्नु परमो जातवेदाः यमध्वर्युरभिलोकं पृणैधीत्।
यमन्वाह नभसो न पक्षी काष्ठा भिन्दन् गोभिरितोऽमुतश्च॥15॥
अहमु यन्नपतता रथेन द्विषडारेण प्रधिनैकचक्रः।
अहमिन्नु दिद्युतानो दिवे दिवे तन्वं पुपुष्वानमृतं वहामि॥16॥
अहं दिशः प्रदिश आदिशश्च विष्वक् पुनानः पर्येमि लोकाम्।
अहं विश्वा ओषधीर्गर्भं आधां याभिरिदं धिनुयुर्दाशुषः प्रजाः॥17॥
अहं चरामि भुवनस्य मध्ये पुनरुच्चावचं व्यश्नुवानः।
यो मा वेद निहितं गुहा चित् स इदित्था बोभवीदाशयध्यै॥18॥
अहं पञ्चधा दशधा चैकधा च सहस्रधा नैकधा चासमत्र।
मया ततमितीदमश्नुते तदन्यथासद्यदि मे असद्विदुः॥19॥
न मामश्नोति जरिता न कश्चन न मामश्नोति परि गोभिराभिः।
न मेऽनाश्वानुत दाश्वानजग्रभीत् सर्व इन्मामुपयन्ति विश्वतः॥20॥
क्व शरारुः क्व सृमरः क्व नूरणः सर्वमिदं त्वत्त्वदितो वहामि।
यन्मादिमे बिभ्यति तन्म एकं ते मे अक्षन्नहमु ताननुक्षम्॥21॥
यत्तप्यधा बहुधा मे पुरा चित्तन्नु भुवेऽहमुरणो बोभुवे।
ऋतस्य पन्थामसि हि प्रपन्नोऽवसे स मे सत्यमिदेकमेहि॥22॥
अहं ज्योतिरहमृतं विनद्धिरहं जातं जनि जनिष्यमाणम्।
अहं त्वमहमहं त्वमिन्तु त्वमहं चक्ष्व विचिकित्सीर्म ऋज्वा॥23॥
विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपो रुद्रः प्रणीती तमनः प्रजापतिः।
हंसो विशोको अजरः पुराण ऋतीयमानो अहमस्मि नाम॥24॥
अहमस्मि जरिता सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठी नृचक्षाः।
अहं विष्वङ्ङहमस्मि प्रसत्वानहमेकोऽस्मि यदिदं नु किं च॥25॥

बाष्कलसंहिता स्थित अतिरिक्त संज्ञानसूक्त

15 संवनन आङ्गिरसः।

संज्ञानमुशना वदत्संज्ञानं वरुणो वदत्।
संज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च संज्ञानं सविता वदत्॥१॥
संज्ञानं नः स्वेभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम्॥२॥
यत्कक्षीवान् संवननं पुत्रो अङ्गिरसामवेत्।
तेन नोऽद्य विश्वे देवा सं प्रियां समजीजनन्॥३॥
सं वो मनांसि जानतां समाकूतीर्मनामसि।
असौ यो विमना जनस्तं समावर्तयामसि॥४॥
तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥५॥
नैर्हस्त्यं सेनादरणं परिवर्त्मे तु यद्धविः।
तेनामित्राणां बाहून् हविषा शोषयामसि॥६॥
परि वर्त्मान्येषामिन्द्रः पूषा च सस्रतुः।
तेषां वो अग्निदग्धानामग्निगूळहानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्॥७॥
ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्य भियं यथा।
परा अमित्रों एजत्वर्वाची गौरुपेजतु॥८॥
प्राध्वराणां पते वसो होतर्वरेण्यक्रतो।
तुभ्यं गायत्रमृच्यते॥९॥
गोकामो अन्नकामः प्रजाकाम उत कश्यपः।
भूतं भविष्यत्प्र स्तौति महद्ब्रह्मैकमक्षरं बहुब्रह्मैकमक्षरम्॥१०॥
यदक्षरं भूतकृतो विश्वे देवा उपासते।
महऋषिमस्य गोप्तारं जमदग्निमकुर्वत॥११॥
जमदग्निरा प्यायते छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः।
राज्ञः सोमस्य भक्षेण ब्रह्मणा वीर्यावता॥१२॥

अजो यत्तेजो ददृशे शुक्रं ज्योतिः परोगुंहा।
तदृषिः कश्यपः स्तौति सत्यं ब्रह्म चराचरं ध्रुवं ब्रह्म चराचरम्॥१३॥
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
अगस्त्यस्य त्र्यायुषं यद्देवानां त्र्यायुषं तन्मे अस्तु त्र्यायुषम्॥१४॥
तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥१५॥

शाकल एवं बाष्कलसंहिता का स्वरूप

संहिता	मण्डल	सूक्त	अध्याय	वर्ग	मन्त्र
शाकल +	१०	१०१७	६४	२००६	१०४७२
वालखिल्य	८	११		१८	८०
योग		१०२८	-	२०२४	१०५५२
बाष्कल	१०	१०२५	६४	२०२३	१०५४८
वालखिल्य		७		१३	६१
आदितः		१		४	१५
अतिरिक्त संज्ञानसूक्त					
योग		८		१७	७६

चरणव्यूहविवृत्ति में आचार्य महिदास प्रस्तुत करते हैं—

'सं समित् ८.८.४९ सूक्तानन्तरं पञ्चदशऋचात्मकं सञ्ज्ञानमुशनाव्रदत् इत्यादि तच्छंय्योरा वृणीमह इत्यन्तं वेदसमाप्तिरिति बाष्कलशाखाध्ययनम्।

एवमध्ययनाभावाच्छाखाऽभाव इत्यर्थः। पृ० २६

सूक्तसहस्रसप्तदशाधिकात् अष्टौ सूक्तानि बाष्कलस्याधिकानि, प्रति ते, युवं देवाः, यमृत्विजो, इमानि वां (वर्ग २८-३१) इति चत्वारि वालखिल्यसूक्तानां लोपः। पृ० २६

त्रिदशाङ्गधरा १६१३ मिते गतेऽब्दे मधुभासे दशमीतिथौ सुधांशौ।
महिदासबुधः परोपकृत्यै चरणव्यूहमिदं व्यकारि काश्याम्''

विद्वद्भिः प्रार्थितेनेयम्महिदासद्विजन्मना।
चरणव्यूहविवृतिर्विधिना तु मया कृता॥

शाकल तथा बाष्कलसंहिताओं के प्रथम मण्डल में सूक्तों का क्रम

ऋग्वेद दशतयीसंहिता के प्रथम मण्डलमें 191 सूक्त हैं। शाकल तथा बाष्कल दोनों संहिताओं के प्रथम इस मण्डल में सूक्तों की संख्या यही 191 है, पर इन सूक्तों के क्रम में कुछ अन्तर है। आचार्य शौनक ने अपनी अनुवाकानुक्रमणी में इस भेद को प्रकाशित किया है—

इत्याद्ये मण्डले दृष्टाश्चत्वारो विंशतिश्चैव।
गौतमादौशिजः कुत्सः परुच्छेपादृषेः परः।
कुत्साद् दीर्घतमा इत्येष तु बाष्कलकः क्रमः॥

इसके अनुसार बाष्कलसंहिता में प्रथम मण्डल में सूक्तों का क्रम इस प्रकार है—

ऋषि गौतम दृष्ट सूक्त के अनन्तर औशिजकक्षीवान् दृष्ट सूक्त हैं। तदनन्तर ऋषि परुच्छेप दृष्ट सूक्त और इसके अनन्तर ऋषि कुत्स दृष्ट सूक्त है अर्थात् सूक्त 93 के अनन्तर 116 से 139 तक के सूक्त हैं और इनके अनन्तर 94 से 115 तक के सूक्त हैं। तत्पश्चात् सूक्त क्रमाङ्क 140 से 191 समाप्ति तक यथावत् मानते हैं।

शाकलसंहिता : प्रथम मण्डल : सूक्त सं. 191
सूक्तक्रम मन्त्र सं. 2006

क्रमाङ्क	सूक्त	ऋषि	मन्त्र	संख्या
1	1 से 11	मधुच्छन्दा वैश्वामित्र	अग्निमीले.... उत त्वा सन्ति भूयसीः	110
2	12-23	मेधातिथि काण्वः	अग्निं दूतं वृणीमहे.... इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः	143
3	24-30	आजीगर्तिः शुनः शेपः	कस्य नूनं कतमस्य... अस्मे रयिं नि धारय	97
4	31-35	हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः	त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव	71
5	36-43	कण्वो घौरः	प्र वो यह्वं पुरूणां... आभूषन्तीः सोमवेदः	96

6	44-50	प्रस्कण्वः काण्वः	अग्ने विवस्वदुषसः.... मो अहं द्विषते रधम्।	82
7	51-57	सव्य आङ्गिरसः	अभि त्यं मेषं... विश्वं दधिषे केवलं सहः	72
8	58-64	नोधा गौतमः	नू चित् सहोजा अमृतो प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्	74
9	65-73	पराशरः शाक्त्यः	पश्वा न तायुं... अधिश्रवो देवभक्तं दधानाः	91
10	74-93	गोतमो राहूगणः	उप प्रयन्तो अध्वरं.... कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम्	204
11	94-115	कुत्स आङ्गिरसः	इमं स्तोममर्हते जातवेदसे अदितिःसिन्धुः पृथिवी उत द्यौः	232
12	116-126	कक्षीवान् दैर्घतमसः औशिजः	नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे गन्धारीणामिवाविका	153
13	127-139	परुच्छेपो दैवोदासिः	अग्निं होतारं मन्ये.... ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्	100
14	140-164	दीर्घतमा औचथ्यः	वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते सरस्वन्तमवसे जोहवीमि	242
15	165-191	अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	कया शुभा सवयसः सनीला अरसं वृश्चिक ते विषम्	239
			पूर्ण योग	**2006**

शाकलसंहिता के प्रथम मण्डल में 191 सूक्तों का यही क्रम हैं। पर अनुवाकानुक्रमणी के अनुसार बाष्कलसंहिता में इन सूक्तों का क्रम इस प्रकार है, प्रारम्भ से लेकर सूक्त 93 तक, पुनः 140 से सूक्त 191 समाप्ति तक दोनों संहिताओं में सूक्तों का क्रम समान है।

ऋषि गोतम राहूगण दृष्ट सूक्त 74-93 के अनन्तर ऋषि कक्षीवान् दैर्घतमस दृष्ट सूक्त कुमाङ्क 116 से 126 तक की स्थिति है। तत्पश्चात् परुच्छेप दैवोदासि दृष्ट सूक्त क्रमाङ्क 127 से 139 की स्थिति है। इसके अनन्तर कुत्स आङ्गिरस दृष्ट सूक्त क्रमांङ्क 94 से 115 तक की स्थिति है। इसके अनन्तर सूक्त क्रमाङ्क 140 से लेकर 191 तक

के सूक्तों की स्थिति है। इस प्रकार बाष्कलसंहिता के प्रथम मण्डल में सूक्तों का क्रम इस प्रकार है—

अ- प्रारम्भ से लेकर सूक्त क्रमाङ्क 93 तक
ब- सूक्त 116 से 126 तक ऋषि कक्षीवान् दैर्घतमस
स- सूक्त 127 से 139 तक ऋषि परुच्छेप दैवोदासि
ई- सूक्त 94 से 115 तक ऋषि कुत्स आङ्गिरस
उ- सूक्त 140 से 191 समाप्ति तक।

बाष्कलसंहिता में बालखिल्यसूक्तों की स्थिति

ऋग्वेदीय शाकलसंहिता में सुप्रख्यात एकादश (11) बालखिल्यसूक्तों की मूल रूप में स्वीकृति नहीं है, इनको खिलसूक्त माना गया है, यद्यपि इनकी स्थिति अष्टममण्डल में सूक्त क्रमाङ्क 49 से 59 तक है और इन सूक्तों को सम्मिलित करके इस मण्डल की सूक्त संख्या 92+11=103 हो जाती है। खिलसूक्त मानने पर मूल रूप में न ग्रहण करने पर भी इन सूक्तों को अष्टममण्डल में ही परिगृहीत किया गया है क्योंकि इन सभी सूक्तों के द्रष्टा ऋषि काण्ववंशीय हैं और अष्टम मण्डल इसी वंश से सम्बद्ध है।

बाष्कलसंहिता में इन एकादश सूक्तों में से प्रथम प्रारम्भिक सात सूक्तों को मूल रूप में स्वीकार किया गया है और यही इस बाष्कलसंहिता की विशेषता है। पर अन्तिम 4 सूक्तों को नहीं ग्रहण किया गया है। इन सात सूक्तों को अष्टम मण्डल में ही शाकल की तरह स्थान दिया गया है, पर इनके क्रम भी कुछ अन्तर हैं।

चरणव्यूह के अपने भाष्य में आचार्य महिदास ने इस सूक्तों का क्रम यह बतलाया है=स्वादोरभक्षि 8.48 सूक्तान्ते अभि प्र वः सुराधसम् 8.49, प्र सुश्रुतम् 8.50 सूक्तद्वयं पठित्वा अग्न आ याह्यग्निभिः 8.60 इति पठेत्। ततः आ प्र द्रव 8.82 अथवा अष्टक 6 अध्याय 4 गौर्धयति 8.94 सूक्तानन्तरं यथा मनौ सांवरणौ 8.51; यथा मनौ विवस्वति 8.52 उपमंत्वा 8.53, एतत्त इन्द्र 8.54, भूरीदिन्द्रस्य 8.53 इत्यन्तानि पञ्चसूक्तानि पठित्वा आ त्वा गिरो रथीरिव 8.95 इति पठेयुः।

सूक्तक्रमाङ्क 48 स्वादोरभक्षि के अनन्तर क्रमशः दो सूक्तों 49 अत्रि प्र वः सुराधसम् तथा 50 प्र सुश्रुतम् को ग्रहण किया गया है। शेष पाँच सूक्तों को शाकल स्थित सूक्त 94 गौर्धयति के अनन्तर क्रमशः स्थापित किया गया है—

51 यथा मनौ सांवरणौ; 52 यथा मनौ विवस्वति
53 उपमं त्वा 54 एतत्त इन्द्र
55 भूरीदिन्द्रस्य।

इस प्रकार मूलरूप में स्वीकृत इन सात सूक्तों को इसी अष्टममण्डल में स्थापित किया गया है और इस तरह इस अष्टममण्डल में सूक्त संख्या 92+7=99 हो जाती है।

वालखिल्यसूक्तानि

ऋग्वेदः शाकलसंहिता- मण्डल 8; सूक्त 49 से 59=11
अष्टक 6 अध्याय 4 वर्ग 14 से 31=18 वर्ग
मन्त्र संख्या 80

क्र.सं.	सूक्त	ऋषि	देवता	छन्द	मन्त्र संख्या
1	49 अभि प्र वः सुराधस-गोमद्धिरण्यवत्	प्रस्कण्वः काण्वः	इन्द्रः	प्रगाथः	10
2	50 प्र सु श्रुतं सुराधस-मयि गोत्रं हरिश्रियम्	पुष्टिगुः काण्वः	इन्द्रः	प्रगाथः	10
3	51 यथा मनौ सांवरणौ-अस्मे सुवानास इन्दवः	श्रुष्टिगुः काण्वः	इन्द्रः	प्रगाथः	10
4	52 यथा मनौ विवस्वति-सोमा इन्द्रममन्दिषुः	आयुः काण्वः	इन्द्रः	प्रगाथः	10
5	53 उपमं त्वा मघोनां-गव्युरग्रे मथीनाम्	मेध्यः काण्वः	इन्द्रः	प्रगाथः	8
6	54 एतत्त इन्द्र वीर्यं-प्रस्कण्वाय नि तोशय	मातरिश्वा काण्वः	इन्द्रः	प्रगाथः	8
7	55 भूरीदिन्द्रस्य वीर्य-चक्षुषा चन संनशे	कृश काण्वः	इन्द्रः प्रस्कण्वश्च	गायत्री 3, 5 अनुष्टुप्	5
8	56 प्रति ते दस्यवे-दिवि सूर्यो अरोचत	पृषध्नः काण्वः	इन्द्रः प्रस्कण्वश्च 5 अग्निसूर्यो	गायत्री पङ्क्तिः 5 अग्निसूर्यौ	5

9	57 युवं देवा क्रतुना-प्रदाश्वांसमवतं शचीभिः	मेध्यः काण्वः	अश्विनौ	त्रिष्टुप्	4
10	58 यमृत्विजो बहुधा-वाँ हुवे अतिरिक्तं पिबध्यै	मेध्यः काण्वः	विश्वेदेवाः 1 ऋत्विजो वा	त्रिष्टुप्	3
11	59 इमानि वां भागधेयानि-दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः	सुपर्णः काण्वः	इन्द्रावरुणौ	जगती	जगती 7
				पूर्णयोग	**80**

वालखिल्यसूक्त

आचार्य कात्यायन ने अपनी 'ऋग्वेदसर्वानुक्रमणी' में ऋग्वेद के अष्टममण्डल के अन्तर्गत सुप्रख्यात इन (११) वालखिल्य सूक्तों को सम्मिलित किया है, जबकि इनको मूल न मानकर खिल रूप में स्वीकार किया गया है। इन्होंने सूक्तों के आदिम प्रथम पद, मन्त्र-संख्या, ऋषि-नाम किन्हीं में निरूप्य विषय-वस्तु तथा छन्द का भी उल्लेख किया है। यथा—

४९. अभि प्र दश प्रस्कण्वः प्रागाथं तत्।
५०. प्र सुश्रुतं पुष्टिगुः
५१. यथा मनौ श्रुष्टिगुः
५२. यथा मनौ वायुः
५३ उपमं त्वाष्टौ मेध्यः।
५४. एतत्ते मातरिश्वा नो विश्व इति वैश्वदेवः प्रगाथः
५५. भूरीदिन्द्रस्य कृशः प्रष्कण्वस्य दानस्तुतिर्गायत्रं तृतीया पञ्चावनुष्टुभौ
५६. प्रति ते पृषघ्नो ऽन्त्याग्निसौरी पङ्क्तिः
५७. युवं देवा चतुष्कं मेध्य आश्विनं त्रैष्टुभम्
५८. यमृत्विजस्तृचं वैश्वदेवमाद्य ऋत्विक्स्तुतिर्वा
५९. इमानि वां सप्त सुपर्ण ऐन्द्रावरुणं जागतम्।

ऋग्वेद की शाकलसंहिता के अष्टममण्डल में वालखिल्य नाम से सुप्रख्यात (11) सूक्त हैं, इनकी स्थिति सूक्त क्रमाङ्क 59 से 59 तक है, अष्टकक्रम के अनुसार षष्ठ अष्टक के चतुर्थ अध्याय में वर्ग क्रमाङ्क 14 से 31 तक है। इन सूक्तों में 80 मन्त्र हैं। अष्टक क्रम के अनुसार यही 18 वर्गों में विभक्त है। इन ऋचाओं, सूक्तों के द्रष्टा ऋषि काण्ववंशीय हैं। इस संहिता में इन सूक्तों की मूल रूप में स्वीकृति नहीं है, इनको खिल माना गया है। फिर भी काण्ववंशीय ऋषियों द्वारा दृष्ट होने से इन सूक्तों को इसी अष्टममण्डल में स्थान दिया गया है। क्योंकि सूक्तों की वंशमण्डलीय संघटन की व्यवस्था के अनुसार यह अष्टममण्डल काण्ववंशीय ऋषियों का है। इस तरह इन 11 वालखिल्यसूक्तों को इस मण्डल के मूल 92 सूक्तों में सम्मिलित करने पर अष्टम मण्डल में सूक्त संख्या 92+11=103 हो जाती है।

मूलरूप में स्वीकृति न होने के कारण ऋक्संहिता के पदपाठकार आचार्य शाकल्य ने इनका पदपाठ नहीं प्रस्तुत किया है तथा सुप्रख्यात भाष्यकार आचार्य सायण ने भी अपना **वेदार्थप्रदीपभाष्य** नहीं प्रस्तुत किया है। इन्हीं का अनुकरण करने वाले अन्य भाष्यकारों का भी इन पर भाष्य नहीं मिलता। यहाँ तक कि पाश्चात्य अनुवादक एच0 एच0 विल्सन तथा ग्रिफिथमहोदय ने भी इन सूक्तों का अनुवाद नहीं किया है।

इन वालखिल्य सूक्तों के विषय में चरणव्यूह के भाष्यकार आचार्य महिदास का कथन है कि इन सूक्तों की स्थिति सर्वमान्य पाठ-पारायण में नहीं है। शाकलसंहिता में इन एकादश सूक्तों को खिलरूप में ही माना गया है। सर्वस्वीकृत 1017 सूक्तों से अतिरिक्त इनकी स्थिति है। पाठपारायण में न होने पर भी यज्ञानुष्ठान में इनको स्थान दिया गया है। ब्राह्मणों तथा श्रौतसूत्रों में इनका विनियोग किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (30.2) का उन्होंने उदाहरण प्रस्तुत किया है।[9]

इन वालखिल्य ऋचाओं को प्राणस्वरूप माना गया है। इसलिए इनके शंसन से यजमान के प्राण-वायु की समृद्धि होती है।

---

9. वालखिल्यानि पारायणे न सन्ति। तदुच्यते
ऋग्वेदान्तर्गतं वालखिल्यमेकादशसूक्तम्
सूक्तसहस्रसप्तदशाधिकमित्यत्र।।
ऋचां दशसहस्राणीत्येतत्संख्याव्यतिरिक्तानि
वालखिल्यानीति प्रसिद्धिः। तत्र यज्ञानुष्ठाने ब्राह्मणे सूत्रे च
श्रूयते वालखिल्याः शंसन्ति, प्राणा वै वालखिल्याः। एते. ब्रा. पं. 6 खण्ड 28
अभि प्र वः सुराधसम् अ. 6 अ. 4 व. 14
इति षट्वालखिल्यानां सूक्तानि ऐ आ0 5 ख 10 इति
ब्राह्मणे आरण्यके प्राणानेवास्य तत्कल्पयन्ति

वालखिल्य स्वरूप

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार वालखिल्य मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। यहाँ पर एक आख्यान के माध्यम से इनके उद्भव को बतलाया गया है। प्रजापति ने तप किया, तपश्चर्या के अनन्तर उन्होंने अपने शरीर को धुना, झकझोरा। इस क्रिया से उनका जो मांस था, उससे विना रूप आकृति के **वातरशना** संज्ञक ऋषि उत्पन्न हुए, जो नख थे उनसे **वैखानस** संज्ञक ऋषि उत्पन्न हुए तथा उनके जो बाल थे उनसे **वालखिल्य** संज्ञक ऋषि उत्पन्न हुए। यहाँ पर प्रजापति से ही वालखिल्य ऋषियों की उत्पत्ति बतलाई गई है।[10]

इस आरण्यक के अनुसार वालखिल्य से किसी ऋषि विशेष या ऋषि समुदाय की प्रतीति होती है। पर ऋग्वेद के सूक्तों में कहीं पर भी वालखिल्य संज्ञक ऋषि का उल्लेख नहीं मिलता। ये सभी एकादश सूक्त ऋचाएँ काण्ववंशीय ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत हैं। इन सभी की प्रसिद्धि वालखिल्य नाम से है।

वालखिल्य ऋचाओं का विनियोग

ऋग्वेद की शाकलसंहिता में वालखिल्य ऋचाएँ मूल रूप में नहीं है तथापि इनके प्रभाव व महत्त्व को ध्यान में रखते हुए ऋग्वेदीय ब्राह्मण ऐतरेय में यज्ञानुष्ठान में इनके विनियोग को बतलाया गया है—विधिवत् विनियोग विधान का कथन है। इनको प्राण कहा गया है। प्राणरूप कथन से इनके महत्त्व का प्रकाशन होता है।[11]

वालखिल्याख्यैर्मुनिभिर्दृष्टाः 'अभि प्र वः सुराधसम्' इत्यादि केऽष्टके (ऋ 6 अष्टक 4 अध्याय) स्थिता ऋचो वालखिल्याभिधाः। ता एव वालखिल्याख्ये ग्रन्थे समाम्नाताः। ताः सर्वा मैत्रावरुणः शंसेत्। वालखिल्यानां शिल्पानां प्राणरूपत्वेन तच्छंसने सति अस्य रेतोरूपस्य यजमानस्य प्राणानेव सम्पादयति।

होतुः शिल्पशस्त्रमुक्त्वा मैत्रावरुणस्य शिल्पशस्त्र विधत्ते। ऐ. 30.2

वालखिल्य नामक आठ सूक्तों के पाठ प्रकार विनियोग को शिल्प कहा गया है—

वालखिल्यानामष्टसूक्तानामेव पाठप्रकारैः शिल्पत्वममिहितम्।

—टिप्पणी 1, पृ0 1030

---

10. स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा शरीरमधूनत।
तस्य यन्मांसमासीत्ततोऽरूपाः केतवो वातरशना ऋषय उदतिष्ठन्। ये नखास्ते वैखानसः। ते बालास्ते बालखिल्याः। तै. आर. 1.2.3

11. वालखिल्याः शंसति, प्राणा वै वालखिल्याः
प्राणानेवास्य तत्कल्पयति। ऐत. 30.2

शिल्पशस्त्र का अभिप्राय है—**शिल्पनामशस्त्रं देवप्रीत्यर्थम्। द्विविधं**

अ. देवशिल्पम् आ. मानुष शिल्पम्

वालखिल्य नामक मुनियों द्वारा दृष्ट ऋचाओं का मैत्रावरुण शंसन करता है। वालखिल्य ऋचाएँ प्राण हैं, अतः प्राणरूप वालखिल्य नामक शिल्पों द्वारा उनके शंसन द्वारा वीर्यरूप इस यजमान के प्राणों को सम्पादित समृद्ध करता है।

वालखिल्य ऋचाओं का महत्त्व एवं विनियोग विधान

एक आख्यान के माध्यम से वालखिल्य ऋचाओं के अतिशय विशिष्ट महत्त्व का प्रकाशन किया गया है—

बल नामक किसी असुर के भृत्यों ने बृहस्पति प्रमुख देवों की गायों का अपहरण कर लिया और उनको बल के ही गृह घर दुर्ग में छिपा दिया। देवों ने किसी दूत गुप्तचर के मुख-माध्यम से बल के गृह में निरुद्ध गायों को जान लिया। जानकर उन गायों को साम-दानादि लौकिक उपायों की अपेक्षा यज्ञानुष्ठान के उपाय से उनको मुक्त कराने- प्राप्त करने की इच्छा की और उन देवों ने विशिष्ट अनुष्ठान करके उसकी सामर्थ्य से उन अपहृत गायों को मुक्त करके प्राप्त कर लिया। उन देवों ने प्रातः सवन में नभाक नामक ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्रों से बल नामक असुर को प्रताड़ित किया, उसको मारकर गायों के निरोध को शिथिल किया। पुनः उन देवों ने तृतीय सवन में वालखिल्य ऋषियों द्वारा दृष्ट वज्ररूप से अवस्थित ऋचाओं के प्रयोग से बल को भग्न करके उसके दुर्ग से गायों को बाहर निकाला।[12]

सायणः

बलनामकः कश्चिदसुरप्रभुः तदीयभृत्या बृहस्पतिप्रमुखानां देवानां गा अपहृत्य वलस्य गृहे स्थापितवन्तः। देवाश्च केनचिद् दूतमुखेन 'वले' वलस्य गृहेऽवस्थापिता गाः पर्यपश्यन् ज्ञातवन्तः। ज्ञात्वा च सामभेदादींल्लौकिकोपायान् परित्यज्य यज्ञेनैव उपायेन ऐप्सन् आप्तुमिच्छां कृतवन्तः ...... ते देवाः प्रातः सवने नभाकनाम्ना महर्षिणा तद् दृष्टेन मन्त्रेण वा वलनामकमसुरम् अनभवन् 'नभतिधातुर्हिंसार्थः ताडितवन्तः इत्यर्थः। तदानीमेव गोग्रहणं .... निरोधं शिथिलीकृतवन्तः।...... पुनरपि ते देवास्तृतीयसवने वज्ररूपेणावस्थिताभिः वालखिल्याभिः ऋग्भिः वाचः कूटेनैकपदया बलं विरुज्य विशेषेण भङ्गं कृत्वा स्वीकीया गाः उदाजन् उदीयाद् दुर्गादुद्गमितवन्तः।

यहाँ पर बल नामक असुर द्वारा अपहरण की गई गायों की विमुक्ति में नभाक ऋषि द्वारा तथा वालखिल्य मुनि द्वारा दृष्ट ऋचाओं के प्रयोग तथा महत्व को बतलाया गया है।

---

12. देवा वै बले गाः पर्यपश्यँस्ता यज्ञेनैवेत्संस्ताः षष्ठेनाह्नाऽऽप्नुवंस्ते प्रातः सवने नभाकेन बलमनभयं तं... तृतीयसवने वज्रेण वालखिल्याभिर्वाचः कूटेनैकपदया बलं विरुज्य गा उदाजन्। —ऐ. ब्रा. 29.8

वालखिल्य ऋचाओं को वज्र कहा गया है। यथा देवों ने नभाक तथा वालखिल्य ऋचाओं के प्रयोग से बल द्वारा निरुद्ध गायों को प्राप्त किया उसी प्रकार यजमान भी इन दोनों सवनों में इन ऋचाओं का प्रयोग करके प्रतिबन्धनिवारणपूर्वक अपने अभीष्टफल को प्राप्त कर सकता है।

यहाँ पर प्रथम सत्र प्रातः सवन में नभाक ऋषि द्वारा दृष्ट ऋचाओं का विनियोग बतलाते हैं।

तथैवैतद् यजामानाः प्रातः सवने नभाकेन बलं नमयन्ति। ऐत. 29.8

नभाक ऋचाओं के शंसन के बाद वालखिल्य ऋचाओं के शंसन का विधान बतलाते हैं—

त उ तृतीयसवने वज्रेण वालखिल्याभिर्वाचः कूटेनैकपदया वलं विरुज्य गा आप्नुवन्ति। ऐत. 29.8

आचार्य सायण इन पदों की व्याख्या करते हुए इन ऋचाओं के प्रभाव का प्रकाशन करते हैं—

ते तु मैत्रावरुणादयः बलं प्रतिबन्धकं पाप्मानं वैरिणं वज्ररूपेण वालखिल्येन विनाश्य गोप्राप्तौ विघ्नरहिताः सन्तो गाः प्राप्नुवन्ति।
ऐत. 29.8

वे ही मैत्रावरुणादि प्रतिबन्धक वैरीरूप पापों को वज्ररूप वालखिल्यरूपी वाचः कूट=वाणी के समूहरूप एक पद से भग्न करके विघ्नरहित होकर गायों को प्राप्त करते हैं।

इस तरह ऐतरेय ब्राह्मण में इन वालखिल्य सूक्तों का यज्ञानुष्ठान में विनियोग बतलाया गया है तथा उनके प्रयोग विधान की विधिवत् विशद प्रस्तुति है। इनको वज्र की संज्ञा प्रदान की गई है जो प्रतिबन्धकों का निवाण करके यजमान को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। इनको प्राणस्वरूप कहा गया है, इनके शंसन से यजमान के प्राणों की समृद्धि होती है। यज्ञीय अनुष्ठान में विनियुक्त होने से इन वालखिल्यसूक्तों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

आश्वलायन श्रौतसूत्र (8.2.23) में भी इनका विनियोग बतलाया गया है—

अथ वालखिल्या विहरेत.... इति हौण्डिनौ।

अतः ब्राह्मण तथा श्रौतसूत्र में स्वीकृति होने से इन सूक्तों को मूल संहिता में अनिवार्य होना चाहिए। क्योंकि मन्त्रभाग की ही व्याख्या ब्राह्मणभाग में होती है। यज्ञकर्म में इन वालखिल्य सूक्तों के विनियोग का सुविशद निरूपण है। पर उपलब्ध शाकलसंहिता में इनकी स्थिति नहीं है। इसलिए किसी अन्य शाखा में इनको होना चाहिए। आचार्य शौनक ने अपनी अनुवाकानुक्रमणी में बाष्कलसंहिता में शाकलसंहिता से 8 सूक्तों को

अधिक बतलाया है और चरणव्यूहभाष्यकार आचार्य महिदास ने इस कथन की सम्पुष्टि की है। इस बाष्कल में वालखिल्य के इन एकादश सूक्तों में से प्रथम 7 को ग्रहण कर लिया गया है और एक अतिरिक्त संज्ञानसूक्त है। इन 11 सूक्तों में से अन्तिम 4 को नहीं स्वीकार किया गया है। इस तरह इस बाष्कल संहिता में इन वालखिल्यसूक्तों की मूल रूप में स्वीकृति है। केवल 4 सूक्तों को नहीं सम्मिलित किया गया है।

कालकवलित विलुप्त मान ली गई ऋग्वेद की दो संहिताओं का शीघ्र ही प्रकाशन हो गया है—

1. आश्वलायन संहिता- इन्दिरागांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दो भाग, नई दिल्ली, वर्ष 2009
1. शाङ्खायनसंहिता- महर्षिसान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्याप्रतिष्ठान, उज्जैन, 4 भाग, वर्ष 2012-13

इन दोनों ही संहिताओं में इन वालखिल्यसूक्तों की मूल रूप में स्वीकृति है। पर आश्वलायन में इन एकादश सूक्तों में से क्रमाङ्क दशम को नहीं ग्रहण किया गया है- यमृत्विजो बहुधा.... वां हुवे अतिरिक्तं पिबध्यै (8.58)। इस सूक्त में 3 ऋचाएँ है। इस प्रकार इस संहिता में 10 वालखिल्य सूक्तों को मिलाकर कुल मन्त्रों की संख्या 10472 + 77 + 212 - 10761 है।

शाङ्खायनसंहिता में 80 ऋचात्मक, 18 वर्गों में विभक्त सभी एकादश वालखिल्यसूक्तों को मूलरूप में सम्मिलित किया गया है। इनकी स्थिति षष्ठ अष्टक के चतुर्थ अध्याय में वर्ग 14 से 31 तक है। मण्डल क्रम के अनुसार इनकी स्थिति अष्टममण्डल में सूक्त क्रमाङ्क 49 से 59 तक है। इस तरह इस शाङ्खायनसंहिता के अष्टम मण्डल की सूक्तों की संख्या 92+11-103 है। खिलरूप में माने जाने वाले इन सभी एकादशसूक्तों की शाङ्खायन में मूलरूप में स्वीकृति मिल जाने से इनकी प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। आचार्य कात्यायन द्वारा ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी में अष्टममण्डल में सूक्त 49 से 59 तक प्रस्तुत ऋषि देवता मन्त्र संख्या छन्द सब कुछ सुसंगत हो जाता है और ऐतरेय ब्राह्मण तथा श्रौतसूत्रों में प्रस्तुत इनका यज्ञानुष्ठान में विधान भी सुसंगत हो जाता है।

॥ इति शाङ्खायनसंहितायां षष्ठाष्टके चतुर्थोऽध्यायः चतुर्थाध्याये
वर्गाः 54, सूक्तानि 22, ऋचः 268॥

इस प्रकार यत्र तत्र उल्लिखित सन्दर्भों के आधार पर सम्प्रति अनुपलब्ध इस बाष्कलसंहिता के बहुत कुछ स्वरूप का प्रकाशन हो जा रहा है।

ऋग्वेद संहिता
प्र. अष्टक

शांखायन संहिता

प्रथमाष्टक (मूल)

प्रथमाष्टकम्

THE PALACE LIBRARY 1931

चतुर्थाध्याय

ऋग्वेद की आश्वलायनसंहिता का स्वरूप

महानाम्नी

विदा मघवन् विदा गातुमनु शंसिषो दिशः।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरुवसो॥

(ऋ. आश्व. १०. २००.१)

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

(ऋ० १०.१७१.२८)

आचार्य आश्वलायन का ऋषित्व

ऋग्वेद भारतीय वाङ्मय किंवा विश्व वाङ्मय का उपलब्ध प्रथम संस्कृत ग्रन्थ है। ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत विमल ज्ञानराशि वेदनिधि का संरक्षण ऋषियों की वंशपरम्परा तथा शिष्यपरम्परा में श्रुतिपरम्परा के रूप में होता रहा है। आचार्य गुरुकुल-स्थान-उच्चारण के भेद से तथा यज्ञ में मन्त्रों के विनियोग की दृष्टि से वेदों की अनेक शाखा-प्रशाखाएँ हो गईं। इस प्रकार व्याकरणमहाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि के समय इन वेदों की कुल 1131 शाखाएँ थी। इनमें प्रथम ऋग्वेद की 21 शाखाएँ थी। पर अध्ययन-अध्यापन के अभाव में ये सभी शाखाएँ सुरक्षित नहीं रह सकी, इनका लोप होता चला गया और इस तरह 13वीं शताब्दी में इसकी केवल 5 शाखाएँ रह गईं जैसाकि आचार्य शौनक अपने ग्रन्थ चरणव्यूह में नामग्रहणपूर्वक इनका उल्लेख करते हैं—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति। 1.7,8

इस चरणव्यूह के अनुसार आश्वलायन ऋग्वेदीय आचार्य हैं और एक शाखा के प्रवर्त्तक हैं। अग्निपुराण में ऋग्वेद की केवल दो ही शाखाओं का उल्लेख है[1]—

1. शाङ्खायन तथा 2. आश्वलायन।

विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड, भागवतादि पुराणों का वचन है कि द्वापर युग में भगवान् विष्णु लोकपालों की प्रार्थना पर ऋषि पराशर और सत्यवती से वेदनिधि की रक्षाहेतु कृष्णद्वैपायन के रूप में अवतीर्ण हुए और इन्होंने अतीव बृहद् विपुल एक ही वेद का ऋक्-यजुस्-साम-अथर्व रूप में चतुर्धा विभाजन करके पैल वैशम्पायन जैमिनि सुमन्तु नामक अपने ही चार शिष्यों को प्रदान किया और वेदविभाजन रूपी इसी कार्य के लिए वे वेदव्यास इस नाम से सुप्रख्यात हुए—

वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः। महाभा0 वनपर्व

व्यासदेव से प्राप्त इस ऋग्वेद को गुरुपैल ने अपने शिष्यों को प्रदान किया, पर यहाँ पर उनके साक्षात् शिष्यों में आश्वलायन का स्थान नहीं है। इन पुराणों के अनुसार गुरुपैल के साक्षात् शिष्य केवल दो ही हैं—

1. इन्द्रप्रमिति तथा 2. बाष्कल।

---

1. शाङ्खायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः अग्नि. 27/2

पर महर्षि शौनक ने अपने ग्रन्थ चरणव्यूह में इस ऋग्वेद की 5 शाखाओं का नामोल्लेख करके गुरुपैल से इस वेद को प्राप्त करने वाले 5 शिष्यों का बोध कराया है। चरणव्यूह के भाष्यकार आचार्य महिदास सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं कि श्रुतिपरम्परा द्वारा गुरुपैल से प्रथमतः इस ऋक्संहिता को शाकल ने प्राप्त किया, तदनन्तर इस संहिता की प्राप्ति शाङ्खायन-आश्वलायन-बाष्कल तथा माण्डूकायन को हुई। इस तरह शाकलादि सभी पाँचों गुरुपैल के साक्षात् शिष्य हैं और इन्होंने इन सभी को एक वेद के ऋग्वेदीय कहा है।[2]

श्रीगुरुदेव के श्रीमुख से प्राप्त इस ज्ञाननिधि का इन पाँच शिष्यों ने संरक्षण एवं संवर्द्धन किया, इस प्रकार ऋग्वेद की 5 संहिताएँ हो गईं। इस तरह चरणव्यूह के अनुसार आश्वलायन ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक सिद्ध होते हैं।

इन्हीं आचार्य आश्वलायन के नाम से आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र उपलब्ध है। श्रौतसूत्र में 12 अध्याय हैं जो पूर्वषट्क तथा उत्तरषट्क के रूप में द्विधा विभक्त है। यह ऋग्वेद का पूर्ण प्रामाणिक श्रौतसूत्र है।[3] इसमें दर्शपूर्णमास अग्न्याधान अग्निहोत्र राजसूय वाजपेय अश्वमेधादि का सूत्ररूप में निरूपण है। इन्हीं आचार्य के नाम से प्रसिद्ध आश्वलायन गृह्यसूत्र 4 अध्यायों में विभक्त है। इसमें गृह्यकर्मों का सूत्ररूप में निरूपण है। यथा विवाहादि संस्कार पशुयाग पञ्चमहायज्ञ इत्यादि।

आश्वलायन श्रौतसूत्र में कुछ मन्त्र सकल पूर्ण रूप में पठित हैं तथा कुछ प्रतीकें हैं जो वर्तमान शाकलसंहिता में नहीं है। इसीलिए आचार्य सायण ने इन मन्त्रों और प्रतीकों को शाखान्तरीय बतलाया है।[4]

अथर्ववेदीय उपनिषद् प्रश्नोपनिषद् 1.1 में अनेक आचार्यों के साथ आश्वलायन का उल्लेख हुआ है। जो समित्पाणि होकर श्रद्धाभावपूर्वक प्राणविद्या के विषय में जिज्ञासु होकर अन्य ऋषियों के साथ महर्षि पिप्पलाद के श्रीचरणों में उपस्थित होते हैं।[5] सुकेशा, सत्यकाम,

---

2. ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः।
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम्।।
साङ्खायनाश्वलायनौ चैव माण्डूका बाष्कलास्तथा।
बह्वृचा ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः।। प्रथम खण्ड पृ0 23-24
3. शाकलस्य बाष्कलस्य चाम्नायद्वयस्यैतदाश्वलायनसूत्रं नाम प्रयोगशास्त्रमित्यध्येतृप्रसिद्ध सम्बन्धविशेषं द्योतयति। आ0श्रौ0सू0 भाष्य
4. ता एताश्चतस्त्र ऋचः शाखान्तरगता आश्वलायनेन पठिता द्रष्टव्याः। ऐत0ब्रा0 4.2
5. ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च
गार्ग्यः कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः
कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः
परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह
समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः। प्रश्न 1.1

सौर्यायणी, कोसलदेशनिवासी आश्वलायन भार्गवः तथा कबन्धी- सभी वेदाभ्यासी ब्रह्मनिष्ठ थे। परब्रह्मस्वरूप जिज्ञासु होकर महर्षि पिप्पलाद से प्राणविषयक प्रश्न पूछते हैं।[6]

यह महर्षि पिप्पलाद अथर्ववेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक हैं जो इन्हीं के नाम से **पिप्पलादसंहिता** रूप में प्रसिद्ध है। इस प्रकरण के अनुसार यह आश्वलायन अथर्ववेदीय मालूम पड़ते हैं अथवा ऋग्वेदीय होते हुए भी प्राणविद्याविषयकज्ञान महर्षि पिप्पलाद से प्राप्त करते हैं। यह कोसल प्रदेशीय है तथा अश्वल के आत्मज होने से आश्वलायन नामधारी हुए हैं। उपनिषद् तथा शंकराचार्य के मत से यही प्रतीत होता है—

कौसल्यश्च नामतोऽश्वलस्यापत्यमाश्वलायनः। शां.भा. 1.1

यह आश्वलायन महर्षि शौनक के शिष्य हैं। जो बह्वृच ऋग्वेदीय है तथा जिन्होंने नैमिषारण्य में द्वादशवर्षीय सत्र का अनुष्ठान किया था। श्रीमद्भागवत का वचन है कि इन्हीं आचार्य से आश्वलायन ने हौतृकर्म की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी[7] तथा इसी को इन्होंने आश्वलायनश्रौतसूत्र के रूप में निबद्ध किया—

भागवत के अनुसार शौनक बह्वृच ऋग्वेदीय आचार्य तथा वयोवृद्ध कुलपति हैं। इन्हीं के द्वारा नैमिषारण्य में आयोजित द्वादशवर्षीय दीर्घसत्र में आश्वलायन सम्मिलित हुए थे तथा इन्हीं से आश्वलायन ने होतृकर्म की प्रक्रिया ग्रहण की थी। महाभारत का यही आख्यान उग्रश्रवा ने सूत को जनमेजय द्वारा सम्पादित सर्पानुष्ठान के बाद सुनाया था। इस वर्णन के अनुसार यह आश्वलायन गुरुपैल के साक्षात् शिष्य नहीं हैं, जैसाकि चरणव्यूहभाष्यकार आचार्य महिदास का कथन है, अपितु यह महर्षि शौनक के साक्षात् शिष्य हैं।

आचार्य कात्यायनकृत **ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी** की टीका वेदार्थदीपिका में षड्गुरुशिष्य ने आश्वलायन को महर्षि शौनक का शिष्य बतलाया है और सर्वाधिक प्रबल प्रमाण है कि इन्होंने अपने ग्रन्थ आश्वलायनश्रौतसूत्र की सम्पूर्ति पर नमः शौनकाय नमः शौनकाय रूप से अपने श्रीगुरुदेव शौनक को प्रणाम किया है।[8] गुरुदेवनमन का यही शास्त्रीय विधान है। इससे सिद्ध होता है कि यह आचार्य आश्वलायन महर्षि शौनक के साक्षात् शिष्य हैं।

परन्तु इसके विपरीत पं० भगवद्दत्त ने तो शौनक को ही आश्वलायन का शिष्य बतलाया है अर्थात् आचार्य आश्वलायन गुरु हैं और शौनक इनके शिष्य। पं० भगवद्दत्त का कथन है

---

6. अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ।
   भगवन् : कुत एष प्राणो जायते। प्रश्न 3.1
7. इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्।
   वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत्।। भागवत 1.4.1
8. आ० गृ० सू. 4.9.45

कि यद्यपि शौनक प्रदर्शित सब नियम ऋग्वेद में नहीं मिलते, तथापि सम्भव है कि वे (ऋक्प्रातिशाख्य में) आश्वलायनशाखा में मिल जाए क्योंकि शौनक आश्वलायन का शिष्य था।''[9] और इस तरह इन्होंने आश्वलायन संहिता की स्थिति के विषय में भी सम्भावना व्यक्त की है। पर पं. भगवद्दत्त का यह कथन समीचीन नहीं प्रतीत होता क्योंकि स्वयं आचार्य आश्वलायन ने अपने ग्रन्थ आश्वलायन श्रौतसूत्र की सम्पूर्ति पर अपने श्रीगुरुदेव महर्षि शौनक को नमन किया है। यही अन्तः साक्ष्य सर्वाधिक प्रबल प्रमाण है। इसलिए आश्वलायन ही शिष्य हैं और महर्षि शौनक इनके गुरु। पर आश्वलायन के शिष्य शौनक इन महर्षि शौनक से भिन्न हो सकते हैं। यह नाम सादृश्य है।

महर्षि शौनक प्रोक्त चरणव्यूह में ऋग्वेद की 5 शाखाओं का नाम ग्रहणपूर्वक उल्लेख है, इनमें आश्वलायन शाखा प्रथम स्थान पर प्रतिष्ठित है। इस शाखा के प्रवचनकर्त्ता आश्वलायन ही हैं।

आश्वलायनगृह्यसूत्र में ऋषितर्पण के प्रकरण में 23 ऋषियों का नाम ग्रहणपूर्वक उल्लेख हुआ है इन ऋषियों में आश्वलायन भी परिगणित है।[10]

व्याडिमुनिकृत विकृतिवल्ली 1-4 की टीका में भट्टाचार्य गंगाधर का वचन है कि गुरु शाकल के शाखा प्रवर्त्तक 5 शिष्यों में आश्वलायन भी हैं—

शाकलस्य शतं शिष्याः....पञ्चैते शाकलाः शिष्याः शाखाभेदप्रवर्त्तकाः।

यहाँ पर आश्वलायन को शाकल का शिष्य कहा गया है और यह एक शाखा के प्रवर्त्तक हैं। जबकि चरणव्यूह के अनुसार यह गुरु पैल के साक्षात् शिष्य है। यद्यपि पुराणों ने इनको गुरुपैल का साक्षात् शिष्य नहीं बतलाया है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में (3.3.1) उल्लेख है कि महाराज जनक ने बहुदक्षिणायुक्त यज्ञ का अनुष्ठान किया। विदेहराज के इस यज्ञ को होता ऋत्विक् के रूप में आचार्य अश्वल ने सम्पन्न कराया था। इन्हीं के पुत्र आश्वलायन हैं और पितृपरम्परा के अनुसार यह ऋग्वेदीय आचार्य हैं। यह अश्वल कुरु या पाञ्चाल देशीय ब्राह्मण हैं।

महाभारत अनुशासनपर्व 7-54 के अनुसार आश्वलायन का गोत्र विश्वामित्र हैं।

---

9. वैदिकवाङ्मय का इतिहास, पृ0 121
10. सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारत............
सांख्यायनमैत्तरेयं महैतरेयं शाकलं बाष्कलं...........
शौनकमाश्वलायन ये चान्ये आचार्यास्ते
सर्वे तृप्यन्तु इति। आ.गृ.सू. 3.4.4

आयुर्वेदीय चरकसंहिता 1-5 में उल्लेख है कि हिमालय पर सुस्वास्थ्य तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति किस साधन से होगी, इसके बोध हेतु एकत्र ऋषियों में आश्वलायन भी थे।

पं. भगवद्दत्त अपने ग्रन्थ वैदिक वाङ्मय का इतिहास में ऋग्वेद की 27 शाखाओं का नामोल्लेख करते हैं, इनमें आश्वलायनशाखा दशम स्थान पर स्थित है। पृ0 191

व्याकरणमहाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि अपने महाभाष्य में 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् रूप से ऋग्वेद की 21 शाखा संख्या का उल्लेख करते हैं पर शाखाओं का नाम नहीं। चरणव्यूहभाष्य में आचार्य महिदास आश्वलायन संहिता में 1207 पदों की स्थिति का तथा 4 मन्त्रात्मक वर्गों का उल्लेख करते हैं।[11]

मनुस्मृति की टीका में आचार्य मेधातिथि ने ऋग्वेद की 21 शाखाओं में आश्वलायन को ग्रहण किया है—

एकविंशति बाह्वृच्या आश्वलायन-ऐतरेयादि भेदेन।(2-6)

कवीन्द्राचार्य सूचीपत्र पृ0 1 संख्या 29 पर आश्वलायन संहिता तथा ब्राह्मण का उल्लेख है। बीकानेर सूची पत्र सं0 38, 47, 62 में आश्वलायन शाखा का उल्लेख है संख्या 38 अष्टमाष्टक का है।

॥ इति अष्टमाष्टके अष्टमोऽध्यायः॥

विशेषता है कि वर्ग 49 के अनन्तर 5 मन्त्रात्मक 50वाँ वर्ग है। इति दशमं मण्डलम्। मन्त्र हैं—1. संज्ञानमुशना 2. संज्ञानंनः स्वेभ्यः 3. यत्कक्षीवां सं संवननं पुत्रो 4.सं वो मनांसि 5. तच्छंयोरा वृणीमहे।

इन सभी विवरणों से आचार्य आश्वलायन का ऋषित्व तो सिद्ध ही होता है। ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक हैं। इन्हीं के नाम से यह संहिता प्रख्यात है। श्रौतसूत तथा गृह्यसूत्र के भी यहीं कर्त्ता हैं। पर इनका शिष्यत्व विचारणीय है। एक शिष्य अनेक गुरुदेवों से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करता है। व्यासदेव ने एक ही वेद का चतुर्धा विभाजन करके ऋक्संहिता को पैल को प्रदान की। पुनः गुरु पैल ने इस संहिता को 5 शिष्यों को प्रदान किया। इस तरह आश्वलायन गुरुपैल के ही शिष्य है। चरणव्यूहभाष्यकार आचार्य महिदास का कथन सुसंगत है। इन्होंने इन पाँचों शिष्यों को एकवेदिन् कहा है। बृहदारण्यकोपनिषद् तथा विकृति वल्ली की टीका में इनको शाकल का शिष्य कहा गया है। इसका अभिप्राय है कि गुरुपैल से प्रथमतः ऋक्संहिता को शाकल ने ग्रहण किया, तदनन्तर शाङ्खायन आश्वलायन, बाष्कल

11. सप्ताधिक द्वादशशतानि (1207) पदानि इत्याश्वलायनाम् आश्वलाययनां चतुर्ऋचात्मको वर्गः।

माण्डूकायन ने। इस तरह प्रधानता आचार्य शाकल की है। वरीयता होने से वह गुरु स्थानीय है। महर्षि पिप्पलाद से यह प्राणविद्याविषयक जानकारी प्राप्त करते हैं। अतः यह महर्षि भी आश्वलायन के गुरुकल्प हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र की सम्पूर्ति पर जिन गुरुदेव शौनक को इन्होंने नमन किया है, वस्तुतः यही ऋग्वेदीय आचार्य और नैमिषारण्य स्थित गुरुकुल की वयोवृद्ध कुलपति हैं इन्हीं से इन्होंने होतृकर्म की पूरी शिक्षा ग्रहण की और इसी आधार पर इन्होंने अपने इस गृह्यसूत्र को परिपूर्णता प्रदान की। कार्य सिद्धि पर गुरुदेव नमन सर्वथा प्रासङ्गिक तथा शास्त्रीय विधान के अनुरूप है। अतः यह महर्षि शौनक के भी शिष्य हैं। पर चरणव्यूह, बृहद्देवतादि के कर्त्ता तथा पं. भगवद्दत्त द्वारा प्रस्तुत आचार्य शौनक से यह भिन्न है। वस्तुतः यह सब कुछ नाम सादृश्य के कारण है। शौनक नाम के अनेक आचार्य है। प्रातिशाख्यकार भी आश्वलायन के शिष्य हो सकते हैं। साथ ही काल की दृष्टि से भी चरणव्यूह जिसमें वेद की शाखाओं का निरूपण किया गया है उससे बहुत पूर्व संहिता को अनिवार्यतः होना चाहिए।

इस प्रकार आचार्य आश्वलायन का ऋषित्व सिद्ध ही है और यह ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक हैं। यह संहिता सम्प्रति उपलब्ध हो चुकी है तथा श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र पूर्वतः प्राप्त है।

आश्वलायन शाखा की प्राप्त पाण्डुलिपियों का विवरण

यथाऽनादिर्हरिः ख्यातो निदानं जगतां परम्।
तथा वेदोऽपि शास्त्राणां स्मृत्यादीनां महाशयः॥2॥

भगवान् श्रीहरिनारायण अनादि नित्य हैं, नामरूपात्मक सकल चराचरात्मक जगत् के यही मूल प्रभव है, इसी प्रकार वेद अनादि एवं नित्य है तथा समस्त शास्त्रों के यही मूल स्रोत हैं- चरणव्यूहभाष्य की भूमिका में आचार्य महिदास का हृदयोद्गार है। सृष्टि की तरह वेदों का भी प्रलय काल में केवल तिरोधान होता है और नवीन सृष्टि की तरह इन वेदों का भी प्रादुर्भाव होता है। दिव्य दृष्टि सम्पन्न ऋषियों को तपस् द्वारा इन वेदों की पुनः प्राप्ति हो जाती है। महाभारत में भगवान् वेदव्यास का यही वचन है—

युगान्ते ऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा॥ महाभा. वनपर्व

तपश्चर्या द्वारा ऋषियों ने सकल ज्ञाननिधान वेदों का प्रत्यक्ष दर्शन साक्षात्कार किया। इनका साक्षात्कार करने में असमर्थ अपनी दूसरी पीढ़ी को इन ऋषियों ने इस ज्ञाननिधि को प्रवचन द्वारा प्रदान कर दिया। प्रवचन द्वारा भी इस अनुपम ज्ञाननिधि को ग्रहण करने में

असमर्थ अक्षम अवरकोटि के ऋषियों के लिए वेद-वेदाङ्गों की रचना हुई। ऋषियों की तीन श्रेणियों का इस दिव्यज्ञाननिधि के ग्रहण करने में आचार्य यास्क अपने निरुक्त में उल्लेख करते हैं।[12]

इस प्रकार वेदनिधि का रक्षण ऋषियों की वंशपरम्परा एवं गुरु-शिष्यपरम्परा में होता रहा। रक्षण की यह मौखिक श्रुतिपरम्परा रही। ऋषियों तथा आचार्यों के भी अपने-अपने पृथक् परिवार, आश्रम, गुरुकुल थे। इस तरह प्रवाचक ऋषि-आचार्य के भेद, स्थानभेद तथा वाचिक परम्परा के कारण उच्चारण में भेद हो जाने से यह वेद-वृक्ष असंख्य शाखा-प्रशाखाओं से समृद्ध हो गया। मूलतः एक ही वेदतरु की बहुविध शाखाएँ हो गईं। यथा ई०पू० द्वितीय शताब्दी में स्थित भगवान् पतञ्जलि अपने व्याकरणमहाभाष्य में वेदों की 1131 शाखाओं का उल्लेख करते हैं।[13] पर सभी शाखाओं का पूरी तरह अध्ययन-अध्यापन न होने के कारण इनमें बहुत सी शाखाओं का लोप हो गया और इस प्रकार 13वीं शताब्दी में ऋग्वेद की 21शाखाओं में से केवल 5 ही सुरक्षित रहीं[14]—

1. आश्वलायन 2. शाङ्खायन 3. शाकल 4. बाष्कल तथा 5. माण्डूकायन।

पर ये पाँचों संहिताएँ भी सुरक्षित न रह सकी। केवल एक ही शाखा शाकलसंहिता हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित रही। अन्य चार संहिताएँ कालकवलित विनष्ट हो गई, ऐसा विद्वानों का मानना है।[15] उपलब्ध शाकलसंहिता के पूर्णरूप से प्रथमतः प्रकाशन का श्रेय जर्मनदेशीय विद्वान् मैक्समूलर को है। यह भारत देश नहीं आए। इंगलैण्ड स्थित संग्रहालयों में विद्यमान पाण्डुलिपियों का प्रयोग किया और महारानी विक्टोरिया के संरक्षण में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आर्थिक अनुदान से सायणभाष्य सहित इस शाकल संहिता को 6

---

12. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च। निरुक्त 1.6

13. चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाऽथर्वणो वेदः। पस्पशाह्निक

14. एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति।। चरणव्यूह 1.7.8

15. आश्वलायनों की संहिता तथा ब्राह्मणों का अस्तित्व किसी समय में अवश्य था, क्योंकि कवीन्द्रचार्य (17वीं शताब्दी) की सूची में इन ग्रन्थों का नामोल्लेख स्पष्टतः पाया जाता हैं। आज तो इस शाखा के केवल गृह्य तथा श्रौतसूत्र ही उपलब्ध होते हैं अर्थात् आश्वलायनगृह्य तथा आश्वलायनश्रौत के अतिरिक्त इस शाखा के अन्य अंश उपलब्ध नहीं होते।
पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय वैदिक साहित्य और संस्कृति, पञ्चमसंस्करण, पृ0 114

भागों में वर्ष 1849 से 73=-24 वर्षों में आक्सफोर्ड प्रेस से प्रकाशित किया। मैक्समूलर का यही संस्करण मानक बना। अध्ययन-अध्यापन, शोधकार्य में यही प्रचलन में रहा, अब तक प्रकाशित ऋग्वेद के सभी संस्करण प्रायः इसी की अनुकृति है क्योंकि अन्य शाखा की संहिताओं की उपलब्धि नहीं हुई थी, इसलिए प्रकाशित सभी संस्करणों में केवल ऋग्वेद या ऋक्संहिता का उल्लेख है, शाखा शाकलसंहिता का नहीं।

आश्वलायन तथा शाङ्खायनशाखाओं की उपलब्धि

पर यह अत्यन्त आह्लाद का विषय है कि कालकवलित मान ली गई ऋग्वेद की इन शाखाओं में से दो आश्वलायन तथा शाङ्खायन राजस्थान प्रदेश स्थित अलवर पैलेस लाइब्रेरी में पूरी तरह से सुरक्षित हैं। दोनों ही शाखाओं की संहिताएँ अपने- अपने पदपाठों सहित विद्यमान सुरक्षित है। वैदिक वाङ्मय तथा भारतीय संस्कृति के लिए यह महत्तम उपलब्धि है।

अलवर राज्य के परमधार्मिक विद्यानुरागी महाराजा सवाई विनय सिंह जूदेव (शासनकाल 1814 से 57 तक) को आश्वलायन तथा शाङ्खायन इन दोनों शाखाओं की संहितापाठ तथा पदपाठ की पाण्डुलिपियाँ हैदराबाद तथा अहमदनगर से प्राप्त हुई थीं। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा-महाराजा लोग युद्ध में विजयश्री लाभ के बाद उस विजित राज्य से हीरे रत्न, जवाहरात के साथ-साथ बहुमूल्य ग्रन्थों तथा विद्वान् पण्डितों को भी अपने राज्य में ले आया करते थे तथा यह भी मान्यता है कि परस्पर सम्मानभाव के प्रदर्शनार्थ एक राजा दूसरे राजा को उपहारस्वरूप ग्रन्थ भेंट किया करते थे। साथ ही यह भी बहुत बड़े आश्चर्य तथा सुन्दर संयोग की बात है कि ये सभी पाण्डुलिपियाँ पटना, वाराणसी, राजस्थान तथा गुजरात के कुछ क्षेत्रों में भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा लिखी गई थी। ये सभी समग्र रूप में कैसे हैदराबाद और अहमदनगर पहुँच गईं तथा पूर्ण सुरक्षित रूप में अलवर आ गई। महाराजश्री ने राजमहल में ही अपने निजी पुस्तकालय को और अधिक समृद्ध बनाया और वर्ष 1848 में पं० गङ्गाधरजोशी को लाइब्रेरियन बनाया और इस प्रकार सनातन संस्कृति के अत्यन्त बहुमूल्य निधि के संरक्षण हेतु अतीव महत्वपूर्ण कार्य किया। इसी बहुमूल्य सामग्री में आश्वलायन तथा शाङ्खायन की पाण्डुलिपियाँ भी थी।

पाण्डुलिपियों का स्वरूप

आश्वलायन तथा शाङ्खायन दोनों ही शाखाओं की पाण्डुलिपियाँ अष्टकक्रम में 8 भागों में सुव्यवस्थित हैं। संहितापाठ तथा पदपाठ दोनों की पाण्डुलिपियाँ पृथक् पृथक् हैं। आश्वलायन की (20+18=38 तथा शाङ्खायन की 8+17=25) और इस तरह लगभग 12000 पृष्ठों की कुल 63 पाण्डुलिपियाँ हैं। पाण्डुलिपियों के मुख्य पृष्ठ पर शाखानाम, संहितापाठ,

पदपाठ तथा समाप्ति पर प्रतिलिपि कर्त्ता का नाम, स्थान, समयादि का उल्लेख है। संहितापाठ तथा पदपाठ की पाण्डुलिपियाँ पृथक्-पृथक् हैं तथा भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रतिलिपिकर्त्ताओं द्वारा लिखी गई हैं। फिर भी संहितापाठ तथा पदपाठ दोनों पाठों में पूर्ण अनुरूपता है और इस तरह इनकी प्रामाणिकता प्रकाशित होती है। यथा—

आश्वलायन संहितापाठ

प्रथमाष्टक : क्रमाङ्क ५९ दुन्दुभिनाम संवत्सरे कार्त्तिक बहुल ८ इन्दुवासरे इदं पुस्तकं रावुलकोल्लुशायिभट्टनलिखितं।

पदपाठ क्रमाङ्क ६८ द्विवेदी सोमेश्वर सुत अचलेश्वरसुत वीरेश्वर जगदीश्वर पठनार्थं संवत् १७१० मार्गशीर्षशुक्ल त्रयोदशी भौमवार।

शाङ्खायन संहिता पाठ क्रमाङ्क—१६८१ वर्षे फाल्गुन शुक्ल प्रतिपच्छनिवासरेऽद्येह काश्यां कृष्णपुत्राणां अध्ययनार्थ श्रीरामायन लिखितं।

पदपाठ क्रमाङ्क 22- संवत् 1565 समये आश्विनवदि अष्टमी रवौ युवानाम संवत्सरे दक्षिणायने शरदृतौ तलेश्वरग्रामे लिखित शाके 1430 गोपीनाथ तत्पुत्र महादेवेन लिखितम्।

आश्वलायन तथा शाङ्खायनशाखाओं का वैशिष्ट्य—आश्वलायन तथा शाङ्खायन इन दोनों शाखाओं में शाकल से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ विद्यमान हैं और यही शाखाभेद में प्रमुख कारक बनती हैं। इनकी विशेष पहचान बनती है। यह वैशिष्ट्य मुख्यरूप से तीन दृष्टियों में परिलक्षित होता है—

1. मन्त्र संख्या 2. संहितापाठ तथा 3. पदपाठ।

1. मन्त्रसंख्या

इन तीनों संहिताओं में मन्त्रों की संख्या में पर्याप्त अन्तर है। शाकल संहिता में वालखिल्य सूक्तों को मिलाकर कुल मन्त्र संख्या 10552 है, शाङ्खायन में इनकी संख्या 10627 है और आश्वलायन में 10761। इन संहिताओं में मन्त्रों की संख्या में अन्तर के प्रमुख कारण है खिलमन्त्र। शाकल में जिन मन्त्रों को मूल न मानकर खिल माना गया है उन मन्त्रों को इन संहिताओं में मूलरूप से ग्रहण किया गया है।

इस तरह शाङ्खायन में 75 मन्त्रों को तथा आश्वलायन में 212 मन्त्रों को खिल न मानकर मूलरूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस तरह आश्वलायन संहिता में सर्वाधिक मन्त्र संख्या 10761 है। सुप्रसिद्ध 11 वालखिल्य सूक्तों में 80 मन्त्र हैं। इन सभी मन्त्रों

को शाकल में मूल नहीं माना गया है जबकि आश्वलायन ने इनमें से 3 मन्त्रों को छोड़कर 77 को मूल रूप में ग्रहण किया है तथा शाङ्खायन ने इन सभी मन्त्रों को मूलरूप में स्वीकार कर लिया है।

2. संहितापाठ

संहितापाठ विषयक कुछ भेद इन संहिताओं में देखा जाता है। यथा शाङ्खायन में सर्वत्र नियमित रूप से स्वर के पूर्व अवग्रह (ऽ) का प्रयोग मिलता है यथा—

स ऽ इद्देवेषु गच्छति 1-1.4; सोमा ऽ अरंकृताः 1-2-1; दक्षं दधाते ऽ अपसम् 1-2.9; विश्वे देवासोऽ अस्रिध ऽ एहि मायासो ऽ अद्रुहः 1.3.9।

सामान्यतः शाङ्खायन में च् त् द् म् व्यञ्जनों का द्वित्व प्रयोग मिलता है। यथा वर्त्तते वर्च्चसा मर्त्तासः मर्त्त्यम् वर्त्तिः सर्त्तवे धर्त्तास शूर्त्ता गर्द्दभं ततर्द्द शर्म्म दुर्म्मदः वर्म्म। शाङ्खायन में प्रत्येक अध्याय के अन्त में वर्गानुक्रमणी मिलती है, इस तरह अध्यायों में वर्गों की संख्या का बोध हो जाता है।

3. पदपाठ

पदपाठ में संयुक्त पदों के विच्छेदन में इन आश्वलायन तथा शाङ्खायन में शाकल से विशेष भेद दिखलाई पड़ता है। वहाँ पर शाकल के पदपाठ में समस्त पदों के विच्छेदन में केवल एक ही विधि अवग्रह (ऽ) का प्रयोग मिलता है वहीं पर इन दोनों संहिताओं में एतदर्थ तीन विधियाँ मिलती है—

1. अवग्रह (ऽ) का प्रयोग 2. शून्य (0) का प्रयोग तथा 3. अंक 2 का प्रयोग।

1. अवग्रह (ऽ) का प्रयोग

इव को समस्त पद से पृथक् करने में सर्वत्र अवग्रह (ऽ) का प्रयोग किया गया है। पितेव - पिताऽइव 1-1.9; उस्राइव - उस्राःऽइव 1.3.8; सुदुघामिव - सुदुघाम् ऽइव 1-4.1

2. शून्य (0) का प्रयोग

जहाँ पर दोनों पद स्वतन्त्र हैं, स्वर विषयक कोई विकार नहीं है वहाँ पर दोनों पदों को शून्य (0) द्वारा पृथक् किया गया है। यथा—

रत्नधातमम् - रत्न0 धातमम् 1.1.1; द्विवेदिवे - दिवे0 दिवे;
परिभूः - परि0 भूः 1.1.4; कविक्रतुः - कवि0 क्रतुः 1.1.5

3. अङ्क (2) का प्रयोग

विसर्गयुक्त प्रथम पद से द्वितीय पद को अङ्क 2 द्वारा पृथक् किया गया है। यथा—

पुरोहितम् - पुरः2 हितम् 1.1.1; चित्रश्रवस्तमः - चित्रश्रवः 2तमः 1.1.5
अहर्विदः - अहः 2 विदः 1.2.2; निष्कृतम् - निः 2 कृतम् 1.2.6

ऋग्वेद : आश्वलायन संहिता

राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में सुरक्षित पाण्डुलिपियों का विवरण

अष्टक	संहितापाठ/ पदपाठ	पाण्डुलिपि क्रमाङ्क	पत्र संख्या/ प्रतिपृष्ठ पंक्ति संख्या	प्रतिलिपिकर्त्ता : समय : स्थानादि
प्रथम	संहितापाठ	1	83/8	दवे अपिनुकेश्वर
		51	98/8	नागर ज्ञातीय दीक्षित शिवराम, संवत् 1759 माघवदि 2 शनिवार राजपुर दवेपाढ़ा
		59	70/10-12	रावुल कोल्लुशायिभट्ट दुन्दुभिनाम संवत्सर कार्तिकबहुल अष्टमी इन्दुवासर
	पदपाठ	68	146/7	द्विवेदी सोमेश्वर सुत अचलेश्वर सुत वीरेश्वर जगदीश्वर संवत् 1710 मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी भौमवार
	पदपाठ	76	-	रामनारायणभट्ट लावाड शक 1722 रौद्रनाम संवत्सर वैशाख शुद्ध चतुर्दशी बुधवार
द्वितीय	संहितापाठ	52 60	68/10 77/8	संवत् 1804 आषाढ़ शुक्ल
	पदपाठ	69 77	134/8 72/9	कृपाशंकर संवत् 1710 चैत्रशुदि 15 बुधवार संवत् 1804 आषाढ़ शुक्ल 13

तृतीय	संहितापाठ	53 61	98/8 72/89	 रावुलकोल्लुशायिभट्ट, चन्द्रभान रूधिरोद्गारिनाम संवत्सर वैशाखशुद्धप्रतिपद् गुरुवार संवत् 1804 आषाढ़ शुक्ल 13
	पदपाठ	70	121/8	नागर ज्ञातीय देव कृपाशंकर, सूर्यपुर संवत् 1710 पौषवदि 8शनिवार
		78	126/9	नारायणभट्ट लावाड सिद्धार्थी-नाम संवत्सर शकसंवत् 1721 फाल्गुन शुद्ध अष्टमी भौमवार
चतुर्थ	संहितापाठ	54	175/5-7	रामचन्द्र, काशी संवत् 1811 कार्त्तिककृष्ण द्वितीया गुरुवार
		62	74/10-12	रावुल कोल्लुशायिभट्ट संवत् 1804 आषाढ़ शुक्ल 13 (रुधिरोद्गारि संवत्सर आश्वीज शुद्धद्वितीया गुरुवार)
	पदपाठ	79	139/9	नारायण भलावाड सिद्धार्थी-नामसंवत्सर शक संवत् 1721 माघशुक्ल 11, सोमवार
		80 -	79/8-9 30/6	अनन्तदेव अपूर्ण वर्ग 28 तक पञ्चमाध्याय श्रीराम पुस्तक - अपूर्ण अध्याय 1'2, वर्ग 4 तक

पञ्चम	संहितापाठ	55	112/7-8	सामकोष वनभट्ट; सुत बैजनाथ भट्ट पिंगल नामसंवत्सर 1771 शक संवत् 1636 आषाढ़ शुद्ध अष्टमी भौमवार
	पदपाठ	81	101/8-9	
षष्ठ	संहितापाठ	56	89/8	संवत् 1758 चैत्रशुदि 1 बुधवार
	पदपाठ	83	93/12	कलयुक्तनाम संवत्सर शकसंवत् 1720 माघशुद्ध 1 प्रतिपद् भौमवार
		84	104/12	रावुल कोल्लुशायिभट्ट सर्वजितुनामसंवत्सर माघ बहल द्वादशी इन्दुवासर (वालखिल्यसूक्तपदपाठ)
सप्तम	संहितापाठ	57	61/10	भैरव ब्राह्मण पोथी उपशंकर संवत् 1580 माघकृष्ण 1 गुरुवार
	पदपाठ	-	63/7	कृपाशंकर
अष्टम	संहितापाठ	58	100/8	व्यास आनन्दराम गंगाराम, पटना संवत् 1758 माघवदि 4 रविवार
	पदपाठ	82	95/10-12	नारायण भट्ट लावाड कालयुक्तनामसंवत्सर शक संवत् 1720 मार्गशीर्ष वदि 9 सोमवार
		85	120/9-10	नारायणभट्ट पुत्र क्षीमणभट्ट माण्डोगणवासी क्रोधनाम-संवत्सर भाद्रमास
	संहिता	66	48/7	लक्ष्मी-पावमानी-पुरुष-वागादि सूक्तसंग्रह

आश्वलायनसंहिता का प्रकाशन

वेदों में प्रथम ऋग्वेद व्याकरणमहाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि के समय ई0पू0 द्वितीय शताब्दी में 21 शाखाओं से संवलित था- एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् गुरु-शिष्य की अत्यन्त उदात्त श्रुतिपरम्परा में ये सभी शाखाएँ सुरक्षित रहीं, पर यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से आगे नहीं चल सकीं। फलस्वरूप 13वीं शताब्दी ई0 सन् में इसकी केवल 5 ही शाखाएँ सुरक्षित रहीं जैसाकि आचार्य शौनक अपने चरणव्यूह में नामग्रहणपूर्वक इन 5 शाखाओं का उल्लेख करते हैं[16]—

1. आश्वलायनी 2. शाङ्खायनी 3 शाकला 4 बाष्कला तथा 5 माण्डूकायनी।

इसका यही अभिप्राय है कि इस समय तक ऋग्वेद की 5 शाखाएँ सुरक्षित थीं। यहाँ पर आश्वलायन का प्रथम स्थान पर उल्लेख है। पर यह भी अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि ई0 सन् 634 में स्थित ऋग्वेद के प्रथम भाष्यकार आचार्य स्कन्द स्वामी को ये सभी संहिताएँ उपलब्ध नहीं हो पाई थीं, उन्होंने केवल शाकल पर ही अपना भाष्य प्रस्तुत किया, अन्य संहिताओं के सम्बन्ध में वे मौन हैं और यही स्थिति आचार्य नारायण, उद्गीथ और वेंकटमाधव की भी रही। यहाँ तक कि आचार्य सायण (1315-87) ने भी इसी शाकलसंहिता पर अपना भाष्य प्रस्तुत किया है और अन्य संहिताओं के विषय में वे भी कुछ भी उल्लेख नहीं करते। परवर्ती सभी भाष्यकारों ने भी इसी संहिता का भाष्य या अनुवाद किया है। अध्ययनाभावात् शाखाभावः गुरु-शिष्य की श्रुतिपरम्परा में अध्ययन क्रम के न चलते रहने के कारण अन्य शाखाएँ विलुप्त हो गईं। इस परम्परा में केवल शाकलसंहिता ही सुरक्षित एवं प्रचलित रही। यह भी अत्यन्त विचित्र सी बात है कि सुप्रख्यात महानाम्नी ऋचाओं का विनियोग ऐतरेय ब्राह्मण में बतलाया गया है[17] पर ये ऋचाएँ शाकलसंहिता में नहीं हैं। इसीलिए इस संहिता में उपलब्ध न होने के कारण आचार्य सायण ने इनको दशतयी संहिता से ऊर्ध्वगामिनी मान लिया।[18] जबकि ऐतरेय ऋग्वेदीय ब्राह्मण है, इसलिए इन ऋचाओं को अपनी शाखा की संहिता में अनिवार्यतः होना चाहिए। ये ऋचाएँ आश्वलायन तथा शाङ्खायन इन दोनों संहिताओं में विद्यमान है।

---

16. एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति।। 1.7, 8

17. महानाम्नीष्वत्र स्तुवते शाक्वरेण साम्ना रथन्तरेऽहनि पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम् ।।
ऐत.ब्रा.22.2
विदा मघवन् इत्यादयो नवर्चो महानाम्नीसंज्ञकाः। तासुद्गातारः शाक्वराख्येन साम्ना स्तुवते।
सायणाचार्यः

18. या एता महानाम्न्यः सन्ति ताः सीम्न ऊर्ध्वा अभ्यसृजत।
अग्निमीळे इत्यारभ्य यथा वः सुसहासतीत्यन्तां दशतयीनां सीमा तस्याः सीम्न ऊर्ध्वभाविनीः कृत्वा प्रजापतिरभितः सृष्टवान् अत एवैताः संहिताः संहितायां नाऽऽम्नायन्ते। ऐत. ब्रा. भाष्य 22.2

राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में स्थित आश्वलायन तथा शाङ्खायन की इन पाण्डुलिपियों के अवलोकन का परम सौभाग्य भगवान् वेद की ही कृपा और सम्पूज्य श्रीगुरुदेवों के शुभाशीर्वचन से वर्ष 1968 में मुझे मिला। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के तत्कालीन निदेशक वेदमनीषी डॉ० फतह सिंहजी के निर्देशन में जोधपुर विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ० लक्ष्मीनारायणशर्मा, डॉ. श्रद्धा चौहान तथा स्वयं मैं, इन तीन शिक्षकों द्वारा प्रकाशित शाकल संहिता के साथ इन पाण्डुलिपियों का तुलनात्मक गहन अध्ययन किया गया, फलस्वरूप शाकल से बहुत रूप में भिन्न इनके पृथक् स्वरूप की पहचान हुई और आचार्य शौनक के कथन तथा पण्डितप्रवर आचार्य बलदेव उपाध्याय द्वारा व्यक्त सम्भावना की ही नहीं, अपितु प्रबल आशा की सम्पुष्टि हो गई।

अतः प्रतिष्ठान द्वारा आश्वलायन तथा शाङ्खायन इन दोनों ही संहिताओं की पृथक् पृथक् प्रकाशन की योजना प्रकल्पित की गई, इनके सम्पादन का कार्य प्रगति पर रहा, पर वर्ष 1970 में निदेशक महोदय के सेवा-निवृत्त हो जाने के कारण यह प्रकाशन योजना मूर्तरूप न ले सकी। पर मैं ऋषियों की इस बहुमूल्य धरोहर के उद्धार के प्रति प्रयत्नशील रहा, अनेक निबन्धों का प्रकाशन कराया, सङ्गोष्ठियों में विद्वज्जनों का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट किया। यथा—

प्रथम निबन्ध—

Śākhās of the Ṛgveda : All- India Oriental conference,

Journal, V- 32, Jadavpur University, Calcutta, Oct. 1969

द्वितीय निबन्ध—

ऋग्वेद शाखा विमर्श, प्रज्ञा : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
शोध पत्रिका, अक्टूबर : 1970

इसी समय काशी से महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्द सरस्वती महाराज के प्रधान सम्पादकत्व एवं निरीक्षण में **भगवान् वेदः** का प्रकाशन कार्य चल रहा था। इसके सम्पादकमण्डल में जोधपुर विश्वविद्यालय, संस्कृत विभागाध्यक्ष स्वामी सुरजनदास जी तथा मेरे पूज्य गुरुदेव (का०हि०वि० में, उस समय) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में वेदविभागाध्यक्ष आचार्य प्रवर पं० गोपालचन्द्र मिश्र जी भी थे। वेदनिधिरक्षण के प्रति जागरूक सम्पूज्य स्वामीजी ने महामण्डलेश्वर, काशी उदासीन संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य स्वामी योगीन्द्रानन्दजी तथा मेरे श्रीगुरुदेव पं. मिश्र जी को जोधपुर आमन्त्रित किया। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के निदेशक डॉ० फतहसिंह जी के साथ इन सभी मनीषियों ने अलवर

से जोधपुर मँगवाई गईं इन आश्वलायन तथा शाङ्खायन की पाण्डुलिपियों की समीक्षा की तथा स्वयं मैंने इनका सुविस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। गहन विचार-विमर्शपूर्वक इन विद्वन्मनीषियों ने शाकल से भिन्न इन दोनों ही संहिताओं की मौलिकता की सम्पुष्टि की। इसी के फलस्वरूप सम्पूज्य महामण्डलेश्वरजी ने **भगवान् वेदः** में ऋग्वेदः के साथ शाकल शाखा यह विशेषण जोड़ दिया अन्यथा इससे पूर्व केवल ऋग्वेदसंहिता या ऋक्संहिता नामकरण चला आ रहा था। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में प्रथमतः पहली बार ऋग्वेद के साथ शाकलशाखा का उल्लेख हुआ।

पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित पड़ी हुई ऋग्वेद की आश्वलायन तथा शाङ्खायन इन दो संहिताओं के उद्धार का शुभ समय आ गया। यह सुन्दर सुखद संयोग ही रहा कि मेरे द्वारा प्रकाशित निबन्धों की ओर राजस्थान कोटा महाविद्यालय में डॉ० फतह सिंह जी के श्रेष्ठ शिष्यकल्प रहे वेदविद्या के विशिष्ट विद्वान् तथा बाम्बे हास्पिटल में हृदय रोग विशेषज्ञ- हार्ट स्पेशलिस्ट सर्जन रहे उस समय जयपुर निवासी डॉ. गिरिधारी शर्मा जी का ध्यान आकृष्ट हुआ। वर्ष 1968 से ऋषियों के अत्यन्त बहुमूल्य निधि धरोहर के अध्ययन एवं उद्धार में संलग्न मुझको उन्होंने अनेक पत्रों द्वारा प्रेरित प्रोत्साहित किया और अपने आवास पर बुलाया। साथ ही होशियारपुर स्थित विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान में वेदों के उत्कृष्ट विद्वान् और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग में अध्ययनशील रहे मेरे बड़े गुरु भाई श्रद्धेय डॉ० ब्रज बिहारी चौबे जी को भी अपने आवास पर आमन्त्रित किया। चौबे जी से उन्होंने मेरी बात कराई तथा उन्होंने ही चौबेजी को आश्वलायन तथा मुझे शाङ्खायन के सम्पादन हेतु अनुरोध किया और माननीय चौबे जी ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप ऋग्वेद की कालकवलित विलुप्त मान ली गई दो संहिताएँ प्रकाश में आ गई और वैदिक वाङ्मय के इतिहास में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संवर्द्धन है।

डॉ० चौबेजी द्वारा प्रस्तुत आश्वलायनसंहिता प्रकाशन योजना को इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र नई दिल्ली ने स्वीकृति प्रदान कर दी तथा राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ने चौबेजी को आश्वलायन की पूरी सामग्री प्रकाशनार्थ सुलभ करा दी।

अलवर पैलेस स्थित प्रतिष्ठान की इस शाखा से इस सामग्री को उपलब्ध कराने में सुन्दर सहयोग रहा डॉ० प्रभाकर शास्त्री जी. पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर तथा डॉ० नीरज शर्मा जी, संस्कृत विभागाध्यक्ष अलवर महिला महाविद्यालय का। फलस्वरूप पदपाठसहित आश्वलायनसंहिता के प्रकाशन का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य सुसम्पन्न हो गया। यह संहिता प्रकाश में आ गई और वैदिक वाङ्मय के इतिहास में एक नया

अध्याय जोड़ने का गौरव यशोधनी डॉ० चौबेजी को मिल गया। पर डॉ० चौबे जी ने आश्वलायन की अपनी भूमिका में इन तथ्यों का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। आभार प्रदर्शन में अन्य महानुभावों के साथ डॉ० गिरिधरशर्माजी का केवल नाम ग्रहण किया है उनके महत्त्वपूर्ण योगदान का नहीं।

वर्ष 1968 से मेरे द्वारा निरन्तर किए गए कार्यों एवं प्रकाशित निबन्धों के विषय में वे पूरी तरह मौन हैं। इस ग्रन्थ की भूमिका के प्रारम्भ में ही वह लिखते हैं कि अलवर पैलेस स्थित आश्वलायन विषयक जानकारी उनको वर्ष 1990 में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर द्वारा आयोजित एक संगोष्ठी में मिली जबकि प्रतिष्ठान द्वारा अपनी प्रकाशन योजना में इन दोनों ही संहिताओं का प्रकाशन सम्मिलित किया जा चुका था। वे लिखते हैं—

Asvalayana preface

It gives me immense pleasure to present in the hands of vedic scholars the critical edition of the Asvalayana Samhita (Asvs) of the Rgveda published for the first time. It ws in 1990 when I had gone to Jodhpur to attend a seminar, organized by the Rajasthan Prachyavidya Pratisthan (RPVP), Jodhpur, that to my great pleasure, it came to my notice that some MSS of the Asus were at the Alwar branch of the Pratishthan. I requested to Padmadhar Pathak, the then Director of the RPVP, Jodhpur to make me available the photostat copies of the MSS of the Asvs, deposited there. Due to his efforts I could get the photostat copies of the 8 Astakas.

पर माननीय चौबे जी का यह कथन सत्य नहीं है। वर्ष 1990 से बहुत पूर्व वेदों की शाखाओं सम्बन्धी मेरे अनेक निबन्ध प्रकाशित हो चुके थे और Śākhās of the Ṛgveda मेरा पहला निबन्ध।

ALOC Jadavpur University Calcutta—में अक्टूबर 1969 में छप चुका था और मेरे इस निबन्ध का स्वयं इन्होंने ही उ0प्र0 संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित "संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास प्रथम खण्ड वेद, जिसके वे स्वयं ही सम्पादक हैं, उल्लेख किया है—

'राजस्थान प्राच्यविद्या संस्थान के अलवर हस्तलेख संग्रह में आश्वलायन-शाखोक्त मन्त्रसंहिता का एक हस्तलेख सुरक्षित है जिसके आधार पर राजस्थान प्राच्य शोध संस्थान जोधपुर ने पदपाठसहित आश्वलायन संहिता के सम्पादन की योजना बनाई थी।[19]

19. डॉ० अमल धारी सिंह 'ऋग्वेद की शाखाएँ अ0भा0प्रा0 वि0सं0 पत्र संक्षेप यादवपुर यूनिवर्सिटी, कलकत्ता, 1969 पत्र संख्या बी. 32 पृ0 2-26

संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास प्रथम खण्ड-वेद, सं. प्रो० व्रजबिहारी चौबे उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ 1996 प्रथम सं. पृ0 113-114

मेरे इस निबन्ध में शाकल, बाष्कल तथा पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित आश्वलायन एवं शाङ्खायन का विवरण दिया हुआ है यथा—

In the 4th Adhyaya of 4th Astaka, after Varga 34 there is a khila of 5 Sūktas, known as Śrī Sūkta in the śākalā and śāṁkhāyan, but is read as original in the Āśvalāyana.... The 64th Adhyaya of śākalā ends with varga 49, Śāṁkhayana with varga 63 and this Adhyaya ends with varga 64 in the Āśvalāyana.

वस्तुतः अलवर पैलेस लाइब्रेरी स्थित आश्वलायन तथा शाङ्खायन की इन पाण्डुलिपियों के अवलोकन का प्रथमतः सौभाग्य वर्ष 1968 में मुझे मिला। यह लाइब्रेरी राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के अन्तर्गत आ गई थी, इसलिए प्रतिष्ठान के निदेशक वेद मनीषी डॉ0 फतह सिंह जी ने उस पूरी सामग्री को अलवर से जोधपुर प्रधान कार्यालय पर मँगा ली और प्रकाशित शाकलसंहिता के साथ इस सामग्री के तुलनात्मक गहन अध्ययन में जोधपुर विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के तीन शिक्षकों डॉ0 लक्ष्मीनारायण शर्मा, डॉ0 श्रद्धा चौहान तथा मुझको लगा दिया तथा प्रतिष्ठान के शोध अधिकारी एवं लिपि विशेषज्ञ पं0 लक्ष्मीनारायण गोस्वामी जी को भी इस कार्य में संलग्न कर दिया। इस अध्ययन के फलस्वरूप ही इस सामग्री के विषय में मेरा प्रथम निबन्ध Śākhās of the Ṛgveda Oct. 1969 में प्रकाश में आ गया। डॉ0 फतह सिंह जी के ही अनुरोध पर संस्कृत विभागाध्यक्ष स्वामी सुरजन दास जी ने काशी से मेरे सम्पूज्य गुरुदेव डॉ0 गोपाल चन्द्र मिश्र जी, महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्द जी तथा स्वामी योगीन्द्रानन्दजी को जोधपुर आमंत्रित किया और इन मनीषियों द्वारा आश्वलायन तथा शाङ्खायन दोनों शाखाओं की मौलिकता की सम्पुष्टि हुई और इनके प्रकाशन की योजना बनी जो अपूर्ण रही। फिर भी मैं डॉ0 फतह सिंह जी के संकल्प की पूर्ति में बराबर संलग्न रहा। सम्पूज्य गुरुदेव मिश्र जी तथा डॉ0 गिरिधारी शर्मा जी मुझे बराबर प्रोत्साहन प्रदान करते रहे और इस तरह मेरे द्वारा सम्पादित शाङ्खायन संहिता का प्रकाशन वर्ष 2012-13 में चार भागों में हो गया।

इस प्रकार आज ऋग्वेद की कालकवलित विलुप्त मान ली गई जो दोनों संहिताएँ प्रकाश में आ गई हैं, इसका मुख्य श्रेय तो डॉ0 फतह सिंह जी को ही है उन्होंने इनको अलवर से जोधपुर मँगाकर इनका समीक्षण कराया, काशी से वैदिकों को जोधपुर आमन्त्रित करके इनकी मौलिकता की सम्पुष्टि कराई, इन दोनों संहिताओं के पृथक् पृथक् प्रकाशन की

योजना बनाई, जो पूर्ण न हो सकी, अन्यथा डॉ0 चौबे जी को वर्ष 1990 में जोधपुर संगोष्ठी में आने पर आश्वलायन विषयक जानकारी कहाँ से और कैसे मिल पाती। प्रकाशन कार्य के प्रति डॉ0 चौबे जी तथा मुझको प्रेरणा-प्रोत्साहन देने वाले श्रद्धेय डॉ0 गिरिधारी शर्मा जी का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।

फिर भी अपनी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत आश्वलायन संहिता के प्रकाशनार्थ इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र का कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है तथा अपने सम्पादन कर्म द्वारा आश्वलायन ऋषि की धरोहर को संरक्षित करके श्रद्धेय डॉ0 चौबे जी समुज्ज्वल अक्षय सुकीर्ति से संविभूषित हो गए। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ गए।

इस तरह इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र नई दिल्ली की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत वेदों के उद्भट विद्वान् और मेरे बड़े गुरुभाई श्रद्धेय डॉ0 ब्रज बिहारी चौबे जी द्वारा सम्पादित सुविस्तृत भूमिका संवलित पदपाठ सहित आश्वलायन संहिता का दो भागों में वर्ष 2009 में प्रकाशन हो गया। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में यह महनीय महत्त्वपूर्ण योगदान है, इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ गया और ऋषियों की धरोहर का संरक्षण हो गया।

इस संस्करण में मण्डल तथा अष्टक दोनों ही क्रमों को अपनाया गया है। यद्यपि अलवर पैलेस लाइब्रेरी में स्थित इस आश्वलायनशाखा की संहितापाठ तथा पदपाठ की सभी पाण्डुलिपियाँ अष्टकक्रम में 8 भागों में सुव्यवस्थित है। जैसाकि इन सभी का विवरण डॉ0 चौबे जी ने भूमिका भाग में दिया है। पर इस संस्करण को उन्होंने शाकल संस्करण के अनुकरण पर मण्डलक्रम में व्यवस्थित कर दिया है। यद्यपि साथ-साथ अष्टकक्रम का भी उल्लेख किया है पर मण्डलक्रम को उन्होंने वरीयता प्रदान की है और इस तरह सूक्तों की संख्या में अन्तर आ गया है। शाकल से इसमें 14 सूक्त अधिक है।

इस तरह इस आश्वलायनसंहिता में 10 मण्डल 85 अनुवाक 1042 सूक्त तथा 10761 मन्त्र हैं और अष्टक क्रम के अनुसार इसमें 8 अष्टकः 64 अध्याय तथा 2055 वर्ग है। इस प्रकार शाकल से इसमें 14 सूक्त, 31 वर्ग तथा 209 मन्त्र अधिक हैं।

आश्वलायनसंहिता का स्वरूप

व्याकरणमहाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि द्वारा एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् संख्या के रूप में तथा महर्षि शौनक द्वारा नामग्रहणपूर्वक उल्लिखित आश्वलायन संहिता जो राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित थी, अब यह संहिता प्रकाश में आ चुकी है। वेदविद्या के सुप्रख्यात आचार्य डॉ0 ब्रजबिहारी चौबे द्वारा सम्पादित इस संहिता का इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2009 में दो भागों में प्रकाशन किया गया है। महर्षि वेदव्यास द्वारा पैल को प्रदान की गई ऋक्संहिता श्रुतिपरम्परा के कारण कई शाखाओं

में विभक्त हो गई, इस तरह इन शाखाओं में परस्पर साम्य होने पर भी कुछ भेद भी हो गए और इन्हीं विशेषताओं के कारण भिन्न-भिन्न संज्ञाओं से ये शाखाएँ प्रसिद्ध हो गईं। इस प्रकार महर्षि शौनक उल्लिखित आश्वलायन, शाङ्खायन, शाकल, बाष्कल तथा माण्डूकायन में कुछ अपनी अपनी विशेषताएँ आ गईं। वर्ष 1849 से 73 तक मैक्समूलर द्वारा प्रथमतः प्रकाशित शाकलसंहिता ही अब तक अध्ययन में प्रचलित रही। इस संहिता से आश्वलायन के कुछ महत्वपूर्ण भेद है। वालखिल्यसूक्तों को छोड़कर शाकल से इस संहिता में 212 मन्त्र अधिक हैं।

शाकल से आश्वलायन में अतिरिक्त मन्त्रों का विवरण

80 मन्त्रात्मक एकादश वालखिल्य सूक्तों में से 3 मन्त्रात्मक दशम सूक्त को इसमें नहीं ग्रहण किया गया है। इस तरह 10 वालखिल्य सूक्तों सहित इस संहिता में कुल 10472+77+ 212=10761 मन्त्र हैं अर्थात् शाकल से इसमें 209 मन्त्र अधिक हैं। अष्टम मण्डल में स्थित एकादश वालखिल्य सूक्तों में से एक सूक्त को न सम्मिलित करने के कारण इस संहिता के इस मण्डल में सूक्तों की संख्या (103-1) 102 ही है।

आश्वलायन संहिता में अतिरिक्त मन्त्रों की स्थिति

शाकलसंहिता से इस आश्वलायन में विद्यमान अतिरिक्त 212 मन्त्रों की स्थिति दो प्रकार की है—

अ. कुछ मन्त्र शाकलगत सूक्तों के अन्तर्गत ही विद्यमान हैं। इनकी स्थिति सूक्तों के अन्तिम भाग के रूप में हैं। इस तरह इसमें शाकल से 40 मन्त्रों तथा 3 वर्गों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो गई है।

आ- कुछ मन्त्र इस संहिता में पूरे के पूरे अतिरिक्त सूक्त के रूप में विद्यमान है। इस तरह के मन्त्रों की संख्या 172, वर्गों की 31 तथा सूक्तों की 15 है। इस प्रकार आश्वलायन संहिता में कुल 1042 सूक्त 2055 वर्ग तथा 10761 मन्त्र है।

(अ) शाकल संहिता से आश्वलायन में विद्यमान अतिरिक्त मन्त्रों का विवरण

क्रम सं.	मण्डल	सूक्त ऋषि मन्त्र संख्या वर्ग संख्या
1	प्रथम	191 के अनन्तर अगस्त्य 16, 3 विषघ्नोपनिषद् मा बिभे.... मां विषसर्पतः, सर्पवृश्चिक विषनिवारणार्थ प्रसिद्ध सूक्त 191 के अन्तर्गत ही 2 वर्गो में विभक्त 10 मन्त्र अधिक अतिरिक्त मन्त्रों की विषयवस्तु मूलमन्त्रों के समान
2	पञ्चम	44 में 15 मन्त्रों के अनन्तर केवल एक मन्त्र जागर्षि त्वं भुवने..... नाम गोनाम् ।।16 ऋषिः अवत्सारः काश्यपः

3	पञ्चम	49 में 5 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र सूक्तान्ते तृणान्य.... भवति श्रुवम् ।।6।। ऋषिः आत्रेयः प्रतिप्रभः
4	पञ्चम	51 में 15 मन्त्रों के अनन्तर 2 मन्त्र स्वस्त्ययनं...... ष्वभयं नो अस्तु ।।17 ऋषिः स्वस्त्यात्रेयः
5	पञ्चम	84 में तृतीय 3 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र वर्षन्तु ते विभावरि..... ब्रह्मद्विषों जहि।।4 ऋषिः अत्रि भौम
6	षष्ठम	44 में 24वें मन्त्र के अनन्तर, 3 मन्त्र चक्षुश्च श्रोत्रं च.... च्छरीरं मुखरत्नकोशम् ।।27 ऋषि शंयुर्बार्हस्पतयः।
7	सप्तम	97 में 6 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र यस्य व्रतं पशवः .... मवसे हुवेम ।।7।। ऋषि वसिष्ठः मैत्रावरुणिः
8	सप्तम	104 में 10 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र उप प्रवद मण्डूकि.... चतुरः पदः ।।10 ऋषि वसिष्ठः मैत्रावरूपिः
9	दशम	9 में 9 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र सखुषीस्तद.... देवीरवसे हुवे।।10 ऋषिः त्रिशिरास्त्वाष्टः सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा
10	दशम	75 में 5 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र सितासिते सरिते.... अमृतत्वं भजन्ते।।6।। ऋषिः सिन्धुक्षित् प्रैषमेधः
11	दशम	85 में 47 मन्त्रों के अनन्तर 6 मन्त्र, 1 वर्ग अविधवा भव.... जीव शरदः शतम् ।।53 सावित्रीसूर्या ऋषिका सुप्रख्यात विवाहसूक्त
12	दशम	95 में 18 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र उदपप्ताम वसते..... देवजना अयांसुः ।।19 पुरूरवा ऐलः उर्वशीसंवाद सूक्त
13	दशम	97 में 23 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र यच्च कृतं यद कृतं.... दुरितादेनसस्परि ।।24 ऋषिः भिषक आथर्वणः ओषधि-स्तुतिः
14	दशम	103 में 13 मन्त्रों के अनन्तर 2 मन्त्र असौ या सेनां .... मिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।।15 ऋषिः अप्रतिरथ ऐन्द्रः
15	दशम	106 में 11 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र हविर्भिरिके स्वरितः.... नरकं पताम।12 ऋषि भूतांशः काश्यपः
16	दशम	128 में 9 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र अर्वाञ्चमिन्द्र...... हरिवो में दिनं त्वा ।।10।। ऋषि विहव्य आठिरसः
17	दशम	169 में 4 मन्त्रों के अनन्तर 2 मन्त्र यासामूधश्चतु..... यथा भवान्युत्तमः।।6।। ऋषिः शवरः काक्षीवतः। गावः

18	दशम	184 में 3 मन्त्रों के अनन्तर 3 मन्त्र नेजमेष परापत..... दशमे मासि सूतवे।।6।। ऋषिः प्रजापतिः
19	दशम	187 में 5 मन्त्रों के अनन्तर 1 मन्त्र अनीकवन्तमूतये.... स नः पर्षदति द्विषः ।।6 ऋषिः आग्नेयो वत्सः अठिास्तुतिः योग- अतिरिक्त मन्त्र 40; वर्ग 3

(आ) आश्वलायनसंहिता में पूर्णसूक्त रूप में विद्यमान अतिरिक्त सूक्तों का विवरण

क्रम सं.	मण्डल	सूक्त ऋषि मन्त्र संख्या वर्ग संख्या
		इस आश्वलायनसंहिता में शाकल से पूर्णसूक्त के रूप में 15 अतिरिक्त सूक्त विद्यमान हैं। इन सूक्तों की विशिष्ट महिमा का उत्तरकालीन वाङ्मय विशेषतः पुराणों में गान किया गया है। यथा
1	द्वितीय	सूक्त 43 के अनन्तर 5 मन्त्रात्मक 1 सूक्त, 1 वर्ग का सूक्त क्रमाङ्क 44 सर्वमङ्गलहेतु कपिञ्जल को सम्बोधित ऋषि गृत्समद। इसी सूक्त से द्वितीय मण्डल की समाप्ति भद्रं वद दक्षिणतो.... शतंपत्राभि नो वद ।।5
2, 3		पञ्चम मण्डल की समाप्ति पर सूक्त 87 के अनन्तर 16+10- 26 मन्त्रों के 2 अतिरिक्त सूक्त, क्रमाङ्क 88 तथा 89; वर्ग 3+1 -4 ऋषि आत्रेय - श्री सूक्त तथा महालक्ष्मी सूक्त दोनों ही सूक्त पुरुष सूक्त की तरह अत्यन्त महिमाशाली, धन धान्य पशु प्रजा धनः दीर्घायुष्यहेतु स्तुति, शुक्ल यजुर्वेद 31, 32 में तथा पुराणों में नारायण विष्णु का प्रधान देवत्व स्वरूप श्री तथा लक्ष्मी दो पत्नियाँ प्रारम्भ में जातवेदस् अग्नि की तदनन्तर श्रीदेवी की सर्वविध-समृद्धिहेतु स्तुति सूक्त 88 हिरण्यवर्णां हरिणीं..... श्रीकामः सततं जपेत् ।।16 सूक्त 89 पद्मानने पद्मिनि .... दीर्घमायुः ।।10।।
4	सप्तम	सूक्त 55 के अनन्तर 8 मन्त्रात्मक 1 वर्ग का अतिरिक्त सूक्त क्रमाङ्क 56 ऋषि वसिष्ठ, स्वप्नदेवता को सम्बोधित गृह में सुखमय शयनहेतु तथा सर्पभय से विमुक्ति हेतु स्तुति यमुना जल वासी कालिक महानाग, नारायण वाहन का उल्लेख पौराणिक आख्यान कालिय दमन का आधार स्वप्नाधिकरणे.... तस्मै सर्प नमोऽस्तु।।8
5	नवम	सूक्त 67 के अनन्तर 20 मन्त्रात्मक 4 वर्गों में विभक्त पावमानी सूक्त क्रमाङ्क 68

		ऋषि पवित्र आङ्गिरसः वसिष्ठो वा सर्वविध पापों दोषों के प्रक्षालन हेतु स्तुति, यथा नाम पवित्रीकरण, स्तोत्र यन्मे गर्भे वसतः .... सर्पिर्मधूदकम्।।20
6	नवम	सूक्त 113 के अनन्तर 5 मन्त्रात्मक 1सूक्त क्रमाङ्क 115; ऋषि कश्यपो मारीचः गङ्गा-यमुना-सरस्वती नदियों तथा सोमेश्वरदेव का उल्लेख अमृतत्व प्राप्तिहेतु स्तुति यत्र तत्परम पदं .... कृधीन्द्रायेन्दो परि स्राव।।5
7	दशम	सूक्त 127 के अनन्तर 23 मन्त्रात्मक 3 वर्गों में विभक्त सुप्रख्यात रात्रिसूक्त क्रमाङ्क 128 ऋषि कुशिकाः सौभरः, रात्रिदेवी स्तुति उत्तरकालीन साहित्य में श्रीदुर्गादेवी पूजन में विनियुक्त। रात्रि का देवीकरण=सर्वभूतनिवेशनी संवेशनी संयमनी भद्रा कृष्णा शिवा अत्यन्त श्रद्धाभक्तिभावपूरित, सर्वहित प्रार्थना जपविधान, सद्यः फलप्रदायी मन्त्र आ रात्रि पार्थिवं .... तत्कालमुप पद्यते।।23
8	दशम	सूक्त 128 अनन्तर 11 मन्त्रात्मक 2 वर्गों में विभक्त सूक्त क्रमाङ्क 130 ऋषि सनक सनदन्दन सनातन देवता हिरण्यम्, सर्वप्रियप्राप्ति हेतु स्तुति आयुष्यं वर्चस्वं .... विराजं समिधं कुरु।।11
9	दशम	सूक्त 142 के अनन्तर 9 मन्त्रात्मक 1 वर्ग सूक्त क्रमाङ्क 145 ऋषि शन्ताति, देवता शाला सर्वविध सुख, प्रजा प्राप्ति एवं रक्षा तथा दीर्घायुष्य हेतु स्तुति, परोपकारमहिमा हिमस्यं त्वा जरायुणा.... यज्जीवति स जीवति।।9
10	दशम	सूक्त 151 के अनन्तर 9 मन्त्रात्मक 2 वर्गों में विभक्त मेधा सूक्त अङ्गिरस क्रमाङ्क 155 ऋषि मेधावी मेधावृद्धिहेतु अङ्गिरस अग्नि इन्द्र धाता वरुण सरस्वती अश्विनौ सूर्य की स्तुति मेधां मह्यमङ्गिरसो.... स्वधया प्रयोगे ।।9
11	दशम	सूक्त 166 अनन्तर 28 मन्त्रात्मक 5 वर्गों में विभक्त सुप्रख्यात शिवसंकल्पसूक्त क्रमाङ्क 171 ऋषि मानवः, देवता मनः शुक्ल यजु. अध्याय 34 के प्रारम्भ में यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं 6 मन्त्र गृहीत हैं। रुद्राध्याय में इन मन्त्रों को स्वीकार किया गया है। मन्त्र 18 में ब्रह्मा तथा हरि की प्रधानता प्रदर्शित है प्रणव ओंकार का पुरुषोत्तम परमात्मस्वरूप। शंकर देव को नीलकण्ठ ऋक्ष कहा गया

		है कैलाश शंकर शिखर पर इनका शुभगृह है, सभी देवता यहाँ पर निवास करते हैं। मन को देवत्वस्वरूप प्रदान किया गया है। यह सर्वव्यापक है। आब्रह्म स्तम्बपर्यन्त समस्त चराचर जगत् इससे प्रादुर्भूत है। 28वाँ त्र्यम्बकं यजामहे मृत्युभय से विमुक्त करने वाला महामृत्युञ्जय मन्त्र के रूप में सुप्रख्यात है। नेदं भूतं भुवनं.... तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। 28
12	दशम	सूक्त 191 अर्थात् शाकल संहिता की समाप्ति के अनन्तर 5 मन्त्रात्मक 1 वर्ग अन्य संज्ञानसूक्त ऋषि कश्यप, क्रमाङ्क 197 संज्ञान का स्वरूप प्रस्तुत है। बाष्कल संहिता में इस सूक्त की स्थिति है। संज्ञानमुशनां वदत् ..... शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।5
13	दशम	आश्वलायन सूक्त क्रमाङ्क 198 मन्त्र 3 वर्ग 1 ऋषि निर्हस्त्य सपत्नघ्नम् विषयकमन्त्र नैर्हस्त्यं सेनादरणं.... गौरुपेजातु।34
14	दशम	आश्वलायन सूक्त क्रमाङ्क 199, 7 मन्त्रात्मक 2 वर्ग ऋषि कश्यपो जमदग्निः बाष्कलशाखा की समाप्ति का सूक्त, अतिरिक्त संज्ञान सूक्त प्राध्वराणां पते..... शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।7
15	दशम	आश्वलायन संहिता- समाप्ति का सूक्त क्रमाङ्क 200, 13 मन्त्रात्मक 3 वर्गों में विभक्त सुप्रख्यात महानाम्नी ऋचाएँ - 3 पुरुष पद + 1 ऋषि विश्वामित्र, देवता इन्द्र नमन मन्त्र विदा मघवन् ...... नमो विष्णवे महते करोमि।।13 अतिरिक्त सूक्त 15, मन्त्र 172, वर्ग 31 पूर्णयोग सूक्त 15, मन्त्र 212, वर्ग 34

सुख्यात महानाम्नी ऋचाएँ

विदा मघवन्विदा गातुमनु शंसिषो दिशः।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो॥१॥
आभिष्ट्वमभिष्टिभिः प्रचेतन प्र चेतय।
इन्द्र द्युम्नाय न इष एवा हि शक्रः॥२॥
राये वाजाय वज्रिवः शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे।

मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व॥३॥
विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम्॥४॥
यो मंहिष्ठो मघोनां चिकित्वाँ अभि नो नय।
इन्द्रो विदे तमु स्तुषे वशी हि शक्रः॥५॥
तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः पर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्॥६॥
इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः पर्षदति द्विषः स नः पर्षदति स्त्रिधः॥७॥
पूर्वस्य यत्ते अद्रिवः सुम्न आ धेहि नो वसो।
पूर्द्धि शविष्ठ शश्वत ईशे हि शक्रः॥८॥
नूनं तं नव्यं संन्यसे प्रभो जनस्य वृत्रहन्।
समन्येषु ब्रवावहै शूरो यो गोषु गच्छति।
सखा सुशेवो अद्वयाः॥९॥

'विदा मघवन् ...... सखा सुशेवो अद्वयाः इति। अत्यन्त महिमा विशिष्ट महानाम्नी संज्ञक सुप्रख्यात नौ ऋचाएँ हैं। ऐतरेय ब्राह्मण सोमयाग में द्वादशाह के राथन्तर पञ्चम दिन इन ऋचाओं का विनियोग बतला रहा है। शाक्वर नामक साम के साथ इन महानाम्नी ऋचाओं के शंसन का विधान प्रस्तुत कर रहा है—

अथ शाक्वरसामसम्बन्धेन लिङ्गेन युक्ता ऋचो विधत्ते महानाम्नीष्वत्र स्तुवते शाक्वरेण साम्ना राथन्तरेऽहनि पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्। ऐत.ब्रा. 22.2

आचार्य सायण अपने भाष्य में इन ऋचाओं के स्वरूप को बतला रहे हैं—

'विदा मघवन्' इत्यादयो नवर्चो महानाम्नी संज्ञकाः तासूद्गातारः शाक्वराख्येन साम्ना स्तुवते।' 22.2

यहाँ पर मन्त्रभाग के व्याख्याग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण में इन ऋचाओं का विनियोग निर्दिष्ट है। ब्राह्मणभाग अपने मन्त्रभाग की ही व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। संहिता के मन्त्रों का विनियोग ब्राह्मण ग्रन्थ बतलाता है। ऐतरेय ऋग्वेदीय ब्राह्मण है, अतः इन महानाम्नी ऋचाओं को ऋग्वेदसंहिता में अवश्य ही होना चाहिए और महानाम्नी ऋक् ऋचाएँ हैं। पर ये ऋचाएँ

उपलब्ध मन्त्रसंहिता शाकल में नहीं है। ये सभी ऋचाएँ ऋग्वेदीय आरण्यक ऐतरेय (4.1.1) में पूर्णरूप में हैं तथा सामसंहिता में पूर्वार्चिक के अन्त में उसी प्रकार पूर्णरूप में है। ऋग्वेदीय श्रौतसूत्र आश्वलायन में भी इनका विनियोग निर्दिष्ट है।

ता महानाम्नीरध्यर्धकारं शंसेत्। 7.12.10

इन नौ ऋचाओं का तीन-तीन करके प्रयोग शंसन का विधान है।

यथा प्रकृत्याः नव सत्यस्ता एव तिस्रो भवन्तीति सूत्रार्थः नारायणवृत्ति

सामवेदीय ब्राह्मणों में भी इन ऋचाओं की महिमा तथा प्रयोग का विधान प्रस्तुत है। यथा—

(अ) **इन्द्रः प्रजापतिमुपधावत्। वृत्रं हनानिति तस्मा एतच्छन्दोभ्य इन्द्रियं वीर्यं निर्माय प्रायच्छदेतेन शक्नुहीति। तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम्। सीमानमभिनत् तत् सिमा। मह्ल्यामकरोत् तन्मह्ल्या महान् घोष आसीत्तन्महानाम्न इति।** ताण्डच ब्रा. 13.4

(आ) **ऐन्द्रो महानाम्न्यः प्रजापतेर्वा विष्णोर्वा विश्वामित्रस्य वा सिमा वा मह्ल्या वा शक्वर्यो वा इति।** आर्षेय ब्रा. 3.29

आचार्य सायण को ऋक्संहिता का भाष्य करते समय शाकल में इन ऋचाओं की प्राप्ति नहीं हुई। अब जब ऐतरेय ब्राह्मण ने द्वादशाह के पञ्चम दिन इन महानाम्नी नाम से इन ऋचाओं का विनियोग बतलाया और यहाँ पर ऋचाएँ उद्धृत नहीं है तब आचार्य ने इस ऋचाओं को अग्निमीले से लेकर यथा वः सुसहासति तक दशतयी संहिता की जो सीमा है उसके ऊपर इनको प्रजापति द्वारा सृजित माना—**या एता महानाम्न्यः सन्ति ताःसीम्न ऊर्ध्वा अभ्यसृजत् 'अग्निमीले इत्यारभ्य यथा वः सुसहासति' इत्यन्ता दशतयीनां सीमा तस्याःसीम्न ऊर्ध्वभाविनीकृत्वा प्रजापतिरभितः सृष्टवान्। अत एवैताः संहिताः संहितायां नाऽऽम्नायन्ते। किन्त्वारण्यकाण्ड आम्नायन्ते। अथवा नवैता ऋचस्त्रिवेदेभ्यः उपरि स्थितत्वेन प्रयुज्यन्ते।**

प्रजापति ने इन महानाम्नी ऋचाओं की दशतयी की सीमा से बाहर रचना की। सीमा से परे रचना होने के कारण इनका नाम सिमा हुआ। इसीलिए इन महानाम्नी ऋचाओं की प्रसिद्धि सिमा रूप में हुई।

'ताः ऊर्ध्वाः सीम्नोऽभ्यसृजत् यदूर्ध्वा सीम्नोऽभ्यसृजत् तत्सिमा अभवंस्तत्सिमानां सिमात्वम्।' 22.2

और इसीलिए उन्होंने इनको अरण्याध्ययनार्था कहा। इन ऋचाओं की स्थिति संहिता भाग में न होकर आरण्यक में है—

कथितोपनिषत्सर्वा महानाम्न्याख्यमन्त्रकाः।
अरण्याध्ययनार्था वै प्रोच्यन्तेऽथ चतुर्थके॥2॥

शाक्वरनामकं सामवेदप्रसिद्धं किंचित्सामास्ति। तद्यद्युद्गातारः पृष्ठस्तोत्ररूपेण गायेयुस्तदानीं महानाम्नीसंज्ञया व्यवह्रियमाणा विदा मघवन् इत्याद्या नव संख्याका ऋचो याः सन्ति ताः सर्वा मिलित्वा स्तोत्रसम्बन्धितया स्तोत्रियस्तृचा इत्यभिधीयन्ते। ऐ0आ0 4.1.1

इस प्रकार ऐत. आ. में इन महानाम्नी ऋचाओं की स्थिति है।

पर ऐत. ब्रा. 22.2 में इन ऋचाओं का विनियोग प्रस्तुत है तथा महानाम्नी शब्द का निर्वचन एवं इनकी महनीयता का प्रकाशन है—

'इन्द्रो वा एताभिर्महानात्मानं निरमिमीत, तस्मान्महानाम्न्योऽथो इमे वै लोका महानाम्न्य इमे महान्तः।' 22.2

इन ऋचाओं के प्रयोग से इन्द्र ने अपने को सभी देवों में महान् बनाया, इन्द्र को महान् बनाने में, उसमें महिमा का आधान करने के कारण इन ऋचाओं को महानाम्नी कहा गया और भी पृथिवी आदि ये सभी लोक महानाम्नी स्वरूप हैं और सभी लोक महान् है, अतः इन ऋचाओं में भी महनीयता है।

आचार्य सायण अपनी व्याख्या में इन ऋचाओं की महानाम्नी संज्ञा होने का हेतु प्रस्तुत करते हैं। इन्द्रदेव ने अपने को ऐश्वर्यादि गुणों से महान् परमैश्वर्यशाली बनाने की कामना की और उन्होंने ने 'विदा मघवन्' इन ऋचाओं के प्रयोग से अपने को महान् ऐश्वर्यशाली बना लिया। इसीलिए इन्द्र को महान् बनाने में साधनभूत इन ऋचाओं की महानाम्नी नाम से प्रसिद्धि हो गई और भी पृथिवी आदि तीनों लोक महानाम्नीस्वरूप हैं ये सभी लोक महान् हैं अतः तत्स्वरूप ये ऋचाएँ भी महानाम्नी नाम से प्रख्यात हो गईं—

'पुरा कदाचिदिन्द्रः स्वयमेवैश्वर्यादिगुणैर्महान् भविष्यामीति विचार्य 'विदा मघवन्'इत्यादिभिर्ऋग्भिः स्वात्मानं गुणैर्महान्तं निर्मितवान्

तस्मान्महत्त्वनिर्माणसाधनत्वान्महानाम्नीशब्दवाच्याः सम्पन्नाः। अपि च महानाम्नो भूरादि लोकत्रयस्वरूपाः लोकाश्च महान्तः तस्मादप्यासां महानाम्नीत्वम्। ऐ.ब्रा. 22.2

इसी क्रम में ऐत. ब्रा. शक्वरी साम के महत्त्व को तथा सृष्टि की रचना में प्रजापति के समर्थ होने में महानाम्नी ऋचाओं की महिमा का प्रकाशन कर रहा है।

इमान् वै लोकान् प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् यदिदं किं च यदिमाँल्लोकान् प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् यदिदं किंच तच्छक्वर्यो-ऽभवँस्तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम्। ऐत.ब्रा. 22.2

आचार्य सायण इसी विषय का विशदीकरण कर रहे हैं

पुरा प्रजापतिः विदा मघवन् इत्यादिका महानाम्नीरनुसंधाय तदात्म-काँल्लोकान् प्रजापतिः सृष्ट्वा ताभिर्महानाम्नीभिरनुगृहीतं पश्चाद् एषु लोकेषु यत्किञ्चित् स्थावरं जङ्गमं प्राणिजातं स्त्रष्टव्यमस्ति, तत्सर्वं स्त्रष्टुमशक्नोच्छक्ति-मानभूत्। तस्मादेवं प्रजापतिरकरोत्। तस्माच्छक्तिहेतुत्वाद् एता ऋचः शक्वरीनामिका अभवन्। अनेन प्रकारेण तासां शक्वरीत्वं सम्पन्नम्। ऐत.ब्रा. 22.2

प्राचीन काल में प्रजापति ने विदा मघवन् इत्यादि महानाम्नी ऋचाओं का अनुसन्धान करके इन लोकों की सृष्टि करके इन लोकों में जो कुछ भी स्थावर या जंगम प्राणिजात सृष्टि के बीच में है उन सबकी सृष्टि करने में शक्तिमान् समर्थ हुए। क्योंकि प्रजापति इन लोकों की सृष्टि करने में शक्तिमान् समर्थ हुए, इसीलिए वे शक्वरी ऋचाएँ हुईं। इस प्रकार शक्वरी ऋचाओं का शक्वरीत्व सम्पादित हुआ अर्थात् सृष्टि की रचना में प्रजापति को समर्थ बनाने के कारण इन ऋचाओं की शक्वरी नाम से प्रसिद्धि हुई।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण ऐतरेय में इन महानाम्नी ऋचाओं का विनियोग प्रस्तुत है और इनकी विशिष्ट महिमा का भी प्रकाशन है। अतः इन ऋचाओं को अपनी मूल संहिता में अनिवार्यतः होना चाहिए। पर शाकल संहिता में इनकी स्थिति नहीं है, इसलिए किसी अन्य संहिता में होना चाहिए। भगवान् पतञ्जलि के समय ऋग्वेद की 21 शाखाएँ थीं और 13वीं शताब्दी में स्थित महर्षि शौनक ने अपने चरणव्यूह में नामग्रहणपूर्वक 5 शाखाओं का उल्लेख किया है। बाष्कलसंहिता सम्प्रति उपलब्ध नहीं हो पाई है पर यत्र तत्र स्थित सन्दर्भों के आधार पर इसका बहुत कुछ स्वरूप प्रकाश में आया है। इसमें ये महानाम्नी ऋचाएँ नहीं है। माण्डूकायनसंहिता अभी तक अनुपलब्ध ही है। शीघ्र ही आश्वलायन तथा शाङ्खायन दो संहिताओं का प्रकाशन हुआ है। इन दोनों ही संहिताओं में ये महानाम्नी ऋचाएँ विद्यमान हैं और इन दोनों संहिताओं की समाप्ति भी इन्हीं महानाम्नी ऋचाओं से होती है और शाकल तथा बाष्कल से इन दोनों संहिताओं की यही प्रमुख विशेषता है। चतुष्षष्ठिसंहिता ऋग्वेद के अन्तिम 64 वें अध्याय में 49 वर्ग हैं, आश्वलायन में 64 तथा शाङ्खायन में 63 वर्ग हैं। मन्त्रों की संख्या शाकल में 10552, बाष्कल में 10548, आश्वलायन में 10761 तथा शाङ्खायन में 10627 हैं।

इस प्रकार इन महानाम्नी ऋचाओं को आश्वलायन तथा शाङ्खायन इन दोनों संहिताओं के रूप में अपना मूल आधार मिल गया। पर आचार्य सायण को इन संहिताओं की प्राप्ति नहीं हुई थी और शाकल में इनकी स्थिति न होने के कारण ही इनको उन्होंने दशतयी की सीमा से ऊपर स्वीकार किया। अपने मन्त्रभाग की यज्ञीय व्याख्या प्रस्तुत करने वाले ऐतरेय ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व भी सिद्ध हो जाता है।

आश्वलायनसंहिता में शाकल से अतिरिक्त मन्त्र

१. मा बिभेर्न मरिष्यसि परि त्वा पामि सर्वतः। १.१९१.१६ के अनन्तर
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम्॥१७॥ १. १९. १. १७

२. आदित्यरथवेगेन विष्णुबाहुबलेन च।
गरुळपक्षनिपातेन भूमिं गच्छ महायशाः॥१८॥

३. गरुळस्य जातमात्रेण त्रयो लोकाः प्रकम्पिताः।
प्रकम्पिता मही सर्वा सशैलवनकानना॥१९॥

४. गगनं नष्टचन्द्रार्कं ज्योतिषं न प्र काशते।
देवता भयभीताश्च मारुतो न प्लवायति मारुतो न प्लवायत्यों नमः॥२०॥

५. जागर्षित्वं भुवने जातवेदो जागर्षि यत्र यजते हविष्मान्।
इदं हविः श्रद्दधानो जुहोमि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्॥ ५.४४.१६

६. स्वप्नः स्वप्नाधिकरणे सर्वं नि ष्वापया जनम्।
आ सूर्यमन्यान्त्स्वापय व्यूषं जागृयादहम्॥१॥ ७.५६.१

७. अजगरो नाम सर्पस्सर्पिरविषो महान्।
तस्मिन्हि सर्पः सुधितस्तेन त्वा स्वापयामसि॥२॥

८. सर्पस्सर्पोऽ अजगरस्सर्पिरविषो महान्।
यस्य शुष्कात्सिन्धवस्तस्य गाधमशीमहि॥३॥

९. कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः।
यमुनह्रदे ह सो जातो यो नारायणवाहनः॥४॥

१०. यदि कालिकदूतस्य यदि काः कालिकाद्भयम्।
जन्मभूमिमतिक्रान्तो निर्विषो याति कालिकः॥५॥

११. आ याहीन्द्र पृथिमिरीळितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व।
तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव॥६॥

१२. यशस्करं बलवन्तं प्रभुत्वं तमेव राराजधपतिर्बभूव।
संकीर्णनागाश्वपतिर्नराणां सुमङ्गल्यं सततं दीर्घमायुः॥७॥

१३. कर्कोटको नाम सर्पो यो दृष्टीविषऽ उच्यते।
तस्य सर्पस्य सर्पत्वं तस्मै सर्प नमोऽस्तु ते॥८॥

१४. भोः सर्प भद्र भद्रं ते दूरं गच्छ महायशाः।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर॥२१॥

१५. आस्तीकवचनं श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा॥२२॥

१६. यो जरत्कारुणा जातो रंजेत् कन्यां महायशाः।
तस्य सर्पापि भद्रं ते दूरं गच्छ महायशाः॥२३॥

१७. असितिं चार्थसिद्धिं च सुनीतिं चापि यः स्मरेत्।
दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति सर्पभयं हरेत्॥२४॥

१८. अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महामुनिः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः॥२५॥

१९. नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि।
नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः॥२६॥

२०. हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह॥१॥ ५.८८.१

२१. तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥२॥

२२. अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥३॥

२३. कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥४॥

२४. चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टमुदाराम्।
ता पद्मनेमिं शरणं प्र पद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि॥५॥

२५. आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥६॥

२६. भद्रं वद दक्षिणतो भद्रमुत्तरतो वद।
भद्रं पुरस्तान्नो वद भद्रं पश्चात्कपिञ्जल॥१॥ २.४४.१

२७. भद्रं वद पुत्रैर्भद्रं वद गृहेषु च।
भद्रमस्माकं वद भद्रं नो अभयं वद॥२॥

२८. भद्रमधस्तान्नो वद भद्रमुपरिष्टद् वद।
भद्रंभद्रं न आ वद भद्रं नः सर्वतो वद॥३॥

२९. असमत्नं पुरस्तान्नः शिवं दक्षिणतस्कृधि।
अभयं सततं पश्चाद् भद्रमुत्तरतो गृहे॥४॥

३०. यौवनानि महयसि जिग्युषामिव दुन्दुभिः।
शकुन्तक प्रदक्षिणं शतपत्राभि नो वद॥५॥

३१. सूक्तान्ते तृणान्यग्नावरण्ये वोदकेऽपि वा।
यस्तृणैरध्ययनं तदधीतं भवति ध्रुवम्॥६॥ ५.४९.६

३२. स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमिं महद्भूतं वायसं देवतानाम्।
असुरघ्नमिन्द्रसखं समत्सु बृहद्यशो नावमिवा रुहेम॥ ७.५१.१६

३३. अंहोमुचमाङ्गिरसं गयं च स्वस्त्यात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम्।
प्रयतपाणिः शरणं प्र पद्ये स्वस्ति संबाधेस्वभयं नो अस्तु॥१७॥

३४. वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्मद्विषो जहि॥ ५. ८४. ४

३५. यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रतमुपतिष्ठन्त आपः।
यस्य व्रते पुष्टिपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हुवेम्॥७. ९७. ७

३६. उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः॥११॥ ७.१०४.११

३७. अविधवा भव वर्षाणि शत साग्रं तु सुव्रता।
तेजस्वी च यशस्वी च धर्मपत्नी पतिव्रता॥ १०.८५.४८

३८. जनयद् बहुपुत्राणि मा च दुःखं लभेत् क्व चित्।
भर्त्ता ते सोमपा नित्यं भवेद्धर्मपरायणः॥४९॥

३९. उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिं वृद्धिं ददातु मे॥७॥५.८८.७

४०. क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥८॥

४१. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥९॥

४२. मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥१०॥

४३. कर्दमेन प्रजा भूता मयि सं भव कर्दम।
श्रियं वासय मे गृहे मातरं पद्ममालिनीम्॥११॥

४४. आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥१२॥

४५. आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टीं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह॥१३॥

४६. आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह॥१४॥

४७. तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्यो ऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥१५॥

४८. यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्॥१६॥

४९. पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सं नि धत्स्व॥१॥ ५.८९.१

५०. पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसम्भवे।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्॥२॥

५१. अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे॥३॥

५२. पुत्रपौत्रं धनं धान्यं हस्त्यश्वाश्वतरे रथैः।
प्रजानां भवसि मातरायुष्मन्तं करोतु माम्॥४॥

५३. धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणो धनमुच्यते॥५॥

५४. वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः॥६॥

५५. न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत्॥७॥

५६. विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम्॥८॥

५७. महालक्ष्मीं च विद्महे विष्णुपत्नीं च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्र चोदयात्॥९॥

५८. श्रीर्वर्चस्वमायुष्य१ं मारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते।
धान्यं १ं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः॥१०॥

५९. चक्षुश्च श्रोत्रं च मनश्च वाक् च प्राणापानौ देह इदं शरीरम्।
द्वौ प्रत्यञ्चावनुलोमौ विसर्गावेतं तं मन्ये दशयन्नमुत्सम्॥ ६.४४.२५

६०. उरश्च पृष्ठश्च करौ च बाहू जंघे चोरु उदरं शिरश्च।
रोमाणि मांसं रुधिरास्थिमज्जमेतच्छरीरं जलबुद्बुदोपमम्॥२६॥

६१. भ्रुवौ ललाटे च तथा च कर्णौ हनू कपोलौ छुबुकस्तथा च।
ओष्ठौ च दन्ताश्च तथैव जिह्वा एतच्छरीरं मुखरत्नकोशम्॥२७॥

६२. यन्मे गर्भे वसतः पापमुग्रं यज्जायमानस्य च किञ्चिदन्यत्।
जातस्य यच्चापि च वर्द्धतो मे तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥९.६८.१

६३. मातापित्रोर्यन्न कृतं वचो मे यत्स्थावरं जङ्गममाबभूव।
विश्वस्य यत्प्रहषितं वचो मे तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥२॥

६४. क्रयविक्रयाद्योनिदोषाद् भक्षाद्भोज्यात्प्रतिग्रहात्।
असंभोजनाच्चापि नृशंसं तत्पा॥३॥

६५. गोघ्नात्तस्करत्वात्स्त्रीवधाद्यच्च किल्बिषम्।
पापकं च चरणेभ्यस्तत्पा॥४॥

६६. ब्रह्मवधात्सुरापानात्सुवर्णस्तैयाद्वृषलीमिथुनसंगमात्।
गुरोर्दाराभिगमनाच्च तत्पा-॥५॥

६७. बालघ्नान्मातृपितृवधाद् भूमितस्करात्सर्ववर्णगमनमिथुनसंगमात्।
पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात्सद्यः प्र हरन्ति सर्वदुष्कृतं तत्पा॥६॥

६८. अमन्त्रमन्त्रं यत्किञ्चिद्धूयते च हुताशने।
संवत्सरकृतं पापं तत्पा॥७॥

६९. दुरिष्टं दुरधीतं पापं यच्चाज्ञानतो कृतम्।
अयाजिताश्चासंयाज्यास्तत्पा ॥८॥

७०. ऋतस्य योनयो ऽमृतस्य धाम सर्वा देवेभ्यः पुण्यगन्धाः।
ता न ०आपः प्र वहन्तु पापं शुद्धो गच्छामि सुकृतामु लोकं तत्पा.॥९॥

७१. इन्द्रः सुदीती सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः सुनीत्या।
यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा जातवेदा मोर्जयन्त्या पुनातु॥१०॥

७२. पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्च्युतः।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम्॥११॥

७३. पावमानीर्दिशन्तुनऽइमल्ँलोकमथोऽअमुम् ।
कामान्त्समर्द्धयन्तु नो देवैर्देवीः समाहिताः॥१२॥

७४. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पवमानः पुनातु मा॥१३॥

७५. प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यामं हिरण्मयम्।
तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनातु मा॥१४॥

७६. पावमानीः स्वस्त्ययनीर्याभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति॥१५॥

७७. पावमानं पितॄन्देवान् ध्यायेद्यश्च सरस्वनीम्।
पितॄंस्तस्योप तिष्ठेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥१६॥

७८. ऋषयस्तु तपस्तेपुः सर्वे स्वर्गजिगीषवः।
तपसस्तपसोऽग्र्यं तु पावमानीर्ऋचोजपेत्॥१७॥

७९. पावमानं परं ब्रह्म ये पठन्ति मनीषिणः।
सप्त जन्म भवेद् विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः॥१८॥

८०. दशोत्तराण्यृचां चैतत्पावमानीः शतानि षट्।
एतज्जुहुञ्जपंश्चैव घोरं मृत्युभयं जयेत्॥१९॥

८१. पावमानं परं ब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम्।
ऋषींस्तस्योप तिष्ठेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥२०॥

८२. सस्त्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्त्रुषीः।
वरेण्यक्रतुरहमा देवीरवसे हुवे॥१०.९.१०

८३. सितासिते सरिते यत्र संगे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं १ वि सृजन्ति धीरास्ते वै जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥ १०.७५.६

८४. उदपप्ताम वसतेर्वयो यथा रिणन्त्वा भृगवो मन्यमानाः।
पुरुरवः पुनरस्तं परेह्या मे मनो देवजना अयांसुः॥ १०.९५.१९

८५. यत्र तत्परमं पदं विष्णोर्लोके महीयते।
देवैः सुकृतकर्मभिस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्राव॥१॥ ९.११५.१

८६. यत्र तत्परमाव्यं भूतानामधिपतिः।
भावभावी च योगीश्च तत्र माममृतं कृधी-॥२॥

८७. यत्र देवा महात्मानः सेन्द्राश्च समरुद्गणाः।
ब्रह्मा च यत्र विष्णुश्च तत्र माम्-॥३॥

८८. यत्र लोक्यास्तनूत्यजाः श्रद्धया तपसा जिताः।
तेजश्च यत्र ब्रह्म च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो॥४॥

८९. यत्र गङ्गा च यमुना यत्र प्राची सरस्वती।
यत्र सोमेश्वरो देवस्तम् माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्राव॥५॥

९०. अष्टपुत्रा भव त्वं च सुभगा च पतिव्रता।
भर्त्तुश्चैव पितुर्भ्रातुर्हृदयानन्दिनी सदा॥५०॥

९१. इन्द्रस्य तु यथेन्द्राणी श्रीधरस्य यथा श्रिया।
शङ्करस्य यथा गौरी तद्भर्त्तुरपि भर्त्तरि॥५१॥

९२. अत्रेर्यथानसूया स्याद्वसिष्ठस्याप्यरुन्धती।
कौशिकस्य यथा सती तथा त्वमपि भर्त्तरि॥५२॥

९३. ध्रुवैधि पयोष्या मयि मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम्॥५३॥

९४. यच्च कृतं यदकृतं यदेनश्चकृमा वयम्।
ओषधयस्तस्मात्पान्तु दुरितादेनसस्परि॥१०.९७.२४

९५. असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्द्धमाना।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामीषामन्यो अन्यं न जानात्॥

९६. अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणो अहयइव।
तेषां वो अग्निदग्धानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्॥१५॥

९७. हविर्भिरेके स्वरितः सचन्ते सुनवन्त एके सवनेषु सोमान्।
शचीर्मदन्त उत दक्षिणाभिर्नेज्जिह्मायन्त्यो नरकं पताम्॥

रात्रिसूक्तम्

९८. आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्त्तते तमः॥१॥ १०.१२८.१

९९. ये ते रात्रि नृचक्षसो युक्तासो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्वष्ट उतो ते सप्त सप्ततिः॥२॥

१००. रात्रीं प्र पद्ये जननीं सर्वभूतनिवेशनीम्।
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम्॥३॥

१०१. संवेशनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम्।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रीं भद्रे पारमशीमहि॥४॥

१०२. दुर्गेषु विषमे घोरे संग्रामे रिपुसंकटे।
अग्निचोरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारणे॥५॥

१०३. दुर्गेषु विषमेषु त्वं संग्रामेषु वनेषु च।
नमस्कृत्वा प्र पद्यन्ते तेषां नोऽअभयं कुरु॥६॥

१०४. आदित्यवर्णा तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं चन्द्रसहस्त्रदीप्तिम्।
देवीं कुमारीमृषिपूजितां तां तां दुर्गमातां शरणं प्रपद्ये॥७॥

१०५. क्षीरेण स्नापिता दुर्गा चन्दनेनानुलेपिता।
बैल्वपत्रकृतामाला नमो दुर्गे नमो नमः॥८॥

१०६. सर्वभूतपिशाचेभ्यः सर्वशत्रुसरीसृपैः।
देवेभ्यो मानुषेभ्यश्चोभयेभ्यो माभि रक्षताम्॥९॥

१०७. ऋग्वेदे स्तुतया देवी काश्यपेनोदाहृता।
जातवेदप्रभा गौरी जातवेदसे सुनवाम सोमम्॥१०॥

१०८. सुरासुरैर्द्विजवरैः पिशाचासुरराक्षसैः।
अरातिभयमुत्पन्नमरातीयतो नि दहाति वेदः॥११॥

१०९. राजद्वारे पथे घोरे संग्रामेषु च गौतमी।
सर्वं रक्षतु दुरितं स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा॥१२॥

११०. महद्भये समुत्पन्ने स्मरन्ति च जपन्ति च।
सर्वं तारयते दुर्गा नावेव सिन्धुं दुरितान्यग्निः॥१३॥

१११. य इमं स्तवं दुर्गायाः शृण्वन्ति च पठन्ति च।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं त्रिषु लोकेषु पूजितम्॥१४॥

११२. अपुत्रो लभते पुत्रान्धनहीनो धनं लभेत्।
अचक्षुर्लभते चक्षुर्बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥१५॥

११३. व्याधितो मुच्यते रोगादरोगी श्रियमाप्नुयात्।
सर्वं कामंत्वं ददासि नारायणि नमोऽस्तु ते।
कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥१६॥

११४. हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि।
उत हृदो हि नो भुवोऽग्निर्ददातु भेषजम्॥
शीतह्रदो हि नो भुवोऽग्निर्ददातु भेषजम्॥१॥ १०.१४५.१

११५. अन्तिकादग्निरभवद्दूर्वादः शिशुरागमत्।
अजातपुत्रपुत्राया हृदयं मर्म दूयते॥२॥

११६. विपुलं बनं बह्वाकाशं चर जातवेदः कामाय।
मां च रक्ष पुत्रांश्च शरशमुभौ तव॥३॥

११७. पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्ण नमोऽस्तु ते।
अस्मान्नि बर्हीरस्योनं सागरस्योर्मयो यथा॥४॥

११८. इन्द्रः क्षत्रं ददातु वरुणस्तमभि षिञ्चतु।
शत्रवस्ते निधनं यान्तु जयं त्वं ब्रह्मतेजसा॥५॥

११९. केशी वै सर्वभूतानां पञ्चमीति च नाम च।
सा मां सामेति वै देवी सर्वतः परि रक्षति सर्वतः परि रक्षत्यों नमः॥१७॥

१२०. स्तोष्यामि प्रयतो देवीं शरण्यां बह्वचप्रियाम्।
सहस्रसंमितां दुर्गां जातवेदसे सुनवाम सोमम्॥१८॥

१२१. शान्त्यर्थं तद् द्विजातीनामृषिभिः समुपाश्रिता।
ऋग्वेदे त्वं समुत्पन्नारातीयतो नि दहाति वेदः॥१९॥

१२२. ये त्वां देवि प्रपद्यन्ते ब्राह्मणा हव्यवाहनीम्।
अविद्यो बहुविद्यो वा स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा॥२०॥

१२३. तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्र पद्ये सुतरसि तरसे नमः सुतरसि तरसे नमः॥२१॥

१२४. दुर्गा दुर्गेषु स्थानेषु शं नो देवीरभिष्टये।
इमं दुर्गास्तवं पुण्यं रात्रौरात्रौ सदा पठेत्॥२२॥

१२५. रात्रिः कुशिकः सौभरो रात्रिस्तवं गायत्री।
रात्रीसूक्तं जपेन्नित्यं तत्कालमुप पद्यते॥२३॥

१२६. अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः।
इमं नो यज्ञं विहवे जुषस्वास्य कुर्मो हरिवो मेदनं त्वा॥२४॥

१२७. आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्॥१॥ १०.१३०.१

१२८. उच्चैर्वाजि पृतनाषाट् सभासाहं धनञ्जयम्।
सर्वाः समग्राऋद्धयो हिरण्येऽस्मिन्त्समाहिताः॥२॥

१२९. शुनमहं हिरण्यस्य पितुर्नामेव जग्रभ।
तेन मां सूर्यत्वचमकरं पुरुषु प्रियम्॥३॥

१३०. सम्राजं च विराजं चाभिष्टिर्या च मे ध्रुवा।
लक्ष्मी राष्ट्रस्य या मुखे तया मामिन्द्र सं सृज॥४॥

१३१. अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं जज्ञेअधि मर्त्येषु।
यएनद् वेद स इदेनदर्हति जरामृत्यु भवति यो बिभर्ति॥५॥

१३२. यद्वेद राजा वरुणो यद्‌ देवी सरस्वती।
इन्द्रो यद् वेस्युहा वेद तन्मे वर्चस ऽ आयुषे॥६॥

१३३. न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्ये ३ तत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः।
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥७॥

१३४. यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्मआबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम्॥८॥

१३५. घृतादुल्लुप्तं मधुमत्सुवर्णं धनञ्जयं धरुणं धारयिष्णुम्।
ऋणक् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा रोह मां महते सौभगाय॥९॥

१३६. प्रियं मा कुरु देवेषु प्रियं राजसु मा कुरु।
प्रियं विश्वेषु गोष्वेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥१०॥

१३७. अग्निर्येन विराजति सूर्यो येन विराजति।
विराड् येन विराजति तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते विराजं समिधं कुरु॥११॥

१३८. कपिलजटीं सर्वभक्षं चाग्निं प्रत्यक्षदैवतम्।
वरुणवशाँ ह्यरंग्निर्मम पुत्राँश्च रक्षतु॥६॥

१३९. यावदादित्यस्तपति यावद् भ्राजति चन्द्रमाः।
यावद्वातः प्रवायति तावज्जीव तया सह॥७॥

१४०. एकंशपैकर्हस्तिनोदेशेन त्वं विपुलेन।
पृथिवीं त्वं भुंक्ष्वस्वैकंच्छत्रेण दण्डेन॥८॥
१४१. येन केनं प्रकारेण मेहनाकोऽपिं जीवति।
परेषामुपकारार्थं यज्जीवति स जीवति॥९॥

मेधासूक्त

१४२. मेधां सह्यमङ्गिरसो मेधां सप्त ऋषयो ददुः।
मेधामिन्द्रश्चाग्निश्च मेधां धाता दधातु मे॥१॥ १०.१५५.१
१४३. मेधां मे वरुणो राजा मेधां देवी सरस्वती।
मेधां मे अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा॥२॥
१४४. या मेधाप्सरसि गन्धर्वेषु च मन्त्रौ।
दैवी या मानुषी मेधा सा मामया विशतादिह॥३॥
१४५. यन्मे नोक्तं प्र द्रवतां शकेयं यदनुब्रुवे।
निशामितं नि शामहै मयि श्रुतं सह व्रतेन भूयासं ब्रह्मणा सं गमेमहि॥४॥
१४६. शरीरं मे विचक्षणं वाङ्मे मधुमद्दुहा।
अवृधमहमसौ सूर्यो ब्रह्मण आणी स्थः श्रुतं मे मा प्र हासीत्॥५॥
१४७. मेधां देवीं मनसा रेजमानां गन्धर्वजुष्टां प्रति नो जुषस्व।
मह्यं मेधां वद मह्यं श्रियं वद मेधावी भूयासमजराजरिष्णुः॥६॥
१४८. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम्॥७॥
१४९. यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु॥८॥
१५०. मेधाव्य१ हं सुमनाः सुप्रतीकः श्रद्धामना सत्यमतिः सुशेवः।
महायशा धारयिष्णुः प्रवक्ता भूयासमर्थी स्वधया प्रयोगे॥९॥

शिवसङ्कल्पसूक्तम्

१५१. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥ १०.१७१.१

१५२. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे॥२॥

१५३. येन कर्माणि प्रतिरन्ति धीरा यतो वाचा मनसा तानि हन्ति।
यस्यान्वितमनु कृण्वन्ति प्राणिनस्तन्मे॥३॥

१५४. यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे॥४॥

१५५. यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे॥५॥

१५६. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे॥६॥

१५७. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे॥७॥

१५८. येनेदं सर्वं जगतो बभूव तदेवापि महतो जातवेदाः।
तदेवाग्निस्तपसो ज्योतिरेकं तन्मे-॥८॥

१५९. येन द्यौरुग्रा पृथिवी चान्तरिक्षं येन पर्वताः प्रदिशो दिशश्च।
येनेदं जगद्व्याप्तं प्रजानां तन्मे॥९॥

१६०. ये पञ्चपञ्चा दशतं शतं च सहस्रं च नियुतं न्यर्बुदं च।
तेऽग्निचित्येष्टकात्तं शरीरं तन्मे॥१०॥

१६१. ये मनो हृदयं ये च देवा या दिव्याआपो यः सूर्यरश्मिः।
ये श्रोत्रं चक्षुषी संचरन्ति तन्मे॥११॥

१६२. यदत्र षष्ठं त्रिशतं शरीरं यज्ञस्य गुह्यं नव नावमाद्यम्।
दश पञ्च त्रिशतं यत्परं च तन्मे॥१२॥

१६३. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तन्मे॥१३॥

१६४. अचिन्त्यं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तपरं च यत्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यानं तन्मे॥१४॥

१६५. अस्ति विनाशयित्वा सर्वमिदं नास्ति पुनस्तथैव धृष्टं ध्रुवम्।
अस्ति नास्ति हितं मध्यमं परं तन्मे॥१५॥
१६६. अस्ति नास्ति विपरीतो प्रवादोऽस्ति नास्ति सर्वं वाङ्दं गुह्यम्।
अस्ति नास्ति परात्परो यत्परं तन्मे॥१६॥
१६७. परात्परतरं यच्च तत्पराच्चैव तत्परम्।
तत्परात्परतरं ज्ञेयं तन्मे॥१७॥
१६८. परात्परतरो ब्रह्मा तत्परात्परतो हरिः।
तत्परात्परतो ह्येईष तन्मे॥१८॥
१६९. गोभिर्जुष्टो धनेन ह्यायुषा च बलेन च।
प्रजया पशुभिः पुष्कलार्ध्यं तन्मे॥१९।
१७०. प्रयतः प्रणवो नित्यं परमं पुरुषोत्तमम्।
ॐकारं परमात्मानं तन्मे॥२०॥
१७१. यो वै वेदादिषु गायत्री सर्वव्यापी महेश्वरात्।
यद्विरुतं तथा वैश्यं तन्मे॥२१॥
१७२. यो वै वेद महादेवं परमं पुरुषोत्तमम्।
यः सर्वं यस्यचित्सर्वं तन्मे॥२२॥
१७३. योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यते ह्य१ंजईश्वरः।
अकायो निर्गुणोऽध्यात्मा तन्मे॥२३॥
१७४. कैलाशशिखराभासं हिमवद्गिरिसंस्थितम्।
नीलकण्ठं त्र्यक्षं च तन्मे॥२३॥
१७५. कैलाशशिखरे रम्यै शङ्करस्य शुभे गृहे।
देवतास्तत्र मोदन्ति तन्मे॥२५॥
१७६. आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
उत्पादितं जगद्व्याप्तं तन्मे॥२६॥
१७७. यइमं शिवसंकल्पं सदा ध्यायन्ति ब्राह्मणाः।
ते परं मोक्षं गमिष्यन्ति तन्मे॥२७॥

१७८. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२८॥

१७९. यासामूधश्चतुर्बिलं मधोः पूर्णं घृतस्य च।
ता नः सन्तु पयस्वतीर्बह्वीर्गोष्ठे घृताच्यः॥ १०.१७४.५

१८०. उप मैतु मयोभुवःऽऊर्जं चौजश्च बिभ्रतीः।
दुहाना अक्षितं पया मयि गोष्ठे नि वर्त्तध्वं यथा भवान्युत्तमः॥६॥

१८१. नेजमेष परा पत सुपुत्र पुनरा पत।
अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान्॥४॥ १०.१८९.४

१८२. यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमादधे।
एवं त्वं गर्भमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥५॥

१८३. विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम्।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥६॥

१८४. अनीकवन्तमूतयेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे।
स नः पर्षदति द्विषः॥६॥१०.१९२.६

१८५. संज्ञानमुशना वदत् संज्ञानं वरुणो वदत्।
संज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च संज्ञानं सविता वदत्॥१॥ १०.१९७.१

१८६. संज्ञानं नः स्वेभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम्॥२॥

१८७. यत्कक्षीवान् संवनं पुत्रोऽङ्गिरसामवेत्।
तेन नोऽद्य विश्वे देवाः सं प्रियां समजीजनम्॥३॥

१८८. सं वो मनांसि जानतां समाकूतीर्मनामसि।
असौ यो विमना जनस्तं समावर्त्तयामासि॥४॥

१८९. तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवीं स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥५॥

१९०. नैर्हस्त्यं सेनादरणं परिवर्त्म तु यद्धविः।
तेनामित्राणां बाहून् हविषा शोषयामसि॥१॥ १०.१९८.१

१९१. परि वर्त्मान्येषामिन्द्रः पूषा च सस्रतुः।
तेषां वोअग्निदग्धानामग्निगूळ्हानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्॥२॥

१९२. ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्य भियं यथा।
पराँअमित्राँ एजत्वर्वाची गौरुपेजतु॥३॥

१९३. प्राध्वराणां पते वसो होतर्वरेण्यक्रतो।
तुल्यं गायत्रमृच्यते॥१॥१०.१९९.१

१९४. गोकामो अन्नकामः प्रजाकामउत कश्यपः।
भूतं भविष्यत्प्र स्तौति महद्ब्रह्मैकमक्षरम् बहुब्रह्मैकमक्षरम्॥२॥

१९५. यदक्षरं भूतकृतो विश्वे देवाउपासते।
महऋषिमस्य गोप्तारं जमदग्निमकुर्वत॥३॥

१९६. जमदग्निरा प्यायते छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः।
राज्ञः सोमस्य भक्षेण ब्रह्मणा वीर्यावता
शिवा नः प्रदिशो दिश सत्या नः प्रदिशो दिशः॥१६॥

१९७. अजो यत्तेजो ददृशे शुक्रं ज्योतिः परोगुहा।
तदृषिः कश्यपः स्तौति सत्यं ब्रह्म चराचरं ध्रुवं ब्रह्म चराचरम्॥५॥

१९८. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
अगस्त्यस्य त्र्यायुषं यद्देवानां त्र्यायुषं मन्मे अस्तु त्र्यायुषम्॥६॥

१९९. तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेयः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नोअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥७॥

महानाम्नी

२००. विदा मघवन् विदा गातुमनु शंसिषो दिशः।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो॥१॥१०.२००.१

२०१. आभिष्ट्वमभिष्टिभिः प्रचेतन प्र चेतय।
इन्द्र द्युम्नाय न इष एवा हि शक्रः॥२॥

२०२. राये वाजाय वज्रिवः शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे।
मंहिष्ठ वज्रन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व॥३॥

२०३. विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम्॥४॥

२०४. यो मंहिष्ठो मघोनां चिकित्वाँ अभि नो नय।
इन्द्रो विदे तमु स्तुषे वशी हि शक्रः॥५॥

२०५. तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः पर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्॥६॥

२०६. इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः पर्षदति द्विषः स नः पर्षदति स्त्रिधः॥७॥

२०७. पूर्वस्य यत्ते अद्रिवः सुम्न आ धेहि नो वसो।
पूर्द्धि शविष्ठ शश्वत ईशे हि शक्रः॥८॥

२०८. नूनं तं नव्यं संन्यसे प्रभो जनस्य वृत्रहन्।
समन्येषु ब्रवावहै शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयाः॥९॥

पुरीषपद्

२०९. एवा ह्येऽवा। एवा ह्यग्ने। एवा हीन्द्र।
एवा हि पूषन्। एवा हि देवाः॥१०॥

२१०. एवा हि शक्रो वशी हि शक्रो वशाँ अनु।
आयो मन्यार्य मन्यव उपो मन्यार्य मन्यव उपो हि विश्वथ॥११॥

२११. अग्निर्देवेद्धः। विदा मघवन् विदोम्॥१२॥

२१२. ऊँ नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः।
नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि॥१३॥

पञ्चमाध्याय

ऋग्वेद की शाङ्खायनसंहिता का स्वरूप

नमो॒ ब्रह्म॑णे॒ नमो॑ऽस्त्वग्नये॒
नम॑ः पृथि॒व्यै नम॒ऽओष॑धीभ्यः।
नमो॑ वा॒चे नमो॑ वा॒चस्पत॑ये॒
नमो॒ विष्ण॑वे म॒हते॑ क॑रोमि॥

(ऋ. १०. १९१. ३२)

63

आचार्य शाङ्खायन का ऋषित्व

'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्'[1] नामरूपात्मिका चराचररूपा त्रैकालिकी यह सृष्टि पुरुषरूप ही है। परमपुरुष से इसकी अभिव्यक्ति होती है, उन्हीं के कारण इसकी स्थिति बनी रहती है और पुनः उन्हीं पुरुष में इसका तिरोभाव भी हो जाता है। इसके उद्भव-स्थिति-लय का हेतु तो पुरुष ही है। उपनिषद् का वचन है—

तज्जलानिति, यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्ति अभिसंविशन्ति।[2]

इसलिए इस सृष्टि की न तो उत्पत्ति है और न ही विनष्टि, इसका प्रादुर्भाव-तिरोभाव और पुनः आविर्भाव होता है। इसलिए यह सृष्टि नित्य है। यथा परमपुरुष से सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार वेदों की भी।[3] सृष्टि के साथ ही वेदों का प्रादुर्भाव होता है, अतः वेद भी नित्य हैं। यथा भगवान् श्रीहरिनारायण इस जगत् के परमकारण हैं उसी प्रकार समस्त शास्त्रों तथा स्मृति आदि ग्रन्थों के मूल वेद हैं।[4] युगान्त में तिरोहित हुए वेदों को नवीन युग में ब्रह्माजी की प्रेरणा से ऋषिगण पुनः प्राप्त कर लेते हैं।[5] उनके अन्तःकरण में इस ज्ञाननिधि का स्फुरण हो जाता है और इसी की अभिव्यक्ति हो जाती है। इस तरह प्रारम्भ में यह वेद एक ही[6] था और गुरु- शिष्य की उदात्त श्रुतिपरम्परा में इसका संरक्षण होता रहा। पर आचार्य-स्थान- अनुष्ठान-उच्चारणादि भेदों के कारण एक ही वेदतरु असंख्य शाखा प्रशाखाओं से समृद्ध हो गया। भगवान् श्रीहरि के ज्ञानावतारी बादरायण कृष्ण द्वैपायन ने इस अनुपम ज्ञान निधि के रक्षणार्थ तथा सुखपूर्वक ग्रहणार्थ ऋक्-यजुस्-साम-अथर्व रूप में इसका

---

1. ऋ. 10.90.2
2. तैत्तिरीय 13.1.1
3. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत् ऋचः सामानि जज्ञिरे।
   छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।। ऋ. 1.90.9
4. युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
   लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा।। महाभा0 वनपर्व
5. यथाऽनादिर्हरिः ख्यातो निदानं जगतां परम्।
   तथा वेदोऽपि शास्त्राणां स्मृत्यादीनासं महाशयः।। भूमिका श्चरणव्यूहभाष्य
6. एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः। भागवत 9.14.49

चतुर्धा विभाजन कर दिया[7] और पैल-वैशम्पायन-जैमिनि-सुमन्तु नामक अपने चार शिष्यों को प्रदान किया और शिष्यों ने भी अपने-अपने शिष्यों को प्रदान किया। इस तरह श्रीगुरुदेव व्यास से प्राप्त ऋग्वेद को पैल ने अपने 5 शिष्यों को प्रदान किया—

1. शाकल 2. बाष्कल 3. आश्वलायन 4. शाङ्खायन तथा 5. माण्डूकायन

इस तरह आचार्य शाङ्खायन गुरुदेव पैल के साक्षात् 5 शिष्यों के अन्तर्गत हैं और एक शाखा के प्रवर्त्तक हैं और यह शाखा इन्हीं के शाङ्खायन नाम से सुप्रख्यात है। चरणव्यूह में आचार्य शौनक ऋग्वेद की 5 शाखाओं का नामग्रहणपूर्वक उल्लेख करते हैं।[8]

ये सभी शाखाएँ इन्हीं आचार्यों के नाम से प्रसिद्ध हो गई। चरणव्यूह के भाष्यकार महिदास ने इन सभी आचार्यों को एकवेदिन् कहा है, सभी बह्वृच ऋग्वेद के ऋषि हैं—

ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः।
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम्॥
शाङ्खाश्वलायनौ चैव माण्डूका बाष्कलस्तथा।
बह्वृचा ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः॥

यहाँ पर इन सभी आचार्यों के ऋषित्व का सुस्पष्ट कथन है। मत्स्यपुराण में शाङ्खायन का ऋषिरूप में कथन है—

शाङ्खायनश्च ऋषयस्तथा वै वेदशेरकाः। 200.11

श्रीमद्भागवतपुराण में मैत्रेय मुनि-विदुरसम्वाद में शाङ्खायन का भागवत धर्म के विशिष्ट आचार्य के रूप में वर्णन है, इनको परमहंसों में प्रधान कहा गया है—

प्रोक्तं किलैतद् भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन।
सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायाङ्गधृतव्रताय॥
सांख्यायनः परमहंसमुख्यो विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः।
जगाद सोऽस्मद् गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च॥

भागवत 3.8.7-8

कौषीतकि आरण्यक के अनुसार यह शाङ्खायन कुषीतक पुत्र कौषीतकि कहोल के शिष्य

---

7. योऽयमेको यथा वेदतरुस्तेन पृथक्कृतः।
चतुर्धाथ ततो जातं वेदपादपकाननम्॥
बिभेद प्रथमं विप्र पैलो ऋग्वेदपादपम्॥ विष्णु. 3.4.15-16

8. एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति। चरणव्यूह 1.7, 8

हैं। कहोल ऋग्वेदीय आचार्य हैं। शाङ्खायन ने इस गुरुदेव से अध्ययन करके विद्या में प्रवीणता प्राप्त की और एक विशिष्ट प्रवचनकर्त्ता बन गए, एक शाखा के प्रवर्त्तक हो गए।

आश्वलायनगृह्यसूत्र में ऋषितर्पण के विधान में सुमन्तु-जैमिनि वैशम्पायनपैलादि ऋषियों के क्रम में शाङ्खायन को भी ऋषि रूप में ग्रहण किया गया है—

सुमन्तुजैमिनि वैशम्पायन पैल......कहोलं कौषीतकं.........सुयज्ञं सांख्यायनमैतरेयं.......शौनकमाश्वलायनं ये चान्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यन्तु।

आश्व०गृ०सू० 3.4.4

इस तरह शाङ्खायन ऋग्वेदीय ऋषि हैं और एक शाखा के प्रवर्तक हैं जो इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इनके द्वारा प्रवर्तित शाखा वैदिक वाङ्मय की समृद्धतम शाखा है। इसी शाखा की संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र सब उपलब्ध हैं।

शाङ्खायनसंहिता की उपलब्धि

ऋग्वेद की 21 या 5 शाखाओं में से केवल एक शाकल संहिता उपलब्ध हो पाई थी जिसका प्रथम प्रकाशन मैक्समूलर द्वारा वर्ष 1849-73 में किया गया। अन्य को कालकवलित मान लिया गया। पर इनमें आश्वलायन तथा शाङ्खायन राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में पूरी तरह सुरक्षित हैं। शाङ्खायन का विवरण इस प्रकार है—

इस शाङ्खायन शाखा की संहितापाठ की 8 तथा पदपाठ की 17=कुल 25 पाण्डुलिपियाँ राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी (सम्प्रति राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान जोधपुर द्वारा अधिगृहीत) में पूरी तरह सुरक्षित हैं। सभी पाण्डुलिपियाँ अष्टकक्रम में आठ भागों में सुव्यवस्थित हैं। संहिता तथा पदपाठ दोनों की पाण्डुलिपियाँ पृथक् पृथक् हैं तथा भिन्न-भिन्न लिपिकर्त्ताओं द्वारा, भिन्न-भिन्न स्थानों पर तथा भिन्न-भिन्न समयों में लिखी गई हैं, फिर भी इन सभी में पूर्ण अनुरूपता है, पाठभेद नहीं है। इससे इनकी प्रामाणिकता की पूरी तरह सम्पुष्टि होती है।

इन पाण्डुलिपियों को तत्कालीन अलवरपुराधीश महाराज सवाई विनय सिंह जू देव (शासनकाल 1814-57) हैदराबाद तथा अहमदनगर से अलवर ले आए थे- ऐसा सभी पाण्डुलिपियों के मुखपृष्ठ पर अंकित है—

श्रीमन्महाराजाधिराजमहारावराजाश्रीसवाई विनयसिंहदेववर्मणा पुस्तकं हैदराबादत आयातम्। अहमदनगरात्पुस्तकमिदमायातम्।

इन सभी पाण्डुलिपियों में प्राचीनतम पदपाठ सप्तम अष्टक की विक्रम संवत् 1517

भाद्रवदि 5 तथा संहितापाठ अष्टम अष्टक की विक्रम संवत् 1659 मार्गशीर्ष शुदि 5 सोमवार की है तथा वाराणसी में लिखी गई है।

सनातन संस्कृति के संरक्षक सम्पोषक विद्यानुरागी महाराजश्री ने इन पाण्डुलिपियों से पैलेस स्थित अपने निजी पुस्तकालय को और अधिक समृद्ध बनाया। वर्ष 1848 में इन्होंने पं० गङ्गाधर जोशी को लाइब्रेरियन बनाया, पर यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि यह अत्यन्त बहुमूल्य निधि, ऋषियों की धरोहर विद्वानों की दृष्टि से कैसे ओझल रही। संस्कृतविद्या के सुप्रख्यात आचार्य, डी०ए०वी० कालेज लाहौर में अनुसंधान केन्द्र के अध्यक्ष पं० भगवद्दत्तजी का अलवर आना तो हुआ पर इन्होंने इनका अध्ययन नहीं किया, जबकि वे वैदिक वाङ्मय का इतिहास यह ग्रन्थ ही लिख रहे थे। जैसा कि वे स्वयं अपने इस ग्रन्थ में इस तथ्य का उल्लेख कर रहे हैं।

अलवर के राजकीय पुस्तकालय में ऋग्वेद के कुछ कोश हैं, इन्हें शाङ्खायन कहा गया है, हम उन्हें देख नहीं सके। —पृ० 209 द्वि०सं०

जोधपुर विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग में अध्यापन कार्य में संलग्न मुझको वर्ष 1968 में अलवर पैलेस स्थित इस शाङ्खायन के साथ ही आश्वलायन की भी पाण्डुलिपियों के अवलोकन अध्ययन का अवसर मिला। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के तत्कालीन निदेशक वेदमनीषी डॉ० फतह सिंह जी, संस्कृत विभागाध्यक्ष स्वामी सुरजनदासजी, महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी, स्वामी योगीन्द्रानन्दजी तथा मेरे सम्पूज्य गुरुदेव सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वेद विभागाध्यक्ष पं० गोपालचन्द्र मिश्रजी द्वारा वर्ष 1970 में इन सभी पाण्डुलिपियों की प्रामाणिकता की सम्पुष्टि हुई। फलस्वरूप प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान द्वारा इन दोनों ही संहिताओं की पृथक् पृथक् प्रकाशन की योजना प्रकल्पित की गई पर निदेशक महोदय की सेवानिवृत्ति के कारण यह प्रकाशन योजना फलीभूत नहीं हो पाई।

ऋग्वेद : शाङ्खायन संहिता :

राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में सुरक्षित पाण्डुलिपियों का विवरण :

अष्टक	संहितापाठ/ पदपाठ	पाण्डुलिपि क्रमाङ्क	पत्रसंख्या प्रतिपृष्ठ पंक्ति संख्या	प्रतिलिपिकर्त्ता नाम समयस्थानादि
प्रथम	संहितापाठ	1	$82^{1/2/8}$	दवे अविमुक्तेश्वर
	पदपाठ	10	54/9	संवत् 1722 श्रावण पञ्चमी गुरुवार

	पदपाठ	18	153/8	संवत् 1809 चैत्रवदी 10 शनिवार श्री अविमुक्त वाराणसी
द्वितीय	संहितापाठ	2	144/8	पण्डा सुखराम जीवणराम की पोथी
	पदपाठ	11	$56^{1/2/9}$	संवत् 1710
	पदपाठ	19	88/9	सौम्य संवत्सर माघमास शुक्ल एकादशी
तृतीय	संहितापाठ	3	81/8-10	-
	पदपाठ	12	$56^{1/2/9}$	केलकर गणेशकर पदाङ्की पोथी संवत् 1710 फाल्गुन-वदि चतुर्दशी गुरुवार
	पदपाठ	20	99/9	विकारी संवत्सर श्रावण-शुद्ध 3
	संहितापाठ	4	$63^{1/2/10}$	नृसिंहभट्ट उपासनी, संवत् 1761 फाल्गुन कृष्णपञ्चमी
चतुर्थ	पदपाठ	13	55/9	
	पदपाठ	21	167/7	संवत 1670
पञ्चम	संहितापाठ	5	$192^{1/2/6}$	गहूरसुतभट्ट
	पदपाठ	14	$54^{1/2/9}$	संवत् 1711 श्रावणशुद्ध प्रतिपद्
	पदपाठ	22	88/9	गोपीनाथ पुत्र महादेव, तलेश्वर ग्राम युवानाम संवत्सर 1565 दक्षिणायन शरद् ऋतु आश्विनमास वदि अष्टमी रविवार शकसंवत् 1430
षष्ठ	संहितापाठ	6	$174^{1/2/6}$	गहूरभाईभट्टसुत सुबाभट्ट संवत् 1813 मार्गशीर्ष अष्टमी इन्दुवासर
	पदपाठ	15	$53^{1/2/9}$	शैवश्रीपञ्चदेवसुत विजयरा-

				मनीपोथी संवत् 1711 भाद्र शुक्ल अठमी
		23	88/8	
सप्तम	संहितापाठ	7	95 1/2/7	श्रीरामायन=कृष्णपुत्राणाम् अध्ययनार्थं, काशी संवत् 1681 फाल्गुन शुक्ल प्रतिपद् शनिवार
	पदपाठ	16	55 1/2/9-10	नागरज्ञातीय पं0 भाऊ विद्यमानसुतसुरजीत-सुत रुद्रदेव द्वारा लिखित-भ्रातृत्रय सोमनाथरघुनाथ श्रीनाथ पठनार्थं परोप-काराय च संवत् 1738 द्वितीय चैत्रवदि 8 भृगुवासर (रात्रि प्रथमयात्रे लेखन-कार्य सम्पन्न)
		14	73/8	संवत् 1517 भाद्रवदि 5
अठम	संहितापाठ	8	123/8	श्रीमद् वाराणसी मध्यात् आभ्यन्तर नागरज्ञातीय धर्मदत्तेन दवे केशवसुत दवे रघुनाथेन धर्मदत्तेन धर्मक्षेत्रमध्यलिखापितमिदं संवत् 1659 मार्गशीर्ष शुदि 5 सोमवार
	पदपाठ	17	47/10	
		25	80/11	गंगेश्वर संवत् 1561
		26	721/2/10	शिवराम/पठनार्थं श्रीमन्महाराजाधिराज-राजेन्द्र महाराव राजाजी श्रीश्रीमंगलसिंहजी संवत् .....34 ज्येष्ठशुक्ल 15 चन्द्रवासर शुभं भूयात्

शाङ्खायन संहिता : श्रुतिपरम्परा में सुरक्षित

यह अत्यन्त आह्लाद का विषय है कि यह शाङ्खायन संहिता मौखिकी श्रुतिपरम्परा में अद्यावधि पूरी तरह सुरक्षित चली आ रही है। राजस्थान का बाँसवाड़ा क्षेत्र, नागर ब्राह्मण परिवार का अधिवास नागरवाड़ा, नोलियागली। 105 वर्ष की अवस्था में भी वेदालोक से आलोकित देदीप्यमान कमलमुख से इस संहिता का पारायण करते हुए पं0 शुभ शङ्कर नागरजी के दर्शन का, उनसे शुभाशीर्वचन प्राप्त करने का मुझे सौभाग्य मिला है। इस उदात्त श्रुतिरक्षण की परम्परा का सम्प्रति उनके सुयोग्य कर्मठ आत्मज वेदमूर्ति पं0 हर्षदलाल नागर तथा अन्य परिवारीजन पं0 इन्द्रशंकर झा तथा पं0 जयनारायण पण्ड्या निर्वहन कर रहे हैं। घर के पास स्थित शिवमन्दिर में इस संहिता का वे लोग पारायण करते हैं और श्रुतिपरम्परा को जीवन्त बनाए हुए हैं। इन नागर ब्राह्मणों के श्रौत एवं गृहकर्म शाङ्खायनश्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र के अनुसार सम्पन्न होते हैं। महर्षि सान्दीपनि वेदविद्या प्रतिष्ठान उज्जैन द्वारा प्रोत्साहन स्वरूप इनको वर्षासन प्रदान किया जाता है। पर यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि श्रुतिपरम्परा में सुरक्षित इस शाङ्खायन संहिता का प्रकाशन क्यों नहीं हो पाया और अब वर्ष 2012-13 में इस संहिता के प्रकाशन के अनन्तर वेद विद्या प्रतिष्ठान द्वारा वेद भूषण परीक्षा हेतु 7 वर्षीय पाठ्यक्रम भी तैयार किया गया है, पर अब तक पाठशालायोजना के अन्तर्गत किसी भी पाठशाला में यह पाठ्यक्रम लागू नहीं हो पाया है।

शाङ्खायन संहिता का प्रकाशन

राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी (सम्प्रति राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान जोधपुर के अन्तर्गत) से सम्प्राप्त ऋग्वेद की दो शाखाओं आश्वलायन तथा शाङ्खायन की पाण्डुलिपियों की प्रामाणिकता की सम्पुष्टि वेदमनीषियों द्वारा वर्ष 1970 में हुई, फलस्वरूप इन दोनों ही संहिताओं के पृथक् पृथक् प्रकाशन की योजना प्रतिष्ठान के यशस्वी वेदमनीषी निदेशक डॉ0 फतह सिंहजी द्वारा प्रकल्पित की गई जो उनके रिटायरमेन्ट के कारण मूर्त्तरूप नहीं ले सकी। पर मैं ऋषियों की इस महत्तम निधि के उद्धार के प्रति संकल्पित, जागरूक तथा सतत प्रयत्नशील रहा। अनेक निबन्धों का प्रकाशन कराया, सङ्गोष्ठियों में विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

फलस्वरूप राजस्थान कोटा महाविद्यालय में डॉ0 फतहसिंहजी के प्रेष्ठ शिष्य-कल्प रहे डॉ0 गिरिधारी शर्माजी (हृदय रोग विशेषज्ञ चिकीत्सक बाम्बे हास्पिटल-सिविल लाइन्स जयपुर निवासी) का ध्यान इस ओर गया। श्रीगुरुदेव डॉ0 फतह सिंह जी के सत्संकल्प को पूर्ण करने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया। विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान होशियारपुर के निदेशक वेदपण्डित डॉ0 व्रजविहारी चौबे जी तथा मुझको प्रेरित प्रोत्साहित किया, डॉ0 चौबेजी

को अपने आवास जयपुर आमन्त्रित किया, आश्वलायन के सम्पादनहेतु डॉ0 चौबेजी को तथा शाङ्खायन के लिए मुझको परामर्श दिया। उनके इस अनुरोध को हम लोगों ने स्वीकार कर लिया।

प्रबल ईश्वरीय प्रेरणा, उनका मन्तव्य फलीभूत हुआ। डॉ0 चौबेजी द्वारा सम्पादित पदपाठ सहित आश्वलायन संहिता का दो भागों में इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2009 में प्रकाशन हो गया तथा मेरे द्वारा सम्पादित पदपाठ संवलित शाङ्खायन संहिता का महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन द्वारा अपने रजत जयन्ती पर्व 2012-13 पर 4 भागों में प्रकाशन कर दिया गया। इस प्रकार शाकल के अतिरिक्त ऋग्वेद की दो और संहिताएँ प्रकाश में आ गईं। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में यह महत्तम योगदान है। सम्पूज्य श्रीगुरुदेवों के आशीर्वचन एवं प्रोत्साहन से मेरा 45 वर्षों तक अनवरत किया गया परिश्रम सुफलीभूत हो गया—

शाङ्खायन के सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इसका ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र उपलब्ध था, इस शाखा की केवल संहिता ही उपलब्ध नहीं थी और इसकी उपलब्धता की पूरी पूरी सम्भावना आचार्य प्रवर पद्मभूषण पं0 बलदेव उपाध्याय ने डॉ0 गङ्गासागर राय द्वारा सम्पादित शाङ्खायन गृह्यसूत्र में व्यक्त की थी—

शाङ्खायन शाखा का सम्प्रति ब्राह्मण, आरण्यक (जिसमें उपनिषद् भी समाविष्ट हैं) तथा श्रौत एवं गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं। परन्तु इस बात के सुपुष्ट प्रमाण हैं कि मूलतः इस शाखा की अपनी स्वतन्त्र पृथक् संहिता थी, जो सम्प्रति लुप्त हो गई है। सम्प्रति शाङ्खायनशाखा की संहिता उपलब्ध नहीं है, परन्तु कुछ ऐसे निश्चित प्रमाण हैं जिससे शाङ्खायन शाखा की संहिता के अस्तित्व का पता चलता है।

भूमिका, शाङ्खायनगृह्यसूत्र, रत्नाप्रकाशन, वाराणसी 1995, पृ0 12-13

शाङ्खायनविषयक सन्दर्भ

व्याकरण महाभाष्य में भगवान् पतञ्जलि ने 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' रूप में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का उल्लेख किया था। यहाँ पर केवल संख्या का उल्लेख है, शाखाओं के नाम का नहीं। इनमें शाङ्खायन की स्थिति अवश्य रही होगी।

महार्णव में उल्लेख है कि उत्तर गुर्जर क्षेत्र में ऋग्वेद की कौषीतकी तथा शाङ्खायनी का प्रचार था—

उत्तरे गुर्जरे देशे बह्वृचः परिकीर्तिताः।
कौषीतकिब्राह्मणं च शाखा शाङ्खायनी स्थिता।। महार्णव

अग्निपुराण में ऋग्वेद के भेदों में शाङ्खायन तथा आश्वलायन का उल्लेख है—

भेदः शाङ्खायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः॥ अग्निपु0 271-2

कवीन्द्राचार्य ने अपने सूचीपत्र में संख्या 25 पर शाङ्खायन संहिता तथा ब्राह्मण का उल्लेख किया है। सुप्रख्यात वैदिक पं0 भगवद्दत्त जी अपने ग्रन्थ 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' में उल्लेख करते हैं कि- 'चरणव्यूह निर्दिष्ट चौथा विभाग शांखायनों का है। आश्वलायनों की अपेक्षा इनका हमें कुछ अधिक ज्ञात है। इसका कारण है कि कल्प के अतिरिक्त इनका ब्राह्मण और आरण्यक उपलब्ध है।' पृ0 175

अपने मत की पुष्टि में वे उल्लेख करते है। कि शांखायन श्रौत में बारह ऐसी मन्त्र प्रतीकें हैं जिनके मन्त्र शाकलक शाखा में नहीं मिलते। इनमें से कई सौपर्ण ऋचाएँ हैं........शांखायन श्रौतसूत्र 15.3 के सूत्र हैं—

वेदस्तत् पश्यदिति पञ्च॥8॥
अयं वेन इति वा॥9॥

यहाँ पर 5 ऋचाओं के पाठ का निर्देश है, पर ऋचाएँ सकल न होकर उनकी प्रतीकें दी हुई हैं, इसका यही अभिप्राय है कि ये ऋचाएँ स्वकीय शाखा की हैं। इसी प्रकार शांखायन श्रौत में संज्ञान सूक्त और समिदों, अंजन आदि ऋचाएँ भी प्रतीक मात्र से पढ़ी गई हैं। अतः बहुत सम्भव है कि शाकलों से स्वरूप भेद रखती हुई शांखायनों की कोई स्वतन्त्र संहिता थी। पृ0 176

शांखायन श्रौतसूत्र 9.20.30 में एक पुरोनुवाक्या 'इमे सोमासस्तिरो अह्नयास इति प्रतीकमात्र से पढ़ी गई है। यही पुरोनुवाक्या आश्वलायन श्रौत 6.5 में सकल पाठ में पढ़ी गई है। यदि दोनों सूत्रों की संहिताओं में भेद न था तो पाठ की यह रीति नहीं हो सकती थी।''

पृ0 176

इस प्रकार यह पंडितप्रवर शाङ्खायनसंहिता की स्वतन्त्र स्थिति की सिद्धि करते हैं। पर यह अलवर पैलेस में सुरक्षित इसकी पाण्डुलिपियों का निरीक्षण नहीं कर सके थे।

शाङ्खायनशाखा का वैशिष्ट्य

ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत विमल ज्ञाननिधि वेद की गुरु-शिष्य की उदात्त श्रुति परम्परा में आचार्य-स्थान-अनुष्ठान-उच्चारणादि भेदों के कारण असंख्य शाखा-प्रशाखाएँ हो गईं। महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि के समय वेदों की कुल 1131 शाखाएँ थी, इनमें ऋग्वेद की 21शाखाएँ थी पर सभी सुरक्षित न रह सकी। 13वीं शताब्दी में आचार्य शौनक के समय इसकी केवल 5 शाखाएँ रह गई थीं जैसा कि वे चरणव्यूह में उल्लेख करते हैं—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति॥ 1.7, 8

इनमें से मैक्समूलर महोदय को केवल एक शाकलसंहिता उपलब्ध हुई जिसका उन्होंने 6 भागों में वर्ष 1849 से 73 तक 24 वर्षों में प्रकाशन किया, अन्य शाखाएँ अनुपलब्ध रही। पर सम्प्रति आश्वलायन तथा शाङ्खायन दो और संहिताएँ प्रकाश में आ गई हैं। कतिपय विशेषताओं के कारण इन सभी संहिताओं का अपना-अपना पृथक् स्वरूप है। पर इन संहिताओं में पाठभेद नहीं मिलता। केवल मन्त्रों के क्रम तथा संख्या में अन्तर है।

पाठभेद न होना ही इस श्रुति परम्परा द्वारा सुरक्षित वेद-निधि की विशेषता है। आठ प्रकार की विकृतियों के द्वारा यह पाठ पूरी तरह सुरक्षित है। इस पाठ में एक मात्रा का भी घटाना-बढ़ाना सम्भव नहीं है।

अष्टविकृतियाँ इस प्रकार हैं—

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

इस तरह शाङ्खायन संहिता में भी अन्य संहिताओं से कोई पाठभेद नहीं है। पर इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जिनके कारण इसका अपना पृथक् स्वरूप है। शाकल संहिता से इस शाङ्खायन में तीन दृष्टियों से विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। यथा—

(अ) संहिता पाठ (आ) पद पाठ तथा (3) मन्त्र संख्या।

(अ) संहितापाठ में स्वर के पूर्व नियमित रूप से अवग्रह (ऽ) का प्रयोग है।

यथा— **सोमा ऽ अरंकृता 1.2.1। देवासो ऽ अस्त्रिधः।** 1.3.9
अमी य ऽ ऋक्षा निहितास ऽ उच्चा 1.24.10
विश्वतो ऽ दब्धासो ऽ अपरीतासऽ उद्भिदः॥ 1.89.1
व्यञ्जन त् द् च् का द्वित्व प्रयोग
सर्त्तवे वर्त्तते वर्त्तनिम् मर्त्त्यम् गर्द्दभम् ततर्द्द वर्च्चसा।

(आ) पदपाठ—पदपाठ में समस्त पद के विच्छेदन में तीन पद्धतियाँ विद्यमान हैं।

अवग्रह (ऽ); शून्य (0) तथा अङ्क (2) का प्रयोग :

द्वितीयपद इव को अवग्रह (ऽ) द्वारा पृथक् किया गया है—

पिता ऽ इव। उस्राः ऽ इव। योषा ऽ इव।

जहाँ पर दोनों पदों में कोई स्वरविकार नहीं है उनको शून्य (0) द्वारा पृथक् किया गया है— दिवे0 दिवे। परि0 भूः। कवि0 क्रतुः। रत्न0 धातमम्।

विसर्गयुक्त पद को अङ्क (2) के द्वारा पृथक् किया गया है—

पुरः 2 हितम्। चित्रश्रवः 2 तमः। अहः 2 विद।

शाकलसंहिता में पदविच्छेदन में केवल एक ही विधि अवग्रह (ऽ) है।

वालखिल्यसूक्त

काण्ववंशीय ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत सुप्रख्यात 11 वालखिल्य सूक्त हैं, शाकल संहिता में इनको मूल नहीं माना गया है, इसीलिए आचार्य सायण ने इन पर अपना भाष्य नहीं प्रस्तुत किया है तथा शाकल्य ने पदपाठ। पर इनकी स्थिति वंश मण्डलीय संघटन व्यवस्था के अनुसार काण्व ऋषि सम्बद्ध अष्टममण्डल में ही है। इन सूक्तों की विशिष्ट महिमा और प्रभाव हैं। ऐतरेय ब्राह्मण 29.8; 30.2 में इनका विनियोग तथा महत्त्व बतलाया गया है। जब ब्राह्मणभाग इनका विनियोग बतला रहा है तो इनको मन्त्रभाग में अनिवार्यतः होना चाहिए। इन एकादश सूक्तों में प्रथम 7 को बाष्कल ने मूलरूप में स्वीकार कर लिया है तथा क्रमाङ्क 10 को छोड़कर 10 सूक्तों को आश्वलायन ने मूलरूप में ग्रहण कर लिया है और इस शाङ्खायन ने इन सभी एकादश सूक्तों को मूलरूप में स्वीकार कर लिया है। 18 वर्गों में विभक्त इन सूक्तों में 80 मन्त्र हैं। इस संहिता के षष्ठ अष्टक के चतुर्थ अध्याय में वर्ग 14 से 31 तक इनकी स्थिति है। इन बालखिल्य सूक्तों को मूल मान लेना शाङ्खायन शाखा की प्रमुख विशेषता है।

महानाम्नी

इसी प्रकार 'विदा मघवन..... शं नो द्विपदे शं चतुष्पदे रूप से अत्यन्त महिमा मण्डित महानाम्नीसंज्ञक ऋचाएँ हैं। ऋग्वेदीय आरण्यक ऐतरेय (4.1) में इनकी स्थिति है तथा ऐतरेय ब्राह्मण 22.2 इनका विनियोग बतला रहा है। पर शाकल संहिता में इनकी स्थिति नहीं है। इन ऋचाओं को भी ऋग्वेदीय किसी संहिता-मन्त्रभाग में होना चाहिए। आश्वलायन तथा शाङ्खायन इन दोनों संहिताओं में इनकी स्थिति है तथा विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इन दोनों ही संहिताओं की समाप्ति भी इन्हीं ऋचाओं से होती है। इस प्रकार ब्राह्मणभाग द्वारा निर्दिष्ट विनियोग सुसंगत हो जाता है, विनियोग को अपना आधार मिल जाता है।

(3) मन्त्रसंख्या

मन्त्रों की संख्या की दृष्टि से शाकल से इस शाङ्खायन में पर्याप्त अन्तर है। यह संहिता अष्टक क्रम में विभक्त है। इस प्रकार इसमें 8 अष्टक और 64 अध्याय हैं जो शाकल के समान है, पर वर्गों की संख्या इसमें 24 अधिक 2048 है। मण्डलक्रम के अनुसार वही 10 मण्डल, 85 अनुवाक तथा बालखिल्य सहित 1028 सूक्त हैं, पर मन्त्रों की संख्या 75 अधिक कुल 10627 हैं।

मन्त्रों की संख्या में वृद्धि का कारण शाकल से 75 अतिरिक्त मन्त्रों का होना है। शाकल में खिलरूप में माने गए इन मन्त्रों को इस संहिता में मूलरूप में स्वीकार किया गया

है। शाकल की समाप्ति संज्ञान सूक्त के 'यथा वः सुसहासति' मन्त्र 10.191.4 से होती है। पर इस संहिता में इस संज्ञान सूक्त के अनन्तर 28 मन्त्र और अधिक हैं। पञ्चदश मन्त्रात्मक एक अतिरिक्त संज्ञानसूक्त, नव ऋचात्मक महानाम्नी तथा 3 पुरीषपद मन्त्र हैं। इसकी समाप्ति—

नमो ब्रह्मणे नमोऽ स्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नमः पृथिव्यै नम ऽ ओषधीभ्यः।

नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि॥

मन्त्र से होती है। इनके अतिरिक्त अष्टक-अध्याय क्रम में वर्गों के अन्तर्गत भी अतिरिक्त मन्त्र हैं। विवरण इस प्रकार है—

संहिता	अष्टक	अध्याय	वर्ग	मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र
शाकल	8	64	2024	10	85	1028	10552
शाङ्खायन	8	64	2048	10	85	1028	10627

शाकल संहिता से शाङ्खायन में विद्यमान अतिरिक्त मन्त्रों का विवरण :

क्र.सं.	अष्टक	अध्याय	वर्ग	मन्त्र	संख्या
1	द्वितीय	5	16	मा बिभेर्न मरिष्यसि......नष्टचेतनः	4
2	चतुर्थ	2	25	जागर्षि त्वं भुवने	1
3	चतुर्थ	7	20	चक्षुश्च श्रोत्रं च....जलबुद्बुदोपमम्	2
4	सप्तम	2	19-22	यम्मे गर्भे वसतः...क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्	20
5	सप्तम	5	27	यत्र लोक्यास्तनूत्यजा....कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव	5
6	सप्तम	6	5	सस्त्रुषीस्तदपसो	1
7	अष्टम	7	6	सितासिते सरिते	1
8		5	4	उदपप्ताम वसते	1
9		7	18-20	अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो....विराजं समिधां कुरु	12
10		8	57-63	संज्ञानमुशना.....विष्णवे महते करोमि	28
				पूर्ण योग	**75**

शाङ्खायन : वैदिक वाङ्मय की समृद्धतम शाखा

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्-आपस्तम्बयज्ञपरिभाषा 1.1.31

मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः सायणः, मन्त्रब्राह्मणरूपौ द्वावेव वेदभागौ

मन्त्र तथा ब्राह्मण, उभयभागों की सम्मिलित संज्ञा वेद है अर्थात् वेद के अन्तर्गत मन्त्र तथा ब्राह्मण दो भाग हैं। मन्त्रस्तु ब्रह्म तद्व्याख्यानं ब्राह्मणम्- मन्त्र मूल हैं और इन्हीं की व्याख्या ब्राह्मणग्रन्थ प्रस्तुत करते हैं। इस ब्राह्मणभाग के अन्तर्गत 3 उपविभाग हैं—

ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्।

इन्हीं की प्रसिद्धि कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड के रूप में है। इन्हीं तीन दृष्टियों से मन्त्रभाग की व्याख्या की गई है और वेदाङ्ग मन्त्रार्थप्रकाशन में उपकारक है। इस तरह प्रत्येक मन्त्रभाग के अपने-अपने व्याख्यात्मक ब्राह्मणभाग हैं, पर व्याख्या की यह पूरी परम्परा सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में शाङ्खायन ही ऐसी शाखा है जिसकी यह व्याख्या परम्परा विद्यमान है। इस शाङ्खायन शाखा का ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र पूर्वतः विद्यमान था, केवल इसकी संहिता ही उपलब्ध नहीं थी। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठान उज्जैन द्वारा वर्ष 2012-13 में विलुप्त मान ली गई, पर मेरे द्वारा सम्पादित इस संहिता का भी प्रकाशन हो गया। इस तरह अब ऋषि शाङ्खायन की यह शाखा सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में समृद्धतम बन गई है।

शाङ्खायन ब्राह्मण

इस ब्राह्मण के द्रष्टा ऋषि शाङ्खायन हैं। यह कहोल कौषीतकि के श्रेष्ठ शिष्य हैं। यह ब्राह्मण 30 अध्यायों में विभक्त है। पुनः अध्यायों का विभाजन खण्डों में है। इस तरह यह 227 खण्डों से संवलित है। यह ब्राह्मण सोमयागों का सुविशद निरूपण करता है तथा इनके अतिरिक्त इष्टियों तथा पशुयागों को भी प्रस्तुत करता है।

अध्यायों में विवेचित विषयों का विवरण इस प्रकार है—

1. अग्न्याधान 2. अग्निहोत्र 3. दर्शपूर्णमास 4. विकृति इष्टियाँ, 5. चातुर्मास तथा 6. ऋत्विक् ब्रह्मा। तदनन्तर 7 से 30 तक के अध्यायों में विविध सोमयागों का वर्णन है।

यह ब्राह्मण देवों में रुद्र का ज्येष्ठत्व प्रतिपादित करता है- रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम् (25-13) तथा इस रुद्र देवता के 8 नामों का उल्लेख करता है—

1. भव 2. शर्व 3. पशुपति 4. उग्र 5. महादेव 6. रुद्र 7. ईशान तथा 8. अशनि और इस तरह रुद्रदेव की विशिष्ट महिमा का ख्यापन करता है।

शाङ्खायनारण्यक

यह आरण्यक 15 अध्यायों में विभक्त है। प्रारम्भिक दो अध्यायों में महाव्रत का

निरूपण है। वर्षपर्यन्त चलने वाले गवामयन नामक सत्रयाग का उपान्त्यदिन ही महाव्रत है। प्रातः, माध्यन्दिन तथा सायं तीनों सवनों में होता नामक ऋत्विक् द्वारा प्रयुक्त होने वाले शस्त्रों का इसमें निरूपण है। इस आरण्यक के 4 अध्याय तृतीय से लेकर षष्ठ तक कौषीतक्युपनिषद् है तथा सप्तम एवम् अष्टम अध्यायों का सम्मिलितरूप संहितोपनिषद् है। वे दोनों ही उपनिषद् इस आरण्यक के अविभाज्य अङ्ग हैं। नवम अध्याय में प्राण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। दशम अध्याय में आन्तर अग्निहोत्र की सुविशद प्रस्तुति है। यह मानव शरीर दिव्य है। इसके भीतर सभी देवताओं का वास होता है। इन देवों की सन्तृप्ति के लिए इस आन्तर अग्निहोत्र का अनुष्ठान किया जाता है, यही है आध्यात्मिक अग्निहोत्र। 11वें अध्याय में मृत्युभय तथा अनिष्टों के निवारण हेतु विविध यागों का विधान किया गया है। 12वें अध्याय में विल्वफल से एक मणि के निर्माण की प्रक्रिया बतलाई गई है जिसके धारण करने से शत्रुओं पर विजयश्री मिलती है। 13वें तथा 14वें अध्यायों में आत्मा तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन है।

'अहं ब्रह्मास्मि' यह महावाक्य सर्वोत्तम उपदेश है। इसके महत्त्व का इसमें सुष्ठु प्रतिपादन है। अर्थज्ञान की विशिष्ट महिमा का इसमें ख्यापन है। मन्त्रार्थ बोध पर विशेष बल दिया गया है। अर्थज्ञ व्यक्ति इस लोक में सम्पूर्ण कल्याण का भागी बनता है तथा शरीर त्याग के अनन्तर उसको स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत अर्थबोधरहित व्यक्ति स्थाणु के समान केवल भार का वहन करता है—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

अन्तिम 15वें अध्याय में आचार्यों की वंशपरम्परा का निरूपण है। स्वयम्भू ब्रह्मा-प्रजापति-इन्द्र-विश्वामित्र-देवरात के क्रम से उद्दालक-आरुणि-कहोल कौषीतकि- शाङ्खायन तक प्रस्तुत है। इसके अनुसार यह गुणाख्य शाङ्खायन कहोल कौषीतकि के शिष्य हैं।

शाङ्खायनोपनिषद्

यह उपनिषद् कौषीतक्युपनिषद् नाम से सुप्रसिद्ध है। संहितोपनिषद् के साथ ही यह उपनिषद् शाङ्खायनारण्यक का अविभाज्य अङ्ग है। 15 अध्यायात्मक इस आरण्यक के 4 अध्याय तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम तथा षष्ठ इस उपनिषद् का स्वरूप बनाते हैं तथा सप्तम एवम् अष्टम अध्याय हैं- संहितोपनिषद्। इस शाङ्खायनोपनिषद् में कुल 4 अध्याय हैं। प्रथमाध्याय में शरीर त्याग के अनन्तर आत्मा के गमनार्थ देवयान तथा पितृयान नामक दो मार्गों का वर्णन किया गया है। द्वितीयाध्याय में प्राणोपासना प्राणविद्या तथा उक्थ का निरूपण है। प्राण ही ब्रह्म है, उक्थ ही ब्रह्म है, का प्रतिपादन किया गया है। प्राणो ब्रह्मेति उक्थं ब्रह्मेति। तृतीयाध्याय में इन्द्र द्वारा काशिराज दिवोदास को दी गई आत्मविद्या का दिव्य उपदेश है। चतुर्थाध्याय में

उशीनर-मत्स्य-कुरु-पाञ्चाल-काशी-विदेह आदि के उल्लेख द्वारा इन जनपदों के ऐतिहासिक महत्त्व को प्रकाशित किया गया है।

इस उपनिषद् में ब्रह्मविद्या की प्राप्ति पर विशेष बल दिया गया है। एतदर्थ प्राणविद्या का बोध तथा उपासना अत्यन्त आवश्यक है।

शाङ्खायन श्रौतसूत्र

शाङ्खायन ब्राह्मण पर समाश्रित यह मुख्य रूप से दर्शपूर्णमास- अग्निहोत्र-चातुर्मास्य अग्निष्टोम अतिरात्र द्वादशाह विश्वजित् इत्यादि यज्ञीय अनुष्ठानों का सूत्ररूप में निरूपण करता है।

शाङ्खायनगृह्यसूत्र

गृह्यकर्मों तथा संस्कारों की इसमें सुन्दर प्रस्तुति है। मानवजीवन में संस्कारों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कारों द्वारा मनुष्य में प्रसुप्त शक्तियाँ जागरित हो जाती है उसमें तेजस्विता आ जाती है। इसमें निरूपित विषयों का विवरण इस प्रकार है—

1. पाकयज्ञ 2. कन्यावरण एव लक्षण 3. विवाहविधि 4. गर्भाधानकर्म 5. सन्तति संस्कार 6. उपनयन 7. गृहदीक्षा 8. आग्रायण 9. गौ सम्बन्धी कर्म 10. अष्टकाकर्म 11. श्राद्ध-क्रिया 12. उपाकरणश्रावणीकर्म 13. अनध्याय 14. अध्यापनविधि 15. नित्यतर्पण 16. कृषिकर्म 17. उदकतर्पण 18. श्रावणीकर्म एवं सर्पवलि उपकर्म 19. आग्राहायणीकर्म 20. चैत्रीकर्म 21. शाक्वारादि। अन्त में दोषप्रक्षालन हेतु प्रायचित का विधान।

ऋग्वेद : शाङ्खायन शाखीय प्रकाशन

1. शाङ्खायनब्राह्मणम् - सं0 श्री हरिनारायण भट्टाचार्य, कलिकाता संस्कृत महाविद्यालय, गवेषण ग्रन्थमाला - 73, 1970
2. शाङ्खायनब्राह्मण -हिन्दी अनुवाद : डॉ0 गङ्गासागर राय, रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1987
3. शाङ्खायनारण्यकम् - सं0 विनायक गणेश आपटे, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलिः, 90, पुण्याख्यपत्तने - 1922
4. शाङ्खायनश्रौतसूत्रम् - सं0 अल्फ्रेड हिलेब्रान्ट, मेहरचन्द लक्ष्मनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 1981
5. शाङ्खायनगृह्यसूत्र - सं0 डॉ0 गङ्गासागर राय, रत्नापब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1195
6. शाङ्खायनशाखीयो रुद्रपाठः - डॉ0 प्रकाश पाण्डेय, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, 1909
7. शाङ्खायनशाखीयो रुद्रपाठसंग्रहः - सं0 प्रो0 अमलधारी सिंह, प्रधान सं0 प्रो0 रूपकिशोर शास्त्री, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन,2011
8. शाङ्खायनशाखीया ऋग्वेद संहिताः - 4 भाग, सं0 प्रो0 अमलधारी सिंह, प्रधान सं0 प्रो0 रूपकिशोर शास्त्री, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, रजत-जयन्ती पर्व, 2012-13

ऋग्वेद-शाखा विषयक प्रकाशित निबन्ध

1. Śākhās of the Ṛgveda-All India Oriental Conference Journal Jadavpur University, Calcutta, Oct. 1969
2. ऋग्वेद शाखा विमर्श-प्रज्ञा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, अक्टूबर 1970
3. Āśvalāyana and Śāṁkhāyana Śākhās of the Ṛgveda - AIOC, Vikram University, Ujjain, Oct. 1972
4. Some Light on the Bāṣkala Saṁhitā of the Ṛgveda - AIOC Kurukshetra University, Dec. 1974
5. Bāṣkala Saṁhitā of the Ṛgveda-Journal of Oriental Research Institute. M.S. University of Baroda, November, 1976
6. Mahānāmnī Ṛks : Original Part of the Ṛgveda-AIOC Karnatak University Dharwar, November, 1976.
7. A Critical Study of Unpublished MSS of the Ṛgveda-Śhri Satya Narayan Singh Felicitation vol Raebareli, July 1985
8. ऋग्वेदस्य अप्रकाशितशाखानां विवरणम्, AIOC_BORI, Poona, May 1993
9. Śākhās of the Ṛgveda-Bhāratī Mandāraḥ, Kanpur, 1999
10. ऋग्वेदस्य अप्रकाशित शाखानां विवरणम् - वेदविद्या-महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन 2005 तथा वैयासिकी, उ0प्र0 संस्कृतसंस्थानम्, लखनऊ, 2010
11. Āśvalāyana and Śāṁkhāyana Śaṁhitās of the Ṛgveda-Yadvā Akhila Bhāratīya Vidvat Pariṣad, March 2017
12. Śākhās of the Ṛgveda - अमरयशः सौरभम्, प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय, स्मृतिग्रन्थ, वाराणसी, 2017

शाङ्खायन संहिता में शाकल से अतिरिक्त मन्त्रों का विवरण

क्र.	मन्त्र	अष्ट.अध्या. व (मं.सू.मन्त्र)
१.	मा बिभेर्न मरिष्यसि परि त्वा पामि सर्वतः। घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम्॥	२.५.१६ (१.१९१.१७)
२.	आदित्यरथवेगेन विष्णुबाहुबलेन च। गरुळपक्षपातेन भूमिं गच्छ महाविषः॥	(.१८)
३.	गरुळस्य जातमात्रस्य त्रयो लोकाःप्रकम्पिताः। प्रकम्पिता मही सर्वा सशैलवनकानना॥	(.१९)
४.	गगनं नष्टचन्द्रार्कं ज्योतिषं न प्रकाशते। देवता भयभीताश्च मारुतो नष्टचेतनः॥	(.२०)
५.	जागर्षि त्वं भुवने जातवेदो जागर्षि यत्र यजते हविष्मान्। इदं हविः श्रद्दधानो जुहोमि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्॥	४.२.२५ (५.४४.१६)
६.	चक्षुश्च श्रोत्रं च मनश्च वाक् च प्राणापानौ देहऽइदं शरीरम्॥ द्वौ प्रत्यञ्चावनुलोमौ विसर्गावेतं तं मन्ये दशयन्त्रमुत्सम्॥	४.७.२० (६.४४.२५)
७.	उरश्च पृष्ठश्च करौ च बाहूजंघे चोरुऽउदरं शिरश्च। रोमाणि मांसं रुधिरास्थिमज्जमेतच्छरीरं जलबुद्बुदोपमम्॥	(.२६)
८.	यन्मे गर्भे वसतः पापमुग्रं यज्जायमानस्य च किञ्चिदन्यत्। जातस्य यच्चापि च वर्द्धतो मे तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥	७.२.१८ (९.६७.३३)
९.	मातापित्रोर्यत्र कृतं वचो मे यत्स्थावरं जङ्गममाबभूव। विश्वस्य यत्प्रहृषितं वचो मे तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥	(.३५)
१०.	क्रयविक्रयाद्योनिदोषाद् भक्षाद्भोज्यात्प्रतिग्रहात्। असंभोजनाच्चापि नृशंसं तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥	(.३५)
११.	गोघ्नात्तस्करत्वात्स्त्रीवधाद्यच्च किल्विषम्। पापकं च चरणेभ्यस्तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥	(.३६)
१२.	ब्रह्मवधात्सुरापानात्सुवर्णस्तेयाद् वृषलीमिथुनसंगमात्। गुरोर्दाराभिगमनाच्च तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥	(.३७)
१३.	बालघ्नान्मातृपितृवधाद् भूमितस्करात्सर्ववर्णगमनमिथुनसंगमात्। पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात्सद्यः प्र हरन्ति सर्वदुष्कृतं तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥	(.३८)
१४.	अमन्त्रमन्त्रं यत्किञ्चिद्धूयते च हुताशने। संवत्सरकृतं पापं तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥	(.३९)

१५. दुर्यष्टं दुरधीतं पापं यच्चाज्ञानतो कृतम्।
अयाजिताश्चासंयाज्यास्तत्पावमानीभिरहं पुनामि॥ (.४०)

१६. ऋतस्य योनयोऽमृतस्य धाम सर्वादेवेभ्यः पुण्यगन्धाः।
ता नऽआपः प्र वहन्तु पापं शुद्धो गच्छामि सुकृतामु लोकं तत्पां॥ (.४१)

१७. इन्द्रः सुदीती सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः सुनीत्या।
यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा जातवेदा मोर्जयन्त्या पुनातु॥ (.४२)

१८. पावमानीःस्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्च्युतः।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेस्वमृतं हितम्॥ (.४३)

१९. पावमानीर्दिशन्तु नऽइमँल्लोकमथोऽअमुम्।
कामान्त्समर्द्धयन्तु नो देवैर्देवीः समाहिताः॥ (.४४)

२०. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पवमानः पुनातु मा॥ (.४५)

२१. प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यामं हिरण्मयम्।
तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनातु मा। (.४६)

२२. पावमानीः स्वस्त्ययनीर्याभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति॥ (.४७)

२३. पावमानं पितृन्देवान् ध्यायेद्यश्च सरस्वतीम्।
पितृंस्तस्योप तिष्ठेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ (.४८)

२४. ऋषयस्तु तपस्तेपुः सर्वे स्वर्गजिगीषवः।
तपसस्तपसोऽन्यं तु पावमानीर्ऋचोजपेत्॥ (.४९)

२५. पावमानं परं ब्रह्म ये पठन्ति मनीषिणः।
सप्त जन्म भवेद् विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः॥ (.५०)

२६. दशोत्तराण्यृचां चैतत्पावमानीः शतानि षट्।
एतज्जुह्वञ्जपंश्चैव घोरं मृत्युभयं जयेत्॥ (.५१)

२७. पावमानं परं ब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम्।
ऋषींस्तस्योप तिष्ठेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ (.५२)

२८. यत्र लोक्यास्तनुत्यजाः श्रद्धया तपसा जिताः। ७.५.२७
तेजश्च यत्र ब्रह्म च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ (९.११३.१२)

२९. यत्र देवा महात्मानः सेन्द्राश्च समरुद्गणाः।
ब्रह्मा च यत्र विष्णुश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ (.१३)

३०. यत्र तत्परमं पदं विष्णोर्लोके महीयते।
देवैः सुकृतकर्मभिस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ (.१४)

३१. यत्र यत्परमाव्यं भूतानामधिपतिः।
भावभावी च योगीश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ (.१५)

३२. यत्र गङ्गा च यमुना यत्र प्राची सरस्वती।
यत्र सोमेश्वरो देवस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ (.१६)

३३. सस्त्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्त्रुषीः। ७.६.५
वरेण्यक्रतुरहमा देवीरवसे हुवे॥ (१०.९.१०)

३४. सितासिते सरिते यत्र संगे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति। ८.३.६
ये वै तन्वं १वि सृजन्ति धीरास्ते वै जनासोऽअमृतत्वं भजन्ते॥ (१०.७५.७)

३५. उदपप्ताम वसतेर्वयो यथा रिणन्त्वा भृगवो मन्यमानाः। ८.५.४
पुरूरवः पुनरस्तं परेह्या मे मनो देवजनाऽअयांसुः॥ (१०.९५.१९)

३६. अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः। ८.७.१८
इमं नो यज्ञं विहवे जुषस्वास्य कुर्मो हरिवो मेदिनं त्वा॥ (१०.१२८.१०)

३७. आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्राया विशतादु माम्॥ (.११)

३८. उच्चैर्वाजि पृतनाषाट् सभासाहं धनञ्जयम्।
सर्वाः समग्राऽऋद्धयो हिरण्येऽस्मिन्त्समाहिताः॥ (.१२)

३९. शुनमहं हिरण्यस्य पितुर्नामेव जग्रम्।
तेन मां सूर्यत्वचमकरं पुरुषु प्रियम्॥ (.१३)

४०. सम्राजं च विराजं चाभिष्टिर्या च मे ध्रुवा।
लक्ष्मी राष्ट्रस्य या मुखे तया मामिन्द्र सं सृज॥ (.१४)

४१. अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं जज्ञेऽअधि मर्त्येषु।
यऽएनद् वेद सऽइदेनदर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति॥ (.१५)

४२. यद्वेद राजा वरुणो यद् देवी सरस्वती।
इन्द्रो यद् दस्युहा वेद तन्मे वर्चसऽआयुषे॥ (.१६)

४३. न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।'
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः।
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥ (.१७)

४४. यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्मऽआबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम्॥ (.१८)

४५. घृतादुल्लुप्तं मधुमत्सुवर्णं धनञ्जयं धरुणं धारयिष्णुम्।
ऋणक् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा रोह मां महते सौभगाय॥ (.१९)

४६. प्रियं मा कुरु देवेषु प्रियं राजसु मा कुरु।
प्रियं विश्वेषु गोप्येषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥ (.२०)

४७. अग्निर्येन विराजति सूर्यो येन विराजति।

विराड् येनं विराजति तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते विराजं समिधं कुरु॥ (.२१)

४८. सज्ञानमुशना वदत् संज्ञानं वरुणो वदत्। ८.८.५७
संज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च संज्ञानं सविता वदत्॥ (१०.१९१.५)

४९. संज्ञानं नः स्वेभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम्॥ (.६)

५०. यत्कक्षीवान् संवननं पुत्रोऽअङ्गिरसामवेत्।
तेन नोऽद्य विश्वेदेवाः सं प्रियां समजीजनन्॥ (.७)

५१. सं वो मनांसि जानतां समाकूतीर्मनामसि।
असौ यो विमना जनस्तं समावर्त्तयामसि॥ (.८)

५२. तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं शौऽअस्तु द्विपदे शं चतुरूपदे॥ (.९)

५३. नैर्हस्त्यं सेनादरणं परिवर्त्मे तु यद्धविः।
तेनामित्राणां बाहून् हविषा शोषयामसि॥ (.१०)

५४. परि वर्त्मान्येषामिन्द्रः पूषा च सस्त्रतुः।
तेषां वोऽअग्निदग्धानामग्निमूळहानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्॥ (.११)

५५. ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्य भयं यथा।
पराँऽअमित्राँऽएजत्वर्वाची गौरुपेजतु॥ (.१२)

५६. प्राध्वराणां पते वसो होतर्वरेण्यक्रतो।
तुभ्यं गायत्रमृच्यते॥ (.१३)

५७. गोकामोऽ अन्नकामः प्रजाकामऽउत कश्यपः।
भूतं भविष्यत्प्र स्तौति महद्ब्रह्मैकमक्षरं बहुब्रह्मैकमक्षरम्॥ (.१४)

५८. यदक्षरं भूतकृतो विश्वे देवा ऽ उपासते।
महऋषिमस्य गोप्तारं जमदग्निमकुर्वत॥ (.१५)

५९. जमदग्निरा प्यायते छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः।
राज्ञः सोमस्य भक्षेण ब्रह्मणा वीर्यावता
शिवा नः प्रदिशो दिशः सत्या नः प्रदिशोदिशः॥ (.१६)

६०. अजो यत्तेजो ददृशे शुक्रं ज्योतिः परोगुहा।
तदृषिः कश्यपः स्तौति सत्यं ब्रह्म चराचरं ध्रुवं ब्रह्म चराचरम्॥ (.१७)

६१. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
अगस्त्यस्य त्र्यायुषं यद्देवानां त्र्यायुषं तन्मेऽअइस्तु त्र्यायुषम्॥ (.१८)

६२. तच्छंयोरा वृणीमहे ज्ञातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।

ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ (.१९)

महानाम्नी

६३. विदा मघवन् विदा गातुमनु शंसिषो दिशः। (२०)
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो॥

६४. आभिष्ट्वमभिष्टिभिः प्रचेतन प्र चेतय।
इन्द्र द्युम्नाय नऽइषऽएवा हि शक्रः॥ (.२१)

६५. राये वाजाय वज्रिवः शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसऽआ याहि पिब मत्स्व॥ (.२२)

६६. विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँऽअनु।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम्॥ (.२३)

६७. यो मंहिष्ठो मघोनां चिकित्वाँऽ अभि नो नय।
इन्द्रो विदे तमु स्तुषे वशी हि शक्रः॥ (.२४)

६८. तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः पर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्दऽऋतं बृहत्॥ (.२५)

६९. इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे तेतारमपराजितम्।
स नः पर्षदति द्विषः स नः पर्षदति स्त्रिधः॥ (.२६)

७०. पूर्वस्य यत्तेऽअद्रिवः सुम्नऽआ धेहि नो वसो।
पूर्द्धि शविष्ठ शश्वतई शे हि शक्रः॥ (.२७)

७१. नूनं तं नव्यं संन्यसे प्रभो जनस्य वृत्रहन्।
समन्येषु ब्रवावहै शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवोऽअद्वयाः॥ (.२८)

पुरीषपद्

७२. एवा ह्यो ३ वा। एवा ह्यग्ने। एवा हीन्द्र। एवा हि पूषन्। एवा हि देवाः॥ (.२९)

७३. एवा हि शक्रो वशी हि शक्रो वशाँ ऽअनु।
आयो मन्याय मन्यव ऽउपो मन्याय मन्यव ऽउपो हि विश्वथ॥ (.३०)

७४. अग्निर्देवेद्धः। विदा मघवन् विदोम्॥ (.३१)

७५. ॐ नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ऽओषधीभ्यः।
नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि॥ (.३२)

इति ऋग्वेदीयशाङ्खायनसंहितायाम्

अष्टमोऽष्टकः। चतुष्षष्ठितमोऽध्यायः

अष्टक ८; अध्याय ६४; वर्ग २०४८; मन्त्र १०६२७

शाङ्खायन संहिता में खिल मन्त्रों का विवरण

क्र.	मन्त्र	अष्ट.अध्या. व (मं.सू.मन्त्र)
१.	भद्रं वद दक्षिणतो भद्रमुत्तरतो वद। भद्रं पुरस्तान्नो वद भद्रं पश्चात्कपिञ्जल॥१॥	२.८.१२ (२.४३.३) अनन्तर
२.	भद्रं वद पुत्रैर्भद्रं वद गृहेषु च। भद्रमस्माकं वद भद्रं नो ऽअभयं ऽवद॥२॥	
३.	भद्रमधस्तान्नो वद भद्रमुपरिष्टाद् वद। भद्रंभद्रं न आ वद भद्रं नः सर्वतो वद॥३॥	
४.	असपत्नं पुरस्तान्नः शिवं दक्षिणतस्कृधि। अभयं सततं पश्चाद् भद्रमुत्तरतो गृहे॥४॥	
५.	यौवनानि महयसि जिग्युषामिव दुन्दुभिः। शकुन्तक प्रदक्षिणं शतपत्राभि नो वद॥५॥	
६.	सूक्तान्ते तृणान्युग्नावरण्ये वोदकेऽपि वा। यस्तृणैरध्ययनं तदाधीतं तृणानि भवते भव॥१॥	४.३.३ (५.४९.५)
७.	वापीकूपतडागानां समुद्रं गच्छ स्वाहा॥२॥	
८.	स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमिं महद्भूतं वायसं देवतानाम्। असुरघ्नमिन्द्रसखं समत्सु बृहद्यशो नावमिवा रुहेम्॥१॥	४.३.७ (५.५१.१५)
९.	अंहोमुचमाङ्गिरसं गयं च स्वस्त्यात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम्। प्रयतपाणिः शरणं प्र पद्ये स्वस्ति संबाधेस्वभयं नो अस्तु॥२॥	
१०.	वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः। रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्मद्विषो जहि॥१॥	४.४.२९ (५.८४.३)
११.	शंवतीः पारयन्त्येते तं पृच्छन्ति वचो युजा। अध्यारं तं यमाकेतुं य एवेदमिति ब्रवत्॥१॥	५.३.२७ (७.३४.२५)
१२.	इन्द्रस्तं किं विभुं प्रभुं भानुनेयं सरस्वतीम्। येन सूर्यमरोचयद्येनेमे रोदसीउभे॥२॥	
१३.	जुषस्वाग्ने अङ्गिरः काण्वं मेध्यातिथिम्। मा त्वा सोमस्य बर्बृहत्सुतासो मधुमत्तमः॥३॥	

१४. त्वामग्ने अङ्गिरस्तम शौचस्व देववीतमः।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिः शान्तिं स्वस्तिमकुर्वत॥४॥
१५. शं नः कनिक्रदद्देवः पर्ज्जन्यो अभि वर्षत्वोषधयः प्रतिधीयताम्।
शं नो द्यावापृथिवी शं प्रजाभ्यः शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥५॥
१६. स्वप्नः स्वप्नाधिकरणे सर्वं नि स्वापया जनम्। ५.४.२२
आ सूर्यमन्यान्त्स्वापय व्यू १ ळहं जागृयादहम्॥१॥ (७.५५.८)
१७. अजगरो नाम सर्पस्सर्पिरविषो महान्।
तस्मिन्हि सर्पः सुधितस्तेन त्वा स्वापयामसि॥२॥
१८. सर्पस्सर्पो ऽअजगरस्सर्पिरविषो महान्।
यस्य शुष्कात्सिन्धवस्तस्य गाधमशीमहि॥३॥
१९. कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः।
यमुनह्रदे ह सो जातो यो नारायणवाहनः॥४॥
२०. यदि कालिकदूतस्य यदि काः कालिकाद्भयम्।
जन्मभूमिमतिक्रान्तो निर्विषो याति कालिकः॥५॥
२१. आ याहीन्द्र पथिभिरीळितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व।
तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव॥६॥
२२. यशस्करं बलसन्तं प्रभुत्वं तमेव राजाधिपतिर्बभूव।
संकीर्णनागाश्वपतिर्नराणां सुमङ्गल्यं सततं दीर्घमायुः॥७॥
२३. कर्कोटको नाम सर्पो यो दृष्टीविष ऽउच्यते।
तस्य सर्पस्य सर्पत्वं तस्मै सर्प नमोऽस्तु ते॥८॥
२४. यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रतमुपतिष्ठन्त ऽआपः। ५.६.२०
यस्य व्रते पुष्टिपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हुवेम॥ (७.९६.२०)
२५. उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि। ५.७.४
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्य विगृह्य चतुरः पदः॥ (७.१०३.१०)
२६. अविधवा भव वर्षाणि शतं साग्रं तु सुव्रता। ८.३.२८
तेजस्वी च यशस्वी च धर्मपत्नी पतिव्रता॥१॥ (१०.८५.४७)
२७. जनयद् बहुपुत्राणि मा च दुःखं लभेत् क्व चित्।
भर्त्ता ते सोमपा नित्यं भवेद्धर्मपरायणः॥२॥
२८. अष्टपुत्रा भव त्वं च सुभगा च पतिव्रता।
भर्त्तुश्चैव पितुर्भ्रातुर्हृदयानन्दिनी सदा॥३॥
२९. इन्द्रस्य तु यथेन्द्राणी श्रीधरस्य यथा श्रिया।
शङ्करस्य यथा गौरी तद्भर्त्तुरपि भर्त्तरि॥४॥

३०. अत्रेर्यथानसूयास्याद्वसिष्ठस्याप्यरुन्धती।
कौशिकस्य यथा सती तथा त्वमपि भर्त्तरि॥५॥

३१. ध्रुवैधि पोष्या मयि मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावती सं जीव शतम्॥६॥

३२. यच्चं कृतं यदकृतं यदेनश्चकृमा वयम्। ८.५.१२
ओषधयस्तस्मात्पान्तु दुरितादेनसस्परि॥१॥ (१०.९७.२३)

३३. असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ऽओजसा स्पर्द्धमाना। ८.५.२३
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामीषामन्योऽअन्यं न जानात्॥१॥(१०.१०३.१३)

३४. अन्धा ऽअमित्रा भवताशीर्षाणोऽअहयइव।
तेषां वोऽअग्निदग्धानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्॥२॥

३५. हविर्भिरेके स्वरितः सचन्ते सुन्वन्तऽएके सवनेषु सोमान्। ८.६.२
शचीर्मदन्तऽउत दक्षिणाभिर्नेज्जिह्मायन्त्यो नरकं पताम॥ (१०.१०६.११)

रात्रिसूक्तम्

३६. आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः। ८.७.१४
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठसेआ त्वषं वर्त्तते तमः॥ (१०.१२६.१४)

३७. ये ते रात्रि नृचक्षसो युक्तासो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्वष्टाऽउतो ते सप्त सप्ततिः॥२॥

३८. रात्रीं प्र पद्ये जननीं सर्वभूतनिवेशनीम्।
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम्॥३॥

३९. संवेशनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम्।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रीं भद्रे पारमशीमहि॥४॥

४०. दुर्गेषु विषमे घोरे संग्रामे रिपुसंकटे।
अग्निचोरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारणे॥५॥

४१. दुर्गेषु विषमेषु त्वं संग्रामेषु वनेषु च।
नमस्कृत्वा प्र पद्यन्ते तेषां नोऽअभयं कुरु॥६॥

४२. आदित्यवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं चन्द्रसहस्रदीप्तिम्।
देवीं कुमारीमृषिपूजितां तां तां दुर्गमातां शरणं प्र पद्ये॥७॥

४३. क्षीरेण स्नपिता दुर्गा चन्दनेनानुलेपिता।
बैल्वपत्रकृतामाला नमो दुर्गे नमो नमः॥८॥

४४. सर्वभूतपिशाचेभ्यः सर्वसर्पसरीसृपैः।
देवेभ्यो मानुषेभ्यश्चोभयेभ्यो माभि रक्षताम्॥९॥

४५. ऋग्वेदे स्तुतया देवी काश्यपेनोदाहृता।
जातवेदप्रभा गौरी जातवेदसे सुनवाम सोमम्॥१०॥

४६. सुरासुरैर्द्विजवरैः पिशाचासुरराक्षसैः।
अरातिभयमुत्पन्नमरातीयतो नि दहाति वेदः॥११॥

४७. राजद्वारे पथे घोरे संग्रामेषु च गौतमी।
सर्वं रक्षतु दुरितं स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा॥१२॥

४८. महद्भये समुत्पन्ने स्मरन्ति च जपन्ति च।
सर्वं तारयते दुर्गा नावेव सिन्धुं दुरितान्यग्निः॥१३॥

४९. यऽइमं स्तवं दुर्गायाः पठन्ति च।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं त्रिषु लोकेषु पूजितम्॥१४॥

५०. अपुत्रो लभते पुत्रान्धनहीनो धनं लभेत्।
अचक्षुर्लभते चक्षुर्बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥१५॥

५१. व्याधितो मुच्यते रोगादरोगी श्रियमाप्नुयात्।
सर्व कामं ददासि नारायणि नमोऽस्तु ते।
कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥१६॥

५२. हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि। ८.७.३४
उत ह्रदो हि नो भुवोऽग्निर्ददातुभेषजम्॥ (१०.१४२.८)
शीतह्रदो हि नो भुवोऽग्निर्ददातु भेषजम्॥१॥

५३. अन्तिकादग्निरभवद्दूर्वादः शिशुरागमत्।
अजातपुत्रपक्षाया हृदयं मम दूयते॥२॥

५४. विपुलं वनं बह्वाकाशं चर जातवेदः कामाय।
मां च रक्ष पुत्राँश्च शरणमुभौ तव॥३॥

५५. पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्ण नमोऽस्तु ते।
अस्मान्नि बर्हीरस्योनं सागरस्योर्मियो यथा॥४॥

५६. इन्द्रः क्षत्रं ददातु वरुणस्तमभि षिञ्चतु।
शत्रवस्ते निधनं यान्तु जय त्वं ब्रह्मतेजसा॥५॥

५७. कपिलजटीं सर्वभक्षं चाग्निं प्रत्यक्षदैवतम्।
वरुणवशांू ह्य ९ ग्निर्मम पुत्रांश्च रक्षतु॥६॥

५८. यावदादित्यस्तपति यावद् भ्राजति चन्द्रमाः।
यावद्वातः प्रवायति तावज्जीव तया सह॥७॥

५९. एकशफैर्हस्तिनोद्देशेन त्वं विपुलेन
पृथिविं त्वं भुञ्जस्वैकच्छत्रेण दण्डेन॥८॥

६०. येन केन प्रकारेण मेहनाकोऽपि जीवति।
यदेषामुपकाराणां यज्जीवति: स जीवति॥९॥

मेधासूक्त

६१. मेधां मह्यमङ्गिरसो मेधां सप्तऽऋषयो ददुः। ८.८.१
मेधामिन्द्रश्चाग्निश्च मेधां धाता दधातु मे॥१॥ (१०.१५.५)
६२. मेधां मे वरुणो राजा मेधां देवी सरस्वती।
मेधां मे ऽअश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्त्रजा॥२॥
६३. या मेधाऽअप्सरस्सु गन्धर्वेषु च यन्मर्म।
दैवी या मानुषी मेधा सा माया विशतादिह॥३॥
६४. यन्मे नोक्तं प्र द्रवतां शकेयं यदनुब्रुवे।
निशामितं नि शामहै मयि श्रुतं सह प्रियेण भूयासं ब्रह्मणा सं गमेमहि॥४॥
६५. शरीरं मे विचक्षणं वाङ्मे मधुमद्दुहा।
अवृधमहमसौ सूर्यो ब्रह्मण आणी स्थः श्रुतं मे मा प्र हासीत्॥५॥
६६. मेधां देवीं मनसा रेजमानां गन्धर्वजुष्टां प्रति मे जुषस्व।
मह्यं मेधां वद मह्यं श्रियं वद मेधावी भूयासमजराजरिष्णुः॥६॥
६७. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम्॥७॥
६८. यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु॥८॥
६९. मेधाव्यहं सुमनाः सुप्रतीकः श्रद्धामना सत्यमतिः सुशेवः।
महायशा धारयिष्णुः प्रवक्ता भूयासमयें स्वधया प्रयोगे॥९॥

शिवसङ्कल्पसूक्तम्

७०. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। ८.८.२५
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥ (१०.१६५.५)
७१. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२॥
७२. येन कर्माणि प्रतिरन्ति धीरा यतो वाचा मनसा तानि हन्ति।
यस्यान्वितमनु कृण्वन्ति प्राणिनस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥३॥
७३. यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥४॥
७४. यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥५॥

७५. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥६॥

७६. यज्जाग्रतो दूरमुदैति देवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥७॥

७७. येनेदं सर्वं जगतो बभूव तदेवापि महतो जातवेदाः।
तदेवाग्निस्तपसो ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥८॥

७८. येन द्यौरुग्रा पृथिवी चान्तरिक्षं येन पर्वताः प्रदिशो दिशश्च।
येनेदं जगद्व्याप्तं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥९॥

७९. ये पञ्चपञ्चा दशतं शतं च सहस्रं च नियुतं न्यर्बुदं च।
ते अग्निचित्येष्टकात्तं शरीरं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१०॥

८०. ये मनो हृदयं ये च देवा या दिव्याऽआपो यः सूर्यरश्मिः।
ये श्रोत्रे चक्षुषी संचरन्ति तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥११॥

८१. यदत्र षष्ठं त्रिशतं शरीरं यस्य गुह्यं नवं नावमाद्यम्।
दश पञ्च त्रिंशतं यत्परं च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१२॥

८२. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१३॥

८३. अचिन्त्यं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तपरं च यत्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यानं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१४॥

८४. अस्ति विनाशयित्वा सर्वमिदं नास्ति पुनस्तथैव धृष्टं ध्रुवम्।
अस्ति नास्ति हितं मध्यमं परं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१५॥

८५. अस्ति नास्ति विपरीतो प्रवादोऽस्ति नास्ति सर्वं वा इदं गुह्यम्।
अस्ति नास्ति परात्परो यत्परं तन्मे मनः शिवसङ्कऽल्पमस्तु॥१६॥

८६. परात्परतरं यच्च तत्पराच्चैव तत्परम्।
तत्परात्परतरं ज्ञेयं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१७॥

८७. परात्परतरो ब्रह्म तत्परात्परतो हरिः।
तत्परात्परतो ह्येऽर्षस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१८॥

८८. गोभिर्जुष्टो धनेन ह्यायुषा च बलेन च।
प्रजया पशुभिः पुष्कलार्थं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१९॥

८९. प्रयतः प्रणवो नित्यं परमं पुरुषोत्तमम्।
ॐ कारं परमात्मानं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२०॥

९०. यो वै वेदादिषु गायत्री सर्वव्यापी महेश्वरात्।
यद्विरुतं तथा वैश्यं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२१॥

९१. यो वै वेदं महादेवं परमं पुरुषोत्तमम्।
यः सर्वं यस्यचित्सर्वं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२२॥
९२. योऽसौ सर्वेषु वेदेषु वेदेषु पठ्यते ह्यजईश्वरः।
अकायो निर्गुणोऽध्यात्मा तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२३॥
९३. कैलाशशिखराभासं हिमवद्गिरिसंस्थितम्।
नीलकण्ठं त्र्यक्षं च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२४॥
९४. कैलाशशिखरे रम्ये शङ्करस्य शुभे गृहे।
देवतास्तत्र मोदन्ति तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२५॥
९५. आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
उत्पादितं जगद्व्याप्तं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२६॥
९६. यऽइमं शिवसङ्कल्पं सदा ध्यायन्ति ब्राह्मणाः।
ते परं मोक्षं गमिष्यन्ति तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२७
९७. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२८॥
९८. यासामूधश्चतुर्बिलं मधोः पूर्णं घृतस्य च। ८.८.३३
मा नः सन्तु पयस्वतीर्बह्वीर्गोष्ठे घृताच्यः॥१॥ (१०.१६९.४)
९९. उप मैतु मयोभुवः ऊर्जं चौजश्च बिभ्रतीः।
दुहाना ऽअक्षितं पयो मयि गोष्ठे नि वर्त्तध्वं यथा भवान्युत्तमः॥२॥
१००. नेजमेष परा पत सुपुत्र पुनरा पत। ८.८.४८
अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान्॥१॥ (१०.१८४.३)
१०१. यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमादधे।
एवं त्वं गर्भमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥२॥
१०२. विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम्।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥३॥
१०३. अनीकवन्तमूतये ऽग्निं गीर्भिर्हवामहे। ८.८.५२
स नः पर्षदति द्विषः॥१॥ (१०.१८७.५)

इति खिलानि
ऋग्वेदीय शाङ्खायनसंहितायम्

उपसंहार

वेदों में प्रथमतम ऋग्वेद की 21 शाखाओं में से केवल एक संहिता शाकल प्रो0 मैक्समूलर महोदय को इंगलैण्ड स्थित दो संग्रहालयों से उपलब्ध हुई थी। जिसका सायणभाष्यसहित प्रकाशन उन्होंने महारानी विक्टोरिया के संरक्षण में 6 भागों में 1849 से 73 तक 24 वर्षों में किया था। ऋग्वेद का यही पूर्णरूप में प्रथम प्रकाशन है तथा इसके अब तक प्रकाशित सभी संस्करण प्रायः इसी की अनुकृति है। क्योंकि अब तक यही एकमात्र शाकल संहिता उपलब्ध रही, इसीलिए विविध दृष्टियों से इसी का व्यापक रूप में अध्ययन होता चला आ रहा था, इसके वैशिष्ट्य का प्रकाशन होता रहा, पर सम्प्रति तीन संहिताएँ शाकल, आश्वलायन तथा शाङ्खायन प्रकाश में आ गई हैं और बाष्कल संहिता का भी बहुत कुछ स्वरूप अन्य संदर्भों के आधार पर प्रकाशित हो पा रहा है। इनमें आश्वलायन तथा शाङ्खायन दो संहिताओं के उद्धार का श्रेय तो सम्पूज्य गुरुदेवों के आशीर्वचन तथा स्वयं वेदभगवान् के अनुग्रह से मुझको ही हैं।

इस तरह इस ग्रन्थ में पहली बार ऋग्वेद की चार संहिताओं- शाकल, बाष्कल, आश्वलायन तथा शाङ्खायन का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और वस्तुतः वैदिक अनुसंधान के क्षेत्र में यह सर्वथा मौलिक प्रथम अध्ययन हैं और यह भी मेरे द्वारा 50 वर्षों से ऊपर निरन्तर वेदनिष्ठा लगन परिश्रम से किए गए अध्यवसाय का सुपरिणाम है।

इन सभी चारों संहिताओं में मन्त्रगत परस्पर साम्य होने पर भी मन्त्रों के क्रम, संख्या, पद-पाठ विषयक बहुत कुछ भेद, अन्तर, वैशिष्ट्य भी है और इन्हीं विशेषताओं के कारण इन सभी का अपना-अपना पृथक् स्वरूप है। इस तरह एक ही ऋग्वेद-वृक्ष की सभी समृद्ध चार शाखाएँ हैं।

ग्रन्थ के भूमिका भाग में वेदों का स्वरूप एवं महत्त्व का प्रकाशन है। वेद कल्याणवाणी हैं, व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र-विश्वमानवता इस प्रकार व्यष्टि एवं समष्टि सर्वहित सम्पादक परम महौषधि हैं। सम्पूर्ण मानव जीवन इनसे ओतप्रोत परिव्याप्त है। वेद परम आह्लादमयी जीवन पद्धति प्रस्तुत करते हैं। केवल चेतन प्राणी नहीं, अपितु अचेतन जगत् के संरक्षण पर प्रकर्ष है और ऋग्वेद तो प्रकृति की देवभाव से उपासना है। यही है ऋषियों की पर्यावरण रक्षण की उदात्त दृष्टि।

पर्यावरण ही हमारा रक्षा कवच है, स्वरक्षा के लिए बाह्य प्राकृतिक तथा अन्तःजीवन्मूल्य रूप पर्यावरण रक्षणीय है। सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है, सह-अस्तित्व सहचारित्व पर बल है, सौमनस्य सौहार्दभाव से परस्पर सहयोगपूर्वक कार्य करने के लिए वेद का उपदेश वचन है, स्व- अपनत्व की अपेक्षा सर्वम् विश्वभाव पर प्रकर्ष है। इसी प्रकार मानव शरीर की दिव्यता का बोध कराया गया है। हम नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप अमृत पुत्र हैं।

इस तरह विश्व वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों का अनुपमेयत्व सर्वकल्याण कारकत्व स्वरूप है। इनके अध्ययन का विधान किया गया है और इन्हीं वेदों के कारण सनातनी भारतीय संस्कृति विश्ववारा सर्ववन्दनीया ग्राह्या है।

सा प्र॑थ॒मा सं॒स्कृ॑ति॑र्वि॒श्ववा॑रा। शु.यजु. 7.14

ग्रन्थ में चारों संहिताओं के स्वरूप तथा विशेषताओं को विशद रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनमें महत्त्वपूर्ण भेद पदपाठविषयक तथा मन्त्रों की संख्या के सम्बन्ध में है।

शाकल संहिता में समस्त पद के विच्छेदन में केवल एक ही पद्धति 'इव' का प्रयोग है जबकि आश्वलायन तथा शाङ्खायन में एतदर्थ तीन पद्धतियाँ हैं—

इव, शून्य तथा अङ्क 2 का प्रयोग।

मन्त्र संख्या विषयक भेद इन संहिताओं में इस प्रकार है—

क्रम सं.	संहिता	सूक्त	वर्ग	मन्त्र
1	शाकल	1028	2024	10.552
2	बाष्कल	1025	2023	10.548
3	आश्वलायन	1042	2055	10.761
4	शाङ्खायन	1028	2048	10.627

इन चारों संहिताओं में प्रमुख भेदक हैं खिलमन्त्र। खिल का अभिप्राय है शाखान्तरीय मन्त्र जो अपनी मूल संहिता में नहीं है और दूसरी शाखाओं से ग्रहण कर लिए गए हैं। वस्तुतः यज्ञानुष्ठान की दृष्टि से अन्यशाखीय मन्त्रों का ग्रहण हो गया है। शाकल संहिता में मूलरूप में 1017 सूक्त 10472 मन्त्र हैं। बालखिल्य नाम से सुप्रख्यात 11 सूक्तों तथा 18 वर्गों में विभक्त 80 मन्त्र हैं। शाकल में इनकी मूलरूप में स्वीकृति नही है इसीलिए आचार्य सायण ने इन पर अपना भाष्य नहीं प्रस्तुत किया है। इन्हीं का अनुसरण करते हुए अन्य भाष्यकारों के भाष्य तथा पाश्चात्य अनुवादकों के अनुवाद इन मन्त्रों पर नहीं मिलते। पर ऋग्वेदीय ब्राह्मण

ऐतरेय ने इनकी विशिष्ट महिमा को ध्यान में रखते हुए इनका यज्ञ में विधान बतलाया है 28.2 और विघ्न विनाशक इनको वज्र की संज्ञा प्रदान की है। इन मन्त्रों के प्रयोग से इन्द्र ने बल नामक असुर का मर्दन करके उसके द्वारा निगृहीत गायों को मुक्त कराया था। मन्त्र भाग के व्याख्यात्मक भाग ब्राह्मण ऐतरेय में विनियुक्त इन मन्त्रों को शाकल में होना चाहिए, पर इसमें मूलरूप में गृहीत न होकर खिल रूप में है यद्यपि इन मन्त्रों को अष्टक क्रम संघटन की व्यवस्था के अनुसार अष्टम मण्डल में स्थान दिया गया है। यह मण्डल काण्ववंशीय ऋषियों का है और ये बालखिल्यमन्त्र इसी वंश के ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत हैं। इन एकादश सूक्तों में से प्रथम 7 को बाष्कल ने और सूक्त क्रमाङ्क 10 को छोड़कर अन्य 10 सूक्तों को आश्वलायन ने तथा सभी एकादश सूक्तों को शाङ्खायन ने मूल रूप में ग्रहण किया है। इस प्रकार शाकल की दृष्टि से वालखिल्य सूक्त खिलरूप हैं पर अन्य संहिताओं में इनकी मूलरूप में स्वीकृति है।

इसी प्रकार पञ्चदश मन्त्रात्मक अतिरिक्त संज्ञान सूक्त को बाष्कल ने ग्रहण किया है और इसी सूक्त से इस संहिता की समाप्ति होती है। इसी प्रकार सुप्रख्यात 9 महानाम्नी ऋचाएँ हैं, ऐतरेय ब्राह्मण 22.2 इनके विनियोग को बतला रहा है पर वे ऋचाएँ शाकल में नहीं है और इसीलिए आचार्य सायण ने इनको दशतयी की सीमा से ऊर्ध्वगामिनी मान लिया है। पर ये सभी ऋचाएँ आश्वलायन तथा शाङ्खायन में विद्यमान हैं और इन दोनों संहिताओं की समाप्ति इन्हीं महानाम्नी ऋचाओं से होती है। इस तरह शाकल की दृष्टि से जो महानाम्नी ऋचाएँ खिल रूप में हैं वहीं आश्वलायन तथा शाङ्खायन में मूलभाग के अन्तर्गत हैं।

इस प्रकार वह सुस्पष्ट हो जाता है कि खिल रूप में स्वीकृत समस्त मन्त्र भी ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत, अतएव अन्य मन्त्रों की तरह सर्वथा प्रामाणिक हैं। इनका भी अपना मूल स्वरूप है। इन मन्त्रों की अपनी संहिताएँ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है जिनमें ये मूलभाग के रूप में स्थित हैं। आश्वलायन तथा शाङ्खायन की तरह इन संहिताओं के उपलब्ध हो जाने पर, वालखिल्य, महानाम्नी की तरह इनको भी अपना मूल आधार मिल जावेगा और खिलस्वरूप नहीं रहेगा।

इस ग्रन्थ में ऋग्वेद की चार संहिताओं के तुलनात्मक अध्ययन का महत्तम योगदान मन्त्रों के खिलरूपत्व का निरसन है। अनुपलब्ध संहिताओं का अन्वेषण किया जाना चाहिए। ऋषियों की अमूल्य महत्तम धरोहर के उद्धार से विश्ववारा सनातनी संस्कृति की और अधिक समृद्धि होगी।

नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः

श्रीमद्गुरुदेवेभ्यो नमो नमः।

ऋग्वेद की उपलब्ध संहिताओं में सूक्तों एवं मन्त्रों की संख्या

मण्डल	शाकल		आश्वलायन		शाङ्खायन	
	सूक्त	मन्त्र	सूक्त	मन्त्र	सूक्त	मन्त्र
प्रथम	191	2006	191	2016	191	2010
द्वितीय	43	429	44	434	43	429
तृतीय	62	617	62	617	62	617
चतुर्थ	58	589	58	589	58	589
पञ्चम	87	727	89	758	87	728
षष्ठ	75	765	75	768	75	767
सप्तम	104	841	105	851	104	841
अष्टम	103	1716	102	1713	103	1716
नवम	114	1108	116	1133	114	1133
दशम	191	1754	200	1882	191	1797
पूर्णयोग	1028	10552	1042	10761	1028	10627

ऋक्संहिता : एक दृष्टि :

क्र.सं.	शाखा	मण्डल	सूक्त	अध्याय	वर्ग	मन्त्र
1.	शाकल + वालखिल्यसूक्त	10	1017 11	64	2006 18	10472 80
			1028	64	2024	10552
2.	बाष्कल	10	1025	64	2023	10548
	बालखिल्य-आदितः + अतिरिक्त संज्ञान सूक्त		7 1	– –	13 4	61 15
			8		17	76
3.	आश्वलायन	10	1042	64	2055	10761
	शाङ्खायन	10	1028	64	2048	10627

समाप्ति :

१. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥१०.१९१.४॥

२. तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥१०.१९२.१५॥

३. तथा ४। नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ऽओषधीभ्यः।
नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि॥
आश्वलायन १०.२०३.१३; शाङ्खायन १०.१९१.३२

ग्रन्थ-परिशिष्ट

ऋग्वेद भारतीय वाङ्मय किं वा विश्व वाङ्मय का प्रथम ग्रन्थ है। श्रुतिपरम्परा के कारण अनेक शाखाओं से समृद्ध था। ई.पू. द्वितीय शताब्दी में इसकी (21) शाखाएँ थीं, पर सभी सुरक्षित न रह सकीं। प्रो. मैक्समूलर महोदय ने वर्ष 1849 से 73=74 वर्षों में इनमें से एक **शाकलसंहिता** का 6 भागों में ऑक्सफोर्ड इँगलैण्ड से महारानी विक्टोरिया के संरक्षण में प्रकाशन कराया, अन्य शाखाएँ अनुपलब्ध रहीं और कालकवलित मान ली गईं।

वर्ष 1968 में जोधपुर विश्वविद्यालय की सेवा में संलग्न मुझको इसकी दो शाखाओं—

1. आश्वलायन तथा 2. शाङ्खायन

की लगभग 12000 पृष्ठों की 63 पाण्डुलिपियाँ राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी में मिली थीं। वैदिक वाङ्मय के इतिहास तथा भारतीय संस्कृति के लिए यह महत्तम उपलब्धि रही। ऋषियों की तथा भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक मूल्यवान् इस धरोहर के उद्धार तथा प्रकाशन हेतु मैं बराबर प्रयत्नशील रहा। विद्वानों का इनकी ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए अनेक निबन्धों का प्रकाशन कराया। उन्हीं में से 5 निबन्धों को यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. **Śākhās of the Ṛgveda,** All India Oriental Conference Journal Jadavpur University, Calcutta Oct. 1969.
2. **ऋग्वेद शाखा-विमर्श,** प्रज्ञा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, शोधपत्रिका अक्टूबर 1970.
3. **Bāṣkala-Saṁhitā of the Ṛgveda,** Journal of the Oriental Institute, M.S. University of Baroda, Dec. 1975.
4. **Śākhās of the Rigveda,** Bharti-Mandar, International Research Journal, Kanpur, 2000-01.
5. **ऋग्वेदस्य अप्रकाशितशाखानां विवरणम्, वेद विद्या, शोधपत्रिका,** महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्याप्रतिष्ठान, उज्जैन, जनवरी-जून 2004 तथा वैयासिकी, उ.प्र. संस्कृत संस्थानम्, लखनऊ 2010.

V-32
SĀKHĀS OF THE ṚGVEDA
Dr. A.D. Singh, Jodhpur
All India Oriental Conference, Jadavpur University, Calcutta, Oct. 1969, Silver Jubilee year Vedic Section

Śakhā is a Sanskrit word used to denote each of the many recensions of Vedic texts. According to Patañjali, the great commentator of Pāṇini, the four vedas, with their accessory texts and secret knowlge assumed many forms each differing from the others in several ways. Thus the Yajurveda came to have one hundred one, the Sāṁaveda one thousand, the Ṛgveda twenty one and the Atharvaveda only nine recensions.

Of all the vedas, the Ṛgveda is the earliest and the richest. It has been widely studied and commented upon. The number of Ṛgvedic recensions, though twenty one in the time of Patañjali, seemed to have gone down to five only in later times. Thus, the Caraṇavyūha mentions only five śākhās of the Ṛgveda and names them as Āśvalāyana, Śāṁkhāyana, Śākala, Bāṣkala and Māṇḍūkya. Of these, only the Śākala Saṁhitā of Ṛgveda is being studied by modern scholars, as this is the only one available ever since it was first published in 1849-73. Śākala indeed appears to be the oldest recension, but there is no doubt that others were also in existence.

In these recensions of the Ṛgveda the Āśvālayanā and Śāṁkhāyana were reported by Peterson to have existed in

in the Alwar collection, Rajasthan. The same information seems to have been repeated by Pt. Bhagavad Datta in his book, entitled 'Vaidika Vāṅmaya Kā Itihāsa' But nothing definite about their contents and devices was ever known. Recently Rajasthan Oriental Research Institure, Jodhpur anounced that they are going to edit and publish these two Saṁhitās of the Ṛgveda with their pada texts.

The present essay is a modest and humble effort in this direction. It intends to shed light on the peculiarities and variations of these Saṁhitās from the Śākala.

The Śākala Saṁhitā has 1017 Sūktas as original and accepts 11 Bālakhilya Sūktas as 'Khila'. It ends with 'samānī va ākūtir'. 'समानी व आकूतिः' The Bāṣkala contains 1025 sūktas in it. It admits first seven of Bālakhilyas and one Sañjāna Sūkta as original ones. It ends with 'tacchamyorāvṛṇīmahe'. 'तच्छंयोरावृणीमहे' The Śāṁkhāyana and Āśvalāyana end with the 'Mahānāmnī' ṛks. These two saṁhitās are closer to each other, but differ from the śākala. Some main characteristics of these saṁhitās are as under :-

In saṁhitā-texts, both are having frequent use of 'dvitva', द्वित्व as 'dharttārā, धर्त्तारा varttanim, वर्त्तनिम् sarttave, सर्त्तवे garddabhaṁ, गर्द्भम् tatardda, मूर्द्धानम् mūrddhānam etc. This 'dvitva' is more in the Āśvalāyana, as शर्म्म śarmma, वर्म्मेव varmmeva, दुर्म्मदः durmmadah, वर्च्चसा varccasā' etc. But these saṁhitās are dropping letter च् 'c' regularly in place of 'cch', च्छ् as gachati, गच्छति acha पृच्छ pṛcha. There is a regular. Absence of avagraha' (s) in place of 'अ' after S and ओ The Śāṁkhana has regular use of 'avagraha' (s) before vowels.

These saṁhitās also differ in text reading as - **मित्रस्य गर्भः १.१४१.१ = देवस्य भर्गः** mitrasya garbhaḥ= devasya bhargah.

In Pada-Pāṭha, the Sākala has 'avagraha' (S), only one way in separating the members of compounds, the Āśvalālyana has 'avagraha (S) and figure 2 and the Śāṁkhāyana has "avagraha' (s), figure 2 and the use of zero (O), three methods.

These Saṁhitās also vary in number of mantras and in their order. Some mantras have been accepted as 'pariśiṣṭa' in one śākhā, but the same are admitted as original in other śākhās. As for example-In the end of the 1st Maṇḍala, there is a 'pariśīṣṭa' of 10 mantras, similar in the Śākala and Śāṁkhāyana, but first four of these mantras have been accepted as original and 6 mantras have been omitted in the Āśvalāyana. In the 4th Adhyāya of 4th Aṣṭaka, after varga 34, there ia a 'Khila' of 5 sūktas, known as 'Śrī-Sūkta' in the Śākala and Śāṁkhāyana, but are read as original in the Āśvalāyana. In this Adhyāya, Śākala and Śāṁkhāyana are having 36 vargas and in the Āśvalāyana number is 40.

The 64th Adhyāya of Śākala ends with varga 49, Śāṁkhāyana with verga 63 and this Adhyāya ends with varga 64 in the Āśvalāyana.

Thus, there occur many variations between these śākhās, but it is remarkable that all saṁhitā-texts have complete resemblance with their pada-texts. A critical and comparative study will reveal their real value and will reflect a new glimpse on the History of Vedic Literature.

ऋग्वेद-शाखा-विमर्श

डॉ. अमलधारी सिंह

प्रज्ञा, काशी काशी हिन्दु विश्वविद्यालय,
वाराणसी, अंक 16, भाग 1,
अक्टूबर 1970, पृ0 74-84

भारतीय वाङ्मय में वेद प्राचीनतम एवं प्रशस्ततम रत्न हैं। साहित्य में इनका स्थान निरतिशय एवं सर्वोत्कृष्ट है। वेद ही भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की आत्मा है। आर्य जाति के जाज्वल्यमान, गौरवमय स्वर्णिम अतीत को सुस्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने वाले ये ही वेद विमल दर्पण हैं। हमारी सनातन तथा शाश्वत सभ्यता एवं संस्कृति रूपी भव्य विशाल प्रासाद को सुप्रतिष्ठित तथा अक्षुण्ण बनाये रखने वाले ये ही सुदृढ़ आधार हैं। इन्हीं से अनुप्राणित तथा ओजस्वित हुई आर्यसभ्यता पुण्यसलिला भगवती भागीरथी के अजस्र, अव्यवहित, निर्बाध प्रवाह की भाँति बाह्यदेशीय सभ्यताओं के अत्यन्त प्रबल थपेड़ों से झकझोरी जाने पर भी आज अपने स्वतन्त्र, अनुपम स्वरूप को पृथक् बनाये हुए अनवरत रूप से चली आ रही है। पथ में भटकते हुए पथिक के जीवनपथ को प्रशस्त करने वाले, निविड तिमिर में आलोक प्रदान करने वाले वेद आर्यों के आर्ष, अप्रतिहत, दोषरहित, चिरन्तन एवं सनातन चक्षु हैं—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥ मनु. 12.94

अतीत, वर्तमान, अनागत, विप्रकृष्ट, समीपस्थ, व्यवहित, अन्तर्हित, परोक्ष, अपरोक्ष, स्थूल, सूक्ष्म समस्त पदार्थों को सम्यक् रूप से प्रकाशित करने वाले वेद ही हैं—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥ मनु. 12.97

'यद् ब्रह्मविद्यया वै सर्वं भविष्यन्तो मन्यन्ते आचार्याः।'

वेद ही लोकोत्तर, आध्यात्मिक तत्त्वों की विमल राशि एवम् उत्कृष्टतम निधि हैं। आर्यभूमि में अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित होने वाले समस्त धर्म एवं दर्शनों के ये ही वेद प्रभव, मूल हैं—

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'। मनु. 2.6

''यः कश्चित्कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः''॥ मनु. 2.7

अलौकिक तत्त्वों के साक्षात्कार एवं रहस्योद्घाटन के वेद अनुपम साधन हैं। प्रत्यक्ष तथ अनुमान प्रमाण से अगम्य पदार्थों का सम्यग् बोध वेद द्वारा ही सम्भव है—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

तपः पूत ऋषियों के प्रातिभ चक्षु से सतत साधना, अनवरत अध्यवसाय एवम् अभ्यास द्वारा साक्षात्कृत ज्ञान की विमल राशि ही वेद हैं—

'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'

'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः'

जो आर्यजाति के मानसिक विकास के चूडान्त स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। गहन अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा साधना से उद्भूत समस्त ज्ञान-विज्ञान की चरम परिणति, परम प्रकृष्टरूप वेदों में उपलब्ध होता है। श्रद्धालु भारतीय-दृष्टि में वेद अपौरुषेय हैं, सभी प्रकार के दोषों से विवर्जित, निर्दोष हैं। अतः इनका प्रामाण्य स्वतः है—

(वेदानां) निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्' सां.सू. 5.51

जीवन में काम एवं मोक्ष दो ही प्राप्तव्य अर्थ हैं और इन्हीं की सिद्धि ही पुरुष के समस्त प्रयासों, क्रिया-कलापों की जननी है। इन द्विविध प्रयोजनों को प्रदान करने में ही वेद का वेदत्व है—

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयते स वेदः।
विद्यन्ते, ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा धर्मादिपुरुषार्था एभिरिति वेदाः।
विदन्त्येभिर्धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेदाः।

इस प्रकार वेद-अध्ययन से कर्त्तव्य एवम् अकर्त्तव्य का बोध होने से लौकिक सुख की प्राप्ति तथा ब्रह्म, ज्ञान की उपलब्धि होने से पारलौकिक सुख, अपवर्ग की सिद्धि होती है—

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय, तस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति, विद्ययाऽमृतमश्नुते। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति, ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।

इसलिये भगवान् पतञ्जलि ने व्याकरण-महाभाष्य में वेदाध्यन का विधान किया है—

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च'

तथा इसी कारण भगवान् मनु ने अत्यन्त क्षोभ भरे शब्दों में वेदानध्यायी की कटु भर्त्सना की है—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

काव्यकला की दृष्टि से भी वेद बेजोड़ हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से वेदों का स्थान अधिक गौरवशाली एवं महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत प्राचीनतम भाषा है और वेद उसके प्रथम निदर्शन। इस प्रकार भाषा विज्ञान को एक सुप्रतिष्ठित आधार उपलब्ध होता है। अतः इस वेद-कल्पतरु की जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह सब न्यून ही है। भारतीय सभ्यता-संस्कृति, धर्म-दर्शन, आचार-विचार, रहन-सहन, क्रिया-कलाप, शिक्षा-दीक्षा, समस्त जीवन ही वेद से ओतप्रोत है। वेद ही हमारे सर्वस्व हैं। यह अनादि, शाश्वत वेदरूपी दुर्ग अष्टविकृतियों से सुरक्षित हैं—

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

तथा आज भी समस्त विकारों से रहित अपने उसी मूल स्वरूप में विद्यमान हैं। परिवर्तनशील समय की परिधि से ये परे हैं। यथार्थतः यह वेद एक होने पर भी स्वरूप-भेद से चतुर्विध है। अतिविशाल एवं दुर्बोध इस वेद को लोकानुग्रह की कामना से सुगम तथा सरल रीति से ग्रहण कराने के उद्देश्य से भगवान् वेदव्यास ने इसे चार भागों में विभक्त किया—

वेदं तावदेकं सन्तमतिमहत्वाद् दुरध्येयमनेकशाखाभेदेन
समाम्नासिषुः सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्तः॥

दुर्गाचार्यः निरुक्तवृत्तिः 1.20

वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः।

सभी वेदों को ब्रह्म के एक ही प्राणात्मक-रूप में विद्यमान समझना चाहिए—

सर्वे वेदाः सर्वे घोषा एकैव व्याहृतिः प्राण एव प्राण ऋच इत्येव विद्यात्।

—ऐतरेयारण्यक 2.10

श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार चतुर प्रभु ने अपने चारों मुखों से अपने पुत्रों को वेद पढ़ाया। पितृमुख से अधीत वेद-ज्ञान को इन ऋषियों ने अपने पुत्रों को पढ़ाया। इस प्रकार यह परम्परा चलती रही। यह वेद-ज्ञान अत्यन्त दुर्विज्ञेय था। अल्पायु एवं सामान्य मेधा

वाले मानव के लिए विविध प्रकार की बाधाओं में रहकर इस दिव्य तथा अनुपेक्षणीय ज्ञान का अर्जन करना सम्भव नहीं था। अतएव धर्म की रक्षा के लिए ब्रह्मादि देवों तथा लोकपालों से प्रार्थना किये जाने पर भगवान् ने लोकानुग्रह की भावना से द्वापर के अन्त में ऋषि पराशर एवं सत्यवती से महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के रूप में अवतीर्ण होकर इस विपुल वेद-राशि को ऋक्, यजुस्, साम, अथर्व-रूप से चतुर्विध किया तथा इन संहिताओं को क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु नामक चार शिष्यों को पढ़ाया। गुरु से प्राप्त इस वेद ज्ञान का इन व्युत्पन्न शिष्यों ने बहुत अधिक प्रचार-प्रसार किया। इस प्रकार यह वेदवृक्ष अनन्त विविध शाखा-प्रशाखाओं से समलङ्कृत हो गया—

अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः।
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये॥
पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः।
अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम्॥
ऋगथर्वयजुः साम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः।
चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव
पैलाय संहितामाद्यां बह्वचाख्यामुवाच ह।
वैशम्पायनसञ्ज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम्॥
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम्।
अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे॥

भागवत, 12.6.48-53

''तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः।
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत।
अथर्वाङ्गिरसामासीत् सुमन्तुर्दारुणो मुनिः॥

भागवत 1.4.21-22

वेदव्यास द्वारा एक ही वेद की चतुर्धा विभक्त किये जाने की पुष्टि विष्णुपुराण भी करता है—

''आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः।
ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्॥
अत्रैव मत्सुतो व्यास अष्टाविंशतिमेऽन्तरे।
वेदमेकं चतुष्पादश्चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः॥

ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्यस्तु प्रचक्रमे।
अथ शिष्यान् स जग्रह चतुरो वेदपारगान्॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलं सञ्जग्रह महामतिः।
वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत्॥
जैमिनिः सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित्।
सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद्वेदव्यासस्य धीमतः॥

आश्वलायनगृह्यसूत्र 3.4 भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है—

'सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्या'

इस प्रकार एक ही वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद- रूप से चार प्रकार का हो गया—

तत्र ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदश्चेति। चरणव्यूह 1.3

ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सशाखाश्चत्वारः पादा भवन्ति।

नृ.ता.उप. 1.2

गुरु-शिष्य-परम्परा में ये ही चारों वेद विविध प्रकार की शाखाओं से समृद्ध हो गये। भगवान् पतञ्जलि के अनुसार ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 10000 तथा अथर्ववेद की 9 शाखाएँ हैं—

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाथर्वणो वेदः।

—व्याकरणमहाभाष्य पश्पशाह्निक

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। एकशतधाध्वर्यम्। सहस्त्रधा सामवेदम्। नवधाथर्वणम् दुर्ग निरुक्त वृत्ति 1.20

किन्तु इन शाखाओं की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद है तथा भगवान् पतञ्जलि-निर्दिष्ट ये सभी 1131 वेदों की शाखाएँ आज उपलब्ध नहीं होती। इन चारों वेदों में ऋग्वेद प्राचीनतम है तथा सभी दृष्टियों से सर्वाधिक गौरवशाली है। व्याकरण-महाभाष्य के अनुसार किसी समय इस वेद की 21 शाखाएँ थीं। चरणव्यूह के अनुसार शाकल, बाष्कल, ऐतरेयब्राह्मण, ऐतरेय- आरण्यक, शाङ्खायनब्राह्मण, माण्डूकोपनिषद्, कौषीतकीयब्राह्मण एवं कौषीतकीय- आरण्यक रूप से इस वेद के 8 स्थान हैं—

तत्र ऋग्वेदस्याष्टौ स्थानानि भवन्ति। चरणव्यूह 1.4

साथ ही यह ऋग्वेद की पाँच शाखाओं का उल्लेख करता है—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति। 1.7

आश्वलायनी शाङ्खायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति। 1.8

1. शाकलशाखा

वर्तमान समय में चरणव्यूह द्वारा निर्दिष्ट ऋग्वेद की पञ्चविध शाखाओं में से केवल एक ही शाकलशाखा की संहिता उपलब्ध होती है। इसका सर्वप्रथम, प्रकाशन पाश्चात्य-विद्वान् मैक्समूलर महोदय द्वारा सायणभाष्य सहित 1849-73 में किया गया तथा इसी का द्वितीय संशोधित संस्करण 1890-92 में निकाला गया। आज उपलब्ध होने वाली ऋग्वेद की सभी प्रकाशित संहितायें इसी की प्रतिलिपि है। इस ऋग्वेद का दो प्रकार का विभाजन प्राप्त होता है- 1. अष्टकक्रम, 2. मण्डलक्रम। अष्टकक्रम के अनुसार इस वेद में 8 अष्टक, 64 अध्याय, 2006 वर्ग एवं $10580^{1/4}$ मन्त्र हैं।

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्चैतत्पाराणमुच्यते॥ अनुवाकानुक्रमणी 43

इनके अतिरिक्त 'बालखिल्य' नाम से प्रसिद्ध 11 सूक्त इस संहिता में परिशिष्ट रूप से पाये जाते हैं। इन सूक्तों की स्थिति अष्टम मण्डल में सूक्त 49 से 59 तक है। शाकलसंहिता की समाप्ति 'समानी व आकूतिः' 10.191.4 मन्त्र से होती है।

2. बाष्कलशाखा

इस शाखा की संहिता वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं होती। पर यत्र-तत्र इसके कुछ निर्देश मिलते हैं, जिनके आधार पर शाकल से इसकी विशेषताएं सुस्पष्ट प्रतीत होती हैं। इस संहिता में सूक्तों की सङ्ख्या 1025, वर्गों की 2010 अर्थात् शाकलसंहिता से 8 अधिक हैं। इन अधिक प्राप्त 8 सूक्तों 11 बालखिल्य सूक्तों में से प्रथम 7 सूक्त तथा 1 सञ्ज्ञानसूक्त संगृहीत है। 'प्रति ते', 'युवं देवा', यमृत्विजो, 'इमानि वाम्' (अष्टक 6 अध्याय 4 वर्ग 27-31) इन चार बालखिल्यसूक्तों का संहिता में नितान्त अभाव है। इस प्रकार इस संहिता के अष्टम मण्डल में शाकल के 91 सूक्तों की अपेक्षा 99 सूक्त हैं—

एतत्सहस्र दशसप्त चैवाष्टावंतो बाष्कलेऽधिकानि।
तान् पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टानखिलेषु विप्राः॥

—अनुवाकानुक्रमणी 36

शाकल एवं बाष्कल इन दोनों संहिताओं के प्रथम मण्डल के सूक्तों के क्रम में भी पर्याप्त भेद है। बाष्कलसंहिता का पर्यवसान 'तच्छंयोरावृणीमहे' मन्त्र से होता है।

3. माण्डूकायनशाखा

इस शाखा की संहिता, ब्राह्मण, कल्पसूत्र इत्यादि नहीं प्राप्त होते।

4. शाङ्खायनशाखा

इस शाखा की संहिता अनुपलब्ध बतलाई जाती है। पं. बलदेव उपाध्याय (वैदिक साहित्य और संस्कृति, तृतीय संस्करण, पृ0 128) इस संहिता को लुप्त हुई बतलाते हैं। किन्तु इस शाखा का ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् विद्यमान है।

5. आश्वलायनशाखा

पं. बलदेव उपाध्याय तथा अन्य विद्वानों के मत में इस शाखा का केवल श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र ही सुरक्षित है, शेष संहिता, ब्राह्मण इत्यादि कालक्रम से लुप्त हो चुके हैं।

इस प्रकार वर्तमान काल में चरणव्यूह द्वारा उल्लिखित ऋग्वेद की 5 शाखायें भी नहीं हैं। किन्तु, किसी समय ये सभी शाखायें विद्यमान थीं और ये सभी ऋग्वेद से ही सम्बद्ध हैं। क्योंकि इसके भाष्य में महिदास का कथन है—

ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः।
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम्॥
साङ्ख्याश्वलायनौ चैव माण्डूका बाष्कलास्तथा।
बह्वृचा ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः॥

किन्तु अभी तक एकमात्र शाकल के ही प्रकाश में आने के कारण शेष संहिताओं को लुप्त हुई कहा जाता है। पर यह अत्यन्त ही हर्ष का विषय है कि इन लुप्त मान ली गई संहिताओं में से शाङ्खायन एवम् आश्वलायन दो संहितायें राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के पुरातत्त्व-मंदिर में सुरक्षित हैं। दोनों ही संहितायें अष्टकक्रम में 8 भागों में पूर्णतः विद्यमान हैं। साथ ही यह विशेष उल्लेखनीय है कि ये संहितायें अपने-अपने पदपाठसहित सुरक्षित हैं। शाङ्खायनसंहिता की एक प्रति तथा आश्वलायनसंहिता की दो-दो प्रतियाँ पदपाठसहित हैं। ये सभी प्रतियाँ अहमदनगर से विद्यानुरागी, सनातन-आर्य-सभ्यता एवं संस्कृति के उन्नायक अलवर-महाराज सवाई विनय सिंह जी द्वारा अलवर मँगाई गई थीं और यहीं से ये सभी प्रतियाँ प्रतिष्ठान के लब्धप्रतिष्ठ, विद्वद्वरेण्य भूतपूर्व निदेशक डॉ0 फतह सिंह जी को उपलब्ध हुईं।

पदपाठसहित ये संहितायें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न समय एवं भिन्न-भिन्न स्थानों पर लिखी गई। इनके मुखपृष्ठ पर तथा अन्त में शाखा, संहितापाठ, पदपाठ, लेखक, संवत्सर, समय, स्थान इत्यादि का सुस्पष्ट निर्देश होने से इनकी प्रामाणिकता में सन्देह के लिए लेशमात्र की अवकाश नहीं हैं—

शाङ्खायनसंहितापाठः,
दवे अविमुक्तेश्वर नी पोथी'',
''आश्वलायनसंहितापाठः''

''सं. १७५९ माघ बदी २ शनि अद्ये..........नागरजातीय राजपुरे दवे पाठावास्तव्यं दीक्षितशिवरामकुँअरजीयेन लिखितमिदं शुभं'' आश्वलायन-प्रथमाष्टकः (द्वितीयप्रति) 'दुन्दुभिनाम संवत्सरे कार्तिक बहुल ८ इन्दुवासरे इदं पुस्तकं रावुलकोल्लुशायिभट्टन लिखितं'

शाङ्खायनचतुर्थाष्टकः - संवत् १७६१ फाल्गुन कृष्णा ५ तद्दिन नृसिंहभट्ट उपासनी लिखितं''

आश्वलायनचतुर्थाष्टकः - ''संवत् १८१- कार्तिकि कृष्णपक्षे द्वितीया गुरुवासरे लिलेख रामचन्द्रस्तु काश्यां ब्राह्मणतुष्टये''

आश्वलायनपञ्चमाष्टकः - ''शके १६३६। वर्षे पिङ्गलनामसंवत्सरे आषाढ़ सुदी अष्टमी मंगलवारे तद्दिने सम्पूर्ण''

''संवत् १७७१-सामकोपनामकबनभट्टसुतबैजनाथभट्टस्य। शके १६२६

आश्वलायन ''इति चतुष्षष्ठितमोऽध्यायः। समाप्तः। शुभं भवतु।

श्रीरस्तु। यादृशं पुस्तकं दृष्टा तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते। संवत् १७५८ वर्षे माघ.... रविवासरे लिखितं व्यासः.......

आनन्दराम गङ्गाराम - पटना। श्रीः श्रीः।

शाङ्खायन-। ॐ नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै.... संवत् १६५९ वर्षे मार्गशीषशुदि ५ सोमे श्रीमद्वाराणसीमध्यात्........ नागरज्ञातीय दुबे केशवसुत..... रघुनाथेन धर्मदत्त लिखापितमिदम्। पाठकलेखकयोः कल्याणं भूयात्। शुभं भवतु।

यह सर्वाधिक प्रसन्नता का विषय है कि पदपाठसहित इन दोनों ही संहिताओं का सम्पादन शाकलसंहिता की समालोचना के साथ प्रतिष्ठान के ही मनीषी विद्वान् वेदमूर्ति डॉ. फतह सिंह जी के निर्देशन में सम्पन्न किया जा चुका है। जो एक महान् आश्चर्य एवं विस्मय के रूप में अति शीघ्र ही विद्वानों के सम्मुख उपस्थित हो जायेगा। वैदिकसाहित्य के क्षेत्र में यह एक अद्भुत उपलब्धि है, जिसके लुप्त होने के विषय में विद्वानों को पूर्ण निश्चय हो चुका था।

उपलब्ध इन दोनों संहिताओं की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(क) संहितापाठ

शाङ्खायन एवम् आश्वलायन दोनों ही संहिताओं में परस्पर साद्श्य अधिक है तथा शाकल के साथ स्थान-स्थान पर इनका भेद सुस्पष्ट है।

1. शाङ्खायन एवम् आश्वलायन इन दोनों ही संहिताओं में द्वित्व की बहुलता पाई जाती है। यथा—

वर्त्तनिं- 13.3; 1.259; मर्त्त्य 1.5.10; 1.17.8; 1.18.4,5 1.19.2; 1.21.6; 1.26.9; 1.27.3,7; धर्त्तारा 1.17.2; धूर्त्तिः 1.18.3; गर्द्दभं 1.29.5; ऊर्द्ध्व 1.30.6; ततर्द्द 1.32.1; सर्त्तवे 1.32.12 किन्तु शाकलसंहिता में इस द्वित्व का प्रायः अभाव है। यथा- वर्तनिं, मर्त्य, धर्तारा, धूर्तिः, गर्दभं, उर्ध्व, ततर्द, सर्तवे। साथ ही इस द्वित्व की स्थिति शाङ्खायन की अपेक्षा आश्वलायनसंहिता में प्रचुर रूप में दृष्टिगोचर होती है।

अर्च्चति 1.9.10; वर्द्धय 1.10.4,5; धर्म्माणि 1.12.7; तर्प्पयेथाम् 1.24.9; वर्म्मे 1.31.5; दुर्म्मदः 1.32.6।

इन संहितापाठों की अपने-अपने पदपाठों के साथ अनुरूपता मिलती है। अतः इनके प्रामाण्य में सन्देह नहीं है।

2. इन दोनों ही संहिताओं में 'च्छ' के स्थान पर सर्वत्र 'छ' पाया जाता है। यथा गछति 1.1.4 = गच्छति। अछ 1.2.2, 1.13.9 = अच्छ। पृछ 1.4.4 = पृच्छ।

3. शाङ्खायन एवम् आश्वलायन संहितापाठ में 'ए' तथा 'ओ' के बाद 'अ' स्थानीय अवग्रह (ऽ) का सर्वथा अभाव है, जो शाकलसंहिता में सर्वत्र पाया जाता है। यथा- सूनवेग्ने 1.1.9 = सूनवेऽग्ने। नोव = नोऽव। नोवास्ता 1.39.7 = नोऽवस्ता।

4. शाङ्खायनशाखा के संहितापाठ में स्वर से पूर्व नियमतः सर्वत्र अवग्रह का प्रयोग पाया जाता है। यथा- सऽइद्देवेषु 1.1.4 = स इद्देवेषु; शाङ्ख0। सोमाऽअरंकृताः 1.2.1 = सोमा अरंकृता। तुविजाताऽउरुक्षया 1-2-9 = तुविजाता उरुक्षया। दधातेऽअपसम् 1-2-9 = दधाते अपसम्। मनोऽअतिख्यऽआ गहि 1- 4-3 = मा नो अतिख्य आ गहि। दधानाऽइन्द्रऽइदुवः 1-4-5 पर स्वर से पूर्व इस अवग्रह (ऽ) का शाकल तथा आश्वलायनसंहिताओं में नितान्त अभाव है।

5. शाङ्खायनसंहिता में प्रत्येक अध्याय के अन्त में अनुक्रमणी दी हुई है। इसका अन्य संहिताओं में अभाव है। यथा- शाङ्खायनसंहिता प्रथमाष्टके प्रथमोध्यायः- अग्निमीले0 ।1। यदङ्ग ।2। वायवा याहि0 ।3। वायविन्द्रश्च0 ।4। .... ये नाकस्या0 ।37।

6. आश्वलायनसंहिता में कहीं-कहीं पर 'ज' के स्थान पर 'य' मिलता है। यथा-

मय्मना 1.12.3; 1.84.6; = मज्मना - शा0; शाङ्ख0। युनय्मि 1.82.6 = युनज्मि। अय्मन्ना 1.112.17 = अज्मन्ना।

7. इन संहिताओं में यत्र-तत्र कुछ पाठभेद भी दर्शनीय हैं, जिनकी पुष्टि उनके पदपाठ से हो जाती है। यथा- 'देवस्य भर्गः 1.141.1 के स्थान पर शाङ्खायनशाखा के संहिता तथा पदपाठ में 'मित्रस्य गर्भः' पाठ मिलता है।

(ख) पदपाठ

पदपाठ की पद्धति में विशेषकर समस्त पद-विच्छेद के लिए अवग्रह-विधान में शाकल से शाङ्खायन एवम् आश्वलायन की विशेषतायें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। शाकल में समस्तपदों को पृथक् करने के लिये अवग्रह-रूप (ऽ) एक ही रीति है, पर आश्वलायन में यह द्विविध (ऽ,2) तथा शाङ्खायन में त्रिविध (ऽ,2,0) है।

1. इव को समस्तपद से पृथक् करने में शाङ्खायन की दोनों ही शाखाओं के साथ समानता है। यथा- पिताऽइव। 1.1.9;। उदस्राःऽइव। 1.3.8। सुदुघाम्ऽइव। 1-4-1।
2. विसर्गयुक्त पद से द्वितीय पद को पृथक् करने में 2 का प्रयोग किया जाता है। यह विधि शाङ्खायन तथा आश्वलायन में सम्मान है। यथा- पुरः2हितम् 1.1.1। चित्रश्रवः 2 तमः 1-2-5। अहः 2विदः 1.2.2 प्रयः 2भिः 1.2.4। निः2कृतम् 1-2-6।
3. जहाँ पर दोनों पद पूर्णतः स्वतन्त्र, पृथक् होते हैं, वहाँ पर शाङ्खायन में दोनों पदों को (0) द्वारा तथा शाकल एवम् आश्वलायन में अवग्रह (ऽ) द्वारा विभक्त किया जाता है। यथा- रत्न0 धातमम् 1.1.1 = रत्नऽधातमम्। दिवे0 दिवे 1.1.3 = दिवेऽदिवे वीरवत्0 तमम् 1.1.3। परि0 भू 1.1.4। कवि0 क्रतुः 1.1.5। अरम्0 कृताः 1.2.1। सोम0 पीतये 1.2.3। रुद्र0 वर्त्तनी 1.3.3।

इस प्रकार शाङ्खायनशाखा में यह विधान अधिक सुस्पष्ट, महत्त्वपूर्ण तथा वैज्ञानिक है।

(ग) मन्त्रसङ्ख्या

मन्त्रों की सङ्ख्या के सम्बन्ध में इन संहिताओं में परस्पर अधिक वैषम्य पाया जाता है। एक शाखा में जहाँ पर कुछ मन्त्र खिलरूप में पढ़े गये हैं, वे ही मन्त्र अन्यत्र बिना खिल-निर्देश के शुद्ध, मूलरूप में गृहीत है। कहीं-कहीं पर खिल होनेपर भी मन्त्रों की संङ्ख्या तथा क्रम में अन्तर उपलब्ध होता है। मन्त्रों की सङ्ख्या में भेद के कुछ निदर्शन इस प्रकार हैं—

1. द्वितीय अष्टक के पञ्चम अध्याय के वर्ग 16 में अर्थात् प्रथम मण्डल की समाप्ति पर 6 शुद्ध मन्त्र तथा 10 मन्त्रों का एक खिल शाकलसंहिता में प्राप्त होता है जो शाङ्खायनसंहिता में भी समान है। पर आश्वलायनसंहिता में 6 शुद्ध मन्त्रों के बाद

बिना खिल-निर्देश के खिल के ही प्रथम 4 मन्त्रों को शुद्धरूप से पढ़ा गया है। शेष खिल के 6 मन्त्रों का अभाव है। इस प्रकार इस वर्ग में शाकल तथा शाङ्खायन में 6 + 10 = 16 मन्त्र तथा आश्वलायन में 10 मन्त्र हैं।

2. द्वितीय अष्टक के सप्तम अध्याय के वर्ग 12 में अर्थात् द्वितीय मण्डल की समाप्ति पर 6 खिलमन्त्र सहित 3 शुद्ध मन्त्र शाकल एवं शाङ्खायन में समान हैं। पर आश्वलायन में इस वर्ग में प्रथम 2 ही शुद्ध मन्त्र हैं; तृतीय मन्त्र को खिल मानकर खिलमन्त्रों की संङ्ख्या इसमें 7 है।

3. चतुर्थ अष्टक के तृतीय अध्याय में तृतीय वर्ग के बाद 2 मन्त्रों का परिशिष्ट शाकल एवं आश्वलायन में समान है। पर शाङ्खायन में इसका अभाव है।

4. चतुर्थ अष्टक के चतुर्थ अध्याय में वर्ग 29 के बाद 1 मन्त्र का परिशिष्ट शाकल तथा आश्वलायन में समान है। किन्तु शाङ्खायन में इस मन्त्र को शुद्ध रूप से पढ़ा गया है।

5. चतुर्थ अष्टक के चतुर्थ अध्याय में वर्ग 34 के बाद एक 5 सूक्तों का खिल शाकल तथा शाङ्खायन में प्राप्त होता है, जिसकी 'श्रीसूक्त' नाम से प्रसिद्धि है। परन्तु, आश्वलायन में इन पाँचों सूक्तों को खिल न मानकर शुद्धरूप से पढ़ा गया है और इस प्रकार चतुर्थ अध्याय की वर्ग सङ्ख्या 40 हो गई है, जबकि शेष दो संहिताओं में वर्ग संङ्ख्या 36 ही है। यदि लेखक ने प्रमादवश यहाँ पर खिल लिखने की भूल की है, तब वह अन्य के समान वर्ग-सङ्ख्या 36 ही देता। कभी भी वह वर्ग सङ्ख्या 40 न होती। अतः निश्चयरूप से आश्वलायन इन सूक्तों को खिल नहीं मानता।

6. चतुर्थ अष्टक के अष्टम अध्याय में वर्ग 4 के बाद 2 मन्त्रों का एक खिल आश्वलायन में पाया जाता है। शाकल में यह कुछ भिन्न-रूप में है तथा शाङ्खायन में इसकी स्थिति तृतीय अध्याय के वर्ग 3 के बाद है।

7. पञ्चम अष्टक के तृतीय अध्याय में वर्ग 27 के बाद शाङ्खायन में 5 मन्त्रों का एक खिल पाया जाता है, आश्वलायन में खिल का निर्देश न करके इन मन्त्रों के शुद्धरूप में स्वीकार किया गय है तथा शाकल में ये ही मन्त्र वर्ग 30 के बाद कुछ अन्तर के साथ विद्यमान है।

8. सप्तम अष्टक के द्वितीय अध्याय में शाकल तथा आश्वलायन संहिताओं में वर्गों की सङ्ख्या 33 है। इनके विपरीत शाङ्खायन में 36 वर्ग हैं। वर्ग 18 के बाद एक खिल शाकल एवम् आश्वलायन में समानरूप से प्राप्त है। पर शाङ्खायन में इनकी खिल रूप से गणना नहीं की गई है। फलतः इसमें वर्ग की सङ्ख्या में वृद्धि हो गई है।

9. शाकल, शाङ्खायन तथा आश्वलायन संहिताओं में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भेद सञ्ज्ञानसूक्त का है। शाकल के सभी संस्करणों में यह सञ्ज्ञानसूक्त 4 मन्त्रों का प्राप्त होता है। इस सूक्त की समाप्ति 'यथा वः सुसहासति' से होती है तथा इसी के साथ शाकलसंहिता के सर्वस्वीकृत पाठ की समाप्ति भी होती है। वैदिक संशोधन-मण्डल, पूना से प्रकाशित ऋग्वेद की शाकलसंहिता के अन्त में एक परिशिष्टमन्त्रों की तालिका दी गई है। इस परिशिष्ट में इस सर्वमान्य सञ्ज्ञानसूक्त के पश्चात 'सञ्ज्ञानमुशनावदत्'.... से प्रारम्भ कर 'शं चतुष्पदे' तक 15 मन्त्रों की स्थिति है। चरणव्यूह के अनुसार परिशिष्ट के इन 15 मन्त्रों को बाष्कलसंहिता का मूलभाग माना गया है और इस संहिता की समाप्ति 'शं चतुष्पदे' से होती है। इस प्रकार बाष्कल में 53 वर्ग होने चाहिए। जबकि 'सुसहासति' से समाप्त होने वाली शाकलसंहिता में कुल 49 ही वर्ग हैं।

शाङ्खायन तथा आश्वलायन संहिताओं की स्थिति इन दोनों ही शाखाओं से नितान्त भिन्न है। 7 वर्गों के परिशिष्टसहित 64 वर्ग पर आश्वलायन संहिता की समाप्ति होती है तथा 7 वर्गों वाली महानाम्नी ऋचाओं के साथ 63वें पर शाङ्खायनसंहिता की समाप्ति होती है। इन दोनों ही संहिताओं की समाप्ति 'नूनं तं नव्य'....... विष्णवे महते करोमि'' से होती है। इस प्रकार मन्त्रों की सङ्ख्या के सम्बन्ध में इन संहिताओं में परस्पर अधिक भेद प्राप्त होता है। उपलब्ध संहितापाठ तथा पदपाठ में अनुरूपता होने के कारण इन शाङ्खायन तथा आश्वलायन संहिताओं के प्रामाण्य में कोई संशय नहीं है।

अतः इन तथ्यों के आधार पर यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि बाष्कल के समान ही शाङ्खायन एवम् आश्वलायन-संहिताओं का अवश्य ही शाकल से भेद है। इनके वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश तो पर्याप्त अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

इनका समालोचनात्मक अध्ययन अवश्य ही अत्यन्त उपयोगी है एवं वैदिक साहित्य में एक अभिनव आलोक को प्रदान करने वाला है। इनके अनुशीलन से अनेक रहस्यों के उद्घाटन में सहायता प्राप्त होगी तथा अनुसन्धान के लिए नवीन दिशा और प्रेरणा प्राप्त होगी।

BĀṢKALA SAṀHITĀ OF THE ṚGVEDA

A.D. Singh, Jodhpur

Journal of the Oriental Institute,
M.S. University of Baroda, Silver Jubilee Year,
Vol. xxv, No. 2, December 1975, pp. 111-15

Vedas with their accessory texts are many, differing from each other in several ways, Thus Patañjali, the great commentator of Pāṇini has mentioned 21 branches of the Ṛgveda in his Vyākaraṇa Mahābhāṣya. Ācārya Durga in his Nirukta-vṛtti also has supported this view. But in the Caraṇavyūha, Ācārya Śunaka names only 5 śākhās of this Veda. Of these śākhās only the Śākala-Smhitā is available and is being studied by the modern scholars. This Saṁhitā is considered as the oldest recension of the Ṛgveda which was published by Max Müller in 1849-73 with the commentory of Sāyaṇa. Other 20 or 4 Śākhās of this veda are practically untraceable and so have been presumed as lost during the course of time and conṣequently are still unknown to the vedic scholars. Therefore, all the commentators indigenous or foreign, old or modern have invariably selected this Śākala recension of the Ṛgveda and so this branch has been widely studied and commented upon.

The Śākala-Saṁhitā has two-fold divisions, viz. (i) the Aṣṭakakrama and (ii) the Maṇḍala-krama. According to the first division there are 8 Aṣṭakas, 64 Adhyāyas, 2006 Vargas, 10472 Mantras and 394221 Akṣaras in this Saṁhitā whereas the later division consists of 10 Maṇḍalas, 85 Anuvākas and 1017 Sūktas. Apart from this there are 11 more Sūktas popularly known as 'Vālakhilyas' who occupy their place in the 8th Maṇḍala from sūktas 49 to 59 or from

Vargas 14 to 31 in the 4th Adhyāya of the 6th Aṣṭaka. In these Vālakhilya-Sūktas there are 80 Mantras, 3044 Akṣaras divided into 18 Vargas. In this way including these Vālakhilyas the number of Sūktas becomes (1017+11)= 1028, of Vargas (2006+18)=2024 of Mantras (10472+80)= 10552 and of Akṣaras (394221+3044)=397265. These figures bear correspondence to the Satavalekar and other editions and also recent ition of the Ṛgveda Published from Varanasi in 1970 by Gaṅgeśvarānanda. The most remarkable point in this edition is that it mentions the name of the Śākhā as "Śākala-Saṁhita", In the Anuvākānukramaṇī of Śaunaka the number of mantras in this saṁhitā has been given as 10580. In this regard Mahidāsa has given his justification in the Caraṇavyūha-bhāṣya that some mantras are 'Dripadās' in counting but become 'Catuṣpadās' in the 'Pārāyaṇa'. The Nitya-dvipadā mantras are 17, Anityas are 140 and ekapadās are 6. Thus this calculation is highly justified. The Śākala-Saṁhitā concludes with the following mantra of the Saṁjñānasūkta :

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ X.191.4

The Bāṣkala-Saṁhitā :

Though other branches of the Ṛgveda have not been procured so far, yet there is no doubt that others also had been in existence as referred to by Patañjali, Śaunaka etc. Of these the Bāṣkala Saṁhitā is also not available at present, but on the basis of some references occuring in other texts and mainly on the basis of the Anuvākānukramaṇī and Caraṇavyūha some details regarding this

Saṁhitā can be given : The Bāṣkala-Saṁhitā in all contains 1025 sūktas exceeding by 8 from the Śākala. In these additional 8 sūktas, first 7 have been taken from the beginning sūktas of the Vālakhilyas and the 8th is an additional Saṁjñāna-sūkta. These first 7 Vālakhilyas have been included in the 8th Maṇḍala, increasing the number of sūktas upto (92+7)=99 as compared to 92 of the Śākala. The Saṁhitā adds one more sūkta namely 'Saṁjñāna' in the end, leading the number 192 in the 10th Maṇḍala against 191 in the Śākala. The Bāṣkala-Saṁhitā accepts these 8 sūktas as original and not 'Khila' as in the Śākala. The Saṁhitā omits last 4 sūktas of the Vālakhilya group, viz. : 'prati te, yuvaṁ devā, yaṁ ṛtvijo, imāni vām' VII 56-59; Aṣṭaka VI, Adhyāya 4, Vargas 27-31.

The Bāṣkala-Saṁhitā ends with the following mantra of the additional Saṁjñāna sūkta-

तच्छंयोरा बृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ X.192.15

In the Śākala the concluding Saṁjñāna-sūkta is consisting of only 4 mantras whereas the Bāṣkala after this adds one more sūkta of the same name comprising of 15 mantras. This addisional Saṁjñānasūkta has been considered as 'Khila' in the Śākala but here it has been recognized as original. In this Saṁjñāna-sūkta there are 15 mantras divided into 4 vargas. Thus in the last Chapter of the Bāṣkala, viz. in the 64th Adhyāya there are 53 vargas exceeding by 4 from the Śākala.

The first 7 Vālakhilya sūktas have 61 mantras and 13

vargas. Thus in the Bāṣkala-Saṁhitā there should be 1025 sūktas 2023 vargas and 10548 mantras. In this regard it is very remarkable that Mahidāsa and others have given the number of vargas as (2006+4)=2010 which appears totally incorrect. These scholars have added only 4 vargas of the additional Saṁjñāna-sūkta in 2006 vargas of the original Śākala and have not counted 13 vargas of the 7 Vālakhilyas, included in the 8th Maṇḍala from sūktas 49 to 55. Though Mahidāṣa has given the number of sūktas as 1025 yet gives only 2010 of vargas. Therefore, the number of sūktas should be (1017+7+1)=1025, of vargas (2006+13+4)=2023 and of mantras should be (10472+61+15)=10548 in the Bāṣkals- Saṁhitā.

The additional Saṁjñāna-Sūkta of 15 mantras has been accepted as the orriginal part in this saṁhitā. The Āśvalāyana-Śrauta-Sūtra, the Kauśitaki-Gṛhyasūtra, the Caraṇavyūha-bhāṣya all have recognized this Saṁjñāna-sūkta as the concluding sūkta of the Bāṣkala-Saṁhitā.

Mahidāsa (1556 A.D.), the commentator of the Caraṇavyūha supports his view with the reference of the Anukramaṇikā-vṛtti. Throwing some light on the arrangement of Sūktas, Mahidāsa tells that in the Śākala-Saṁhitā anuvākas are generally having 10 sūktas while in the Bāṣkala they are consisting of 15 sūktas. He also refers that there are some differences in the order of mantras between these two śakhās.

Therefore, it can be concluded that the Śākala and the Bāṣkala Saṁhitās of the Ṛgveda, though have closer and greater affinity between them, yet differ from each other in several ways and thus justify themselves as two different śākhās of the same veda.

SHAKHAS OF THE RIGVEDA

Dr. A.D. Singh
Deptt. of Vedic Philosophy, B.H.U., Varanasi
Bharti-Mandar,
International Research Journal,
Kanpur, 2000-01, pp. 140-146

Shakha is a Sanskrit word which is used to denote various recensions of Vedic text. Vedas with their accessory texts are many, differing from each other in several ways. According to Patanjali, the great commentator of Panini, the four Vedas with their accessaory texts and secret knowledge assumed many forms. Thus the Yajurveda came to have one hundred one branches, the Samaveda one thousand, the Rigveda twentyone and the Atharvaveda had only nine branches. 1. In these Vedas, the Rigveda is the earliest and oldest literature in Indian culture.

It was embellished with 21 branches during the time of Patanjali. Acharya Durga has also supported this view in his Nirukta-Vritti. 2. Elsewhere also this number has been mentioned, 3. but later on at the time of Acharya Saunaka this Veda remained to have only 5 branches. He has named them as Ashvalayana, Samkhayana, Shakala, Baskala and Mandukayana in the Charanavyuha. 4. Of these Shakhas also only the Shakala- Samhita is available at present and it is considered as the oldest recension of the Rigveda. It was published by Max Muller in 1849-73 with the commentary of Acharya Sayana. Other branches of this Veda are practically untraceable and so have been presumed as lost during

the course of time and consequently are still unknown to the Vedic scholars. 5. So all the commentators indigenous or foreign, old or modern have selected this Shakala recension. So this branch has been widely studied and commented upon.

The Shakala-Samhita has two-fold divisions, viz (i) the Astaka-Krama and (ii) the Mandala Krama. According to the first division there are 8 Astakas, 64 Adhyayas, 2006 Vargas, 10472 Mantras and 394221 Aksaras in this Samhita, whereas the later division consists of 10 Mandalas, 85 Anuvakas and 1017 Suktas. 6. Apart from this there are 11 more Suktas popularly known as Valakhilyas, which occupy their place in the 8th Mandala from Suktas 49 to 59 or from Vargas 14 to 31 in the 4th Adhyaya of the 6th Astaka. In these Valakhilya-Suktas there are 80 Mantras, 3044 Aksaras divided into 18 Vargas. In this way including these Valakhiyas, the number of Suktas becomes (1017+11)=1028, of Vargas (2006+18)=2024, of Mantras (10472+80)=10552 and of Aksaras (394221)+2044)=397265.

These figures bear correspondence to the Satavalekara and other editions and also the new edition published from Varanasi in 1970 by Swami Gangesvarananda. The most remarkable point in this edition is that it mentions the name of the Shakha as Shakala-Samhita. In the Anuvakanukramani of Shaunak the number of Mantras in this Samhita has been given as $10580\frac{1}{4}$. In this regard Mahidasa has given his justification in the Charanavyuha-Bhasya that some Mantras are Dvipadas in counting but become Chatuspadas in the Parayana. The Nitya- Dvipada manras are 17, Anityas are 140 and Ekapadas are 6.Thus this calculation is higly justi-

fied. The Shakala-Samhita concludes with the following Mantra of the Samjnana-Sukta

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ X 191-4

The Baskala-Samhita has not been procured so far, on the basis of the Anuvakanukramani, Charanavyuha and few references occuring in other texts an attempt has been made to throw some light on this Samhita. The Baskala-Samhita in all contains 1025 Suktas, exceeding by 8 from the Shakala 7. In these additional 8 Suktas first 7 have been taken from the beginning Suktas of the Valakhilyas and 8th is an additional Samjnana-Sukta. These first 7 Valkhilyas have been included in the 8th Mandala, increasing the number of Suktas upto (92-7)=99 as compared to 92 of the Shakala. The Samhita adds one more Sukta namely 'Samjnana' in the end. leading the number 192 in the 10th Mandala against 191 Suktas in the Shakala. The Baskala-Samhita accepts these 8 Suktas as original, which are 'Khila' in the Shakala. The Samhita omits last 4 Suktas of Valkhilya group viz 8.

'Prati te, Yuvam deva, Yamritvijo, imani vam'

VIII 56-59, Astaka VI, Adhyaya 4, Vargas 27-31

The Baskala ends with the following Mantra of the additional Samjnana Sukta :

तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ X-192-15

In the Shakala the concluding Samjnana Sukta is consisting of only 4 mantras whereas the Baskala after this adds

one more Sukta of the same name comprising of 15 Mantras. This additional Samjnana Sukta has been considered as 'Khila' in the Shakala but here in the Baskala it has been recognised as original. In this Sukta there are 15 mantras divided into 4 Vargas. Thus in the last chapter of the Baskala, Viz. in the 64th Adhyaya there are 53 Vargas exceeding by 4 from the Shakala. The first 7 Valkhilya-Suktas have 61 Mantras and 13 Vargas. Therefore in the Baskala-Samhita there should be 1025 Suktas, 2023 Vagras and 10548. In this regard it is very remarkble that the Mahidasa and other have given the number of vargas as (2006+4)=20109 which appears totally incorrect.

These scholars have added only 4 Vargas of the additional Samjnana Sukta in 2006 Vargas of the original Shakala and have not counted 13 Vargas of the 7 Valakhilyas, included in the 8th Mandala from Suktas 49 to 55. Though Mahidasa has given the number of Suktas as 1025 yet gives only 2010 Vargas.

Therefore in the Baskala-Samhita the number of Suktas should be (1017+7+1)=1025, of Vargas (2006+13+4)=2023 and of Mantras should be (10,472+61+15)=10548.

This additional Samjnana-Sukta of 15 Mantras has been accepted as the original part in this Baskala Samhita. The Ashvalayana Srautasutra 10, the Kaushitaki Grahyasutra11, the Charanavyuha13 all have recognised this Samjana-Sukta as the concluding Sukta of the Baklala-Samhita. Mahidasa(1556 A.D.) the commentator of the Charanavyuha supports this view with the reference of the

Anukramanika Vritti 13. Throwing some light on the arrangement of Suktas, Mahidasa tells that in the Sakala-Samhita Anuvakas are generally having 10 Suktas while in the Baskala they are consisting of 15 Suktas 14. He also mentions that there are some differences between these two Shakhas regarding the order of Mantras.

The Mandukayana-Samhita is not available at present. The other two Samhitas Ashvalayana and Samkhayana also have been lost, is the view of scholars. But these two branches are preserved in the Rajasthan Oriental Reserch Institute Jodhpur.

Previously these were in Alwar Palace collection, the personal library of His Highness Maharaja Sawai Vinay Singh Ji and which were procured by him from Ahmadnagar as a warbooty 15. These two branches have been mentioned by Peterson and Pt. Bhagawaddatta but these two scholars could not go through the manuscripts. Thus the contents of these Shakhas are still remain in obscurity 16. These two Samhitas are accompanied with their Padatexts.

Both texts are arranged according to the Astaka-Krama and are available in eight parts. The Ashvalayana is having two copies of Samhita and Pada-texts separately while the Samkhayana has only one copy of each text. All these manuscripts have different copy-writers, bear different times and places of writing, but there is complete resemblance between the Samhita text and Pada-txt and this very fact also proves their authenticity 17. The oldest manuscript among these is the Samhita-text of the 8th Astaka of the Samkhayana as Vikrama era 1659.

Pecularities of these Shakhas :

a- Samhita Patha :

i- There occurs frequent use of 'dvittvas' in both the Shakhas as : Dharttara, Varttanim, Sarttave, Garddabham.

ii- These dvittvas are more in the Ashvalayana as sharmma, Varmmeva, Durmmadah, Varccasa

iii- In the Ashvalayana somewhere there is use of 'Y' in place 'J' as

मय्मना=मज्मना 12-3, 4.1-84-6 युनय्मि=युनज्मि 1.82.6 अय्मत्रा= अज्मत्र 1-112-17

IV- The Samkhayana inserts Avagraha(s) regularly before vowel as मा नो ऽ अति ख्य ऽ आ गहि 1.4.3; स ऽ इद्देवेषु 1.1.4; सोमाऽअरंकृताः 12.1

v- The Samkhayona presents Anukramani of Vargas in the end of each Adhyaya and thus helps in knowing the number of Vargas.

b. Pada-Patha :

There are very remarkable differences between these Shakhas in Pada-Patha, while separating the two members of compound. The Shakala is having only one method as the use of Avagraha(s) the Ashvalayana has two as ase of Avagraha and the figure2, while the Samkhayana is having three methods for this purpose as the use of Avagraha(s), the figure 2 and zero (0). Where the second member of the compound is 'Iva', there the Samkhayana uses Avagraha, where the first member ends in Visarga (:) there it uses figure 2 and where both the members of the compound are separate, having no euphoric change, there it uses zero (0) as

i. पिता ऽ इव 1.1.9; उस्राः ऽ इव 1.3.8; सुधुधाम् ऽइव 1.4.1

ii. पुरः2हितम् 1.1.1; चित्रश्रवः2तमः 1.1.5; अहः2विदः 1.2.2; निः2कृतम् 1.2.6

iii. रत्न0 धातमम 1.1.1; दिवे0 दिवे 1.1.3; परि0 भूः 1.1.4; कवि0 क्रतुः 1.1.5

1-C- The number & order of Mantras

There is much difference in the number of Mantras and also sometimes in their order. Some mantras, which have been accepted as 'Khila' in one Shakha, the same have been admitted as original in other Shakhas. In the 4th Adhyaya of 4th Astaka, after Varga34, there is a 'Khila' of 5 Suktas, known as 'Sri-Sukta' in the Shakala and the Samkhayana, but these are read as original in the Ashvalayana. In this Adhyaya, the Shakala and Samkhayana are having 36 Vargas while in the Ashvalayana the number of Vargas is 40. In these Ashvalayana and Samkhayana after the Samjnana-Sukta there are 7 Vargas more than the Shakala. These two conclude with विष्णावे महते करोमि Mantra. Both these Samhitas have Mahanamni Riks, not agailable in the Shakala and Baskala. These Riks are found in the Aitareya Brahmana18 XXII. 2. As the Brahmana contains these Riks, so these must be in its Samhita, the Rigveda. The Ashvalayana Srautasutra also describes its use, application. Due to unavailability of these Mahanamni Riks in the shakala-Samhita, Acharya Sayana calls them as अरण्याध्ययनार्था 19 and also tells a legend and justifies their nomination 20. Indra attained divine glory and greatness by the application of these mantras, so these are called 'Mahanamni'. The concluding 64th chapter of the Samkhayana-Samhita ends with Varga 63 and the Ashvalayana ends with Varga

64. Therefore there occur many variations between these Shakhas, but it is remarkable that all Samhita texts have complete resemblance with their Pada-texts.

Therefore, it can be concluded that these Samhitas of the Rigveda, though have closer and greater affinity between them, yet differ from each other in several ways and thus justify themselves as different Shakhas of the same veda. A critical and comparative study will reveal their real value and will reflect a new glimpse on the history of Vedic literature.

टिप्पणी :

1. चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः।
   एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः।
   एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाऽथर्वणो वेदः।
   व्याकरणमहाभाष्य-पस्पशाह्निक 1.1.5
2. एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। एकशतधाऽध्वर्यम्।।
   सहस्रधा सामवेदम्। नवधाऽथर्वणम्। निरुक्तवृत्ति 1.20
3. (अ) ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्याकाः।
   मुक्तिकोपनिषद्, हनुमत्-रामवंसाद
   (आ) एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा। कूर्मपुराण 52.18
   (इ) बाह्वृच एकविंशतिधा–प्रपञ्चहृदय, द्वितीयभाग, वेदप्रकरण
   (ई) एकविंशतिबाह्वृच्या आश्वलायन–ऐतरेयादिभेदेन।
   मनुस्मृति 2.6 मेधातिथिभाष्य
   (उ) एकविंशत्यध्वयुक्तमृग्वेदमृषयो विदुः।
   सहस्रध्वा सामवेदो यजुरेकशताध्वकम्।
   नवाध्वाऽथर्वणोऽन्ये तु प्राहुः पंचदशाध्वकम्।।
   —षड्गुरुशिष्यः सर्वानुक्रमणीवृत्तिभूमिका
4. एतेषां शाखा पञ्चविधा भवन्ति।
   आश्वलायनी शांखायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्चेति। —चरणव्यूह 1.7, 8
5. (अ) अन्याः शाखा इदानीं कालवशाद्विनष्टाः। विद्याधरशर्मा, भूमिका

कात्यायनश्रौतसूत्रम्। अच्युतग्रन्थमाला काशी, सं. 1987 पृ. 13.

(आ) उपाध्याय, बलदेवः 'वैदिकसाहित्य और संस्कृति', तृ.सं.पृ. 128

(इ) मीमांसक, युधिष्ठिरः ऋग्वेद की ऋक्संख्या, काशी, सं. 2006, पृ. 16.17

(ई) स्वामी, करपात्री, 'वेद का स्वरूप और प्रामाण्य', द्वितीयभाग, श्रीधर्मसंघ, शिक्षामण्डल, काशी, सं. 2016 पृ. 67.68

6. ऋचां दशसहस्राणि ऋचा पञ्चशतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्चैतत्पारायणमुच्यते।। अनुवाकानुक्रमणी 43

7. एतत्सहस्रं दशसप्त चैवाष्टावतो बाष्कलेऽधिकानि।
तान् पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टानखिलेषु विप्राः।। तदेव 36

8. 'प्रति ते, युवं देवा, यमृत्विजो, इमानि वाम्' इति चत्वारि बालखिल्यसूक्तानां लोप इत्यर्थः। चरणव्यूहभाष्य पृ0 26

9. संज्ञानसूक्तस्य चत्वारो वर्गाश्चात्र मिलित्वा दशाधिकसहस्रद्वयमित्यर्थः। तदेव पृ. 25

10. 'समानी व'इत्येका 'तच्छंयोरा वृणीमहे' इत्येका। —आश्वलायनगृह्यसूत्र 3.5.8.9

11. धृतं हविरिति द्वयृचा तच्छंयोरा वृणीमहे इत्येका हुतशेषाद्धविः प्राश्नन्ति।
—औशीततकिगृह्यसूत्र 4.5

12. अन्ते—संसमित् (अष्टः 8 अ वर्ग 49) सूक्तानन्तरं पञ्चदशऋचात्मकं 'संज्ञानमुशनावदत्' इत्यादि 'तच्छंयोरा वृणीमह' इत्यन्तं वेदसमाप्तिरिति बाष्कलशाखाध्ययनम्।.....
सूक्तसहस्रसप्तदशाधिकाद् अष्टौ सूक्तानि बाष्कलस्याधिकानीत्यर्थः। चरणव्यूहभाष्य पृ. 26

13. 'समानीव' (अष्ट 8 अ. 8 वर्ग 49) इति शाकलानां, 'तच्छंयोरिति' बाष्कलानामित्यत्र बाष्कलशाखाध्ययनमनुक्रमणिकावृततावुक्तम्।।—तदेव पृ. 25

14. अनुवाको दशसूक्तात्मकः शाकलस्य।
पञ्चदशसूक्तात्मको बाष्कलस्य। तदेव पृ. 25

15. श्रीमन्महाराजधिराजमहारावराजाश्रीसवाई–विनयसिंहदेववर्मणा पुस्तकमद..... हैदराबादत आयातम् तथा अहमदनगरात्पुस्तकमिदमायातम्।

16. अलवर के राजकीय पुस्तकालय में ऋग्वेद के कुछ कोष हैं। उन्हें शांखायनशाखा कहा गया है। हम उन्हें देख नहीं सके। सूची उनका कोई विशेष वर्णन नहीं किलता।

17. ॐ नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै। संवत् 1659 वर्षे मार्गशीर्ष शुदि 5

सोमे श्रीमद्वाराणसीमध्यात् नागरज्ञातीयदुबे केशवसुतरघुनाथेन धर्मदत्तेन.....
लेखापितम, पाठकलेखकयोः कल्याणं भूयात्। शुभं भवतु (प्रति के अन्त में)
"आश्वलायनसंहितापाठः"—मुखपृष्ठ अष्टम् अष्टकः
"इति चतुःषष्ठितमोऽध्यायः समाप्तः। शुभं भवतु। श्रीरस्तु। यादृशं पुस्तकं दृष्टं तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते। संवत् 1758 वर्षे माघ.....
रविवासरे लिखितम् व्यास आनन्दराम गंगाराम पटना। श्रीः श्रीः।

18. विदा मघवन्विदा गातुमनु शंसिषो दिशः।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो।।1।।
आभिष्ट्वमाभिष्टिभिः प्रचेतन प्रचेतय।
इन्द्रद्युम्नाय न इष एवा हि शक्रः।।2।।
राये वाजाय वज्रिवः शविष्ठ वज्रिन्नृंजसे।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृजस आ याहि पिब मत्स्व।।3।।
बिदा रायः सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृंजसे यः शविष्ठः शूराणाम्।।4।।
यो मंहिष्ठो मघोनां चिकित्वाँ अभि नो नय।
इन्द्रो विदे तमु स्तुषे वशी हि शक्रः।।5।।
तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः पर्षदति द्विषः क्रतुच्छन्द ऋतं बृहत्।।6।।
इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः पर्षदति द्विषः स नः पर्षदति स्त्रिधः।।7।।
पूर्वस्य यत्ते अद्रिवः सुम्न आ धेहि नो वसो।
पूर्तिः शविष्ठ शस्यत ईशे हि शक्रः।।8।।
नूनं तं नव्यं संन्यसे प्रभो जनस्य वृत्रहन्।
समन्येषु ब्रवावहै शूरो यो गोषु गच्छति।
सखा सुशेवो अद्वयाः।।9।।
ऐतरेय ब्राह्मण, आनन्दाश्रम सं. सी. 16-4; 22-2

19. (अ) कथितोपनिषत्सर्वा महानाम्न्याख्यमन्त्रकाः।
अरण्याध्ययनार्था वै प्रोच्यन्तेऽथ चतुर्थके।।
ऐतरेयारण्यक 4.1.1 उपोद्घात्

(आ) या एता महानाम्न्यः सन्ति ताः सीम्न ऊर्ध्वा अभ्यसृजत् अग्निमीळ इत्यारभ्य यथा—वः सुसहासतीत्यन्तां दशतयीनां सीमा तस्याः सीम्न ऊर्ध्वभाविनीः कृत्वा प्रजापतिरभितः सृष्टवान्। अत एवैता. संहिताः संहितायां नाऽम्नायन्ते। न्त्विारण्यकाण्ड आम्नायन्ते।

अथवा नवेता ऋचस्त्रिवेदेभ्य उपरिस्थितत्वेन प्रयुज्यन्ते। –ऐतरेय ब्राह्मणभाष्य 22.2

20. (अ) इन्द्रो वा एताभिर्महानात्मानं निरमिमीत तस्मान्महानाम्न्योऽथो इमे वै लोका महानाम्न्य इमे महान्त इति। ऐतरेयब्राह्मण 22.2

(आ) पुरा कदाचिदिन्द्रः स्वयमेवैश्वर्यादिगुणैर्महान् भविष्यामीति विचार्य विदा मघवन्नित्यादिभिर्ऋग्भिः स्वात्मानं गुणैर्महान्तं निर्मितवान्।

तस्मान्महत्त्वनिर्माणसाधनत्वान्महानाम्नीशब्दवाच्याः सम्पन्नाः।

अपि च महानाम्न्यो भूरादिलोकत्रयस्वरूपा लोकाश्च महान्तस्तस्मादप्यासां महानाम्नीत्वम्। —ऐतरेयब्राह्मणभाष्य 22.2

ऋग्वेदस्य अप्रकाशितशाखानां विवरणम्

डॉ. अमलधारी सिंह

वेदविद्या, त्रैमासिक शोध पत्रिका,
जनवरी-जून 2004, वर्ष 2, अङ्क 1-2,
महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्याप्रतिष्ठान, उज्जैन, पृ0 3-7

वेदानां महत्त्वं सर्वविद्यामयत्वं तु सुप्रथितमेव। एषु ऋग्वेदः प्राचीनतमः प्रशस्ततमः श्रेष्ठः।

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाऽथर्वणो वेदः 'इतिरूपेण एकविंशति-शाखासमन्वितः ऋग्वेदः इत्युल्लिखति महाभाष्यकारो भगवान् पतञ्जलिः। निरुक्तवृत्तौ दुर्गाचार्यैरपि समर्थितमिदं वचनम्।'

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। एकशतमाध्वर्यम्।
सहस्रधा सामवेदम्। नवधाऽऽथर्वणम्। 1.20

मुक्तिकोपनिषदि हनुमत्-रामसंवादेऽपि 'ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः' इति कथितमस्ति। कूर्मपुराणेऽपि एवमेव कथितमस्ति 'एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा' 52.18।

प्रपञ्चहृदयस्य वेदप्रकरणे सर्वानुक्रमणीवृत्तिभूमिकायां मनुस्मृतिमेधातिथिभाष्येऽपि एकविंशतिशाखानाम् उल्लेखः प्राप्यते। 'चतुर्धा व्यभजत् तांश्च चतुर्विंशतिधा पुन' इतिरूपेण ब्रह्मसूत्रस्य 1.1.18 माध्वभाष्येऽणुभाष्ये च चतुर्विंशतिशाखानामुल्लेखोऽस्ति। भर्तृहरिवाक्यपदीये 1.6 तु

'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। पञ्चदशधा इत्येके' इत्युल्लिखितम्। अन्यत्रापि बहुषु ग्रन्थेषु शाखासंख्याविषये उल्लेखाः प्राप्यन्ते। शौनकाचार्यैस्तु चरणव्यूहग्रन्थेऽस्य ऋग्वेदस्य नामग्रहणेन पञ्चविधशाखानामुल्लेखः कृतः—

'एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति।
आश्वलायनी शांखायनी शाकला बाष्कला माण्डूकायनाश्च' 1.7.8

'पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह' भाग- 12.6.9 'तत्रर्ग्वेदधरः पैलः'1.4.21, ऋग्वेदश्रावकं पैलं संजग्राह महामतिः' विष्णुः 'इतिवचनाद् भगवान्

वेदव्यासः वेदं चतुर्धा विभज्य आद्यामृक्संहितां पैलाय स्वशिष्याय प्राददात्, इति पुराणेषु अपि उल्लिखितम्। ततः इमां शाकलः प्राप्तवान्। अनन्तरम् आश्लायनशांखायनमाण्डूकायनबाष्कलाः प्राप्तवन्तः इमामृक्संहिताम्। एवमेते सर्वे पञ्चाचार्याः एकवेदिनः सन्ति, इति प्रोक्तं चरणव्यूहभाष्यकारेण महिदासेन—

ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः।
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम्॥
शांख्याश्वलायनौ चैव माण्डूका बाष्कलास्तथा।
बह्वृचा ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः॥ पृ० 24

परन्तु समुल्लिखिता एताः शाखाः साम्प्रतं नैव सुरक्षिताः सन्ति। आसु केवलमेकैव शाकलसंहिता प्रकाशिता वर्ततेऽवशिष्टाः सर्वाः शाखाः कालक्रमेण कालकवलिता विनष्टा जाता इति विदुषाम् इतिहासकाराणां वचनम्। 'मन्त्रस्तु ब्रह्म तद् व्याख्यानं ब्राह्मणम्' 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत' इतिरूपेण रहस्यात्मकवेदानां व्याख्यानं विविधदृष्ट्या ब्राह्मण-आरणयक-उपनिषत्सु वेदाङ्गेषु इतिहासपुराणेषु विहितमस्ति। 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्, मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः, मन्त्रब्राह्मणरूपौ द्वावेव वेदभागौ इतिरूपेण प्रत्येकं मन्त्रभागस्य व्याख्यानरूपो ब्राह्मणभागोऽपि भवितुमर्हति। परन्तु सम्पूर्णपरम्परा विच्छिन्ना वर्तते'।

चरणव्यूहसमुल्लिखितासु एतासु पञ्चविधशाखषु बाष्कलाश्वलायन -शांखायनविषये प्रस्तूयतेऽत्र। बाष्कलसंहितायां शाकलतः अष्टौ सूक्तानि अधिकानि सन्ति। तत्र एकादशसंख्यात्मकसुप्रसिद्धबालखिल्यसूक्तेषु आदितः सप्तसूक्तानि मूलरूपेण स्वीकृतानि सन्ति तथा च पञ्चदशमन्त्रात्मकमेकं नवीनं संज्ञानसूक्तम्। एवं बाष्कलस्य सप्तममण्डले सप्तसूक्तानि अधिकानि सन्ति तथा दशमण्डले सूक्तमेकमधिकमस्ति।

शाकलस्य संज्ञानसूक्ते चत्वारो मन्त्राः सन्ति। अस्याः संहितायाः समाप्तिः

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ 10.191.4

इतिमन्त्रेण भवति। बाष्कले तु अस्य संज्ञानसूक्तस्य अनन्तरं पञ्चदशमन्त्रात्मकमेकम् अपरं संज्ञानसूक्तमस्ति। 'संज्ञानमुशनावदत' इति मन्त्रेण समारभ्य

'तच्छयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवीस्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।

ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे''

इति मन्त्रेण समाप्तिर्भवति।

आश्वलायनश्रौतसूत्रे 'समानी व इत्येका' 'तच्छंयोरा वृणीमहे' 'इत्येका तथा कौषीतकिगृह्यसूत्रे' 'घृतं हविरिति द्वयृचा तच्छंयोरा वृणीमहे इत्येका हुतशेषाद्धविः प्राश्नन्ति' इति समुल्लेखेन अस्य अतिरिक्तपञ्चदशमन्त्रात्मकसंज्ञानसूक्तस्य प्रामाणिकता सिद्धा भवति।

चरणव्यूहभाष्ये इदमेव प्रतिपादितमस्ति 'समानी व' इति शाकलानां, तच्छंयोरिति बाष्कलानामित्यत्र बाष्कलशाखाध्ययनमनुक्रमणिकावृत्तावुक्तम्। 'अन्ते संसमिति' सूक्तानन्तरं पञ्चदशऋचात्मकं 'संज्ञानमुशनावदत्' इत्यादि 'तच्छंयोरा वृणीमह' इत्यन्तं वेदसमाप्तिरिति बाष्कलशाखाध्ययनम्।............

सूक्तसहस्रसप्तदशाधिकाद् अष्टौ सूक्तानि बाष्कलस्याधिकानीत्यर्थः।

आश्लायनशांखायनद्वयं जोधपुरस्थिते राजस्थानप्राच्यविद्याप्रतिष्ठानस्य पुरातत्त्वमन्दिरे सुरक्षितं विद्यते। अष्टकक्रमेण स्वस्वपदपाठसमन्विते समग्ररूपेण इमे द्वे शाखे स्तः। अलवरमहाराजमहारावसवाईविनयसिंहदेवेन हैदराबादतः अहमदनगरतः विजयक्रमेण समानीते एते। पाण्डुलिपिमुखपृष्ठे समुल्लिखितमिदम्—

'श्रीमन्महाराजाधिराज-महारावराजाश्रीसवाईविनयसिंहदेववर्मणा' पुस्तकम् अदः....... हैदराबादत आयातम्।' 'अहमदनगरात्पुस्तकमिदमायातम्।'

सर्वासां पाण्डुलिपीनाम् आदौ अन्ते च शाखानाम प्रतिलिपिकर्तुर्नाम,
संहितापाठ। पदपाठ। संवत्सर तिथिस्थानादीनाम् उल्लेखो विद्यते।
संहितापाठपदपाठयोः समन्वयो विद्यते।। एवमासां प्रामाणिकता परिपुष्टा भवति।
यथा

शांखायनसंहितापाठः

ॐ नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै।

संवत् १६५९ सहस्रषट्नवपञ्चाशत् वर्षे मार्गशीर्ष सुदि पञ्च सोमे श्रीमद्वाराणसीमध्यतो नागरज्ञातीय दवे केशवसुतरघुनाथेन धर्मदत्तेन लिखापितमिदम्। पाठकलेखकयोः कल्याणं भूयात्। शुभं भवतु।

आश्वलायनसंहितापाठः

इति चतुष्षष्टितमोऽध्यायः समाप्तः। शुभं भवतु। श्रीरस्तु। यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते। संवत् सहस्रसप्त अष्टपञ्चाशत् वर्षे माघ रविवासरे लिखितम्। व्यास आनन्दराम गंगाराम पटना। श्रीः श्रीः।। सर्वासु

पाण्डुलिपिषु आश्वलायनसप्तमाष्टकस्य प्राचीनतमा विद्यते। संवत् सहस्रपञ्चनवतिः। संहितापाठपदपाठयोः पूर्णतः समन्वयो विद्यते, एवमासां पाण्डुलिपीनां अनयोः शाखयोः प्रामाणिकता परिपुष्टा भवति।

1. पाण्डुलिपीनां वैशिष्ट्यम्

1. सर्वाः स्वराङ्किताः सन्ति।
2. शांखायनस्य संहितापाठे सर्वत्र नियमितरूपेण स्वरपूर्वम् अवग्रहस्य स्थितिर्विद्यते। यथा- स ऽ इद्देवेषु 1.1.4 सोमा ऽ अरंकृताः 1.2.1 विश्वे देवासोऽअस्रिधऽ एहि मायासोऽअद्रुहः। 1.3.9
3. प्रत्येकम् अध्यायस्य अन्ते वर्गानुक्रमणी विद्यते।
4. आश्वलायने तु यत्र तत्र जकारस्थाने यकारः प्राप्यते=मज्मना - मय्मना। अज्मन्ना= अय्मन्ना। युनज्मि - युनय्मि।

पदपाठवैशिष्ट्यम्

पदपाठ विषये तु अतीव महत्त्वपूर्णम् उल्लेखनीयं वैशिष्ट्यमस्ति।

समस्तपदविच्छेदविषये शाकलेऽवग्रहप्रयोगरूपः एको विधिः अस्ति, आश्वलायने अवग्रहप्रयोगस्य अंकद्विप्रयोगस्य च इति द्वौ विधी तथा शांखायने तु अवग्रहप्रयोगस्य अंकद्विप्रयोगस्य तथा शून्यप्रयोगस्य च इति त्रयो विधयः प्राप्यन्ते। यथा पिताऽइव 1.1.9। उस्राः ऽ इव 1.3.8, सुदुघाम्ऽइव 1.4.1 पुरः 2 हितम् 1.1.1। चित्रश्रवः 2 तमः 1.1.5। अहः 2 विदः 1.2.2, निः 2 कृतम् 1.2.6, रत्न0 धातमम् 1.1.1। दिवे0 दिवे 1.1.3, परि0 भूः 1.1.4। कवि0 क्रतुः 1.1.5

मन्त्रसंख्यावैशिष्ट्यम्

अनयोः शाखयोः मन्त्राणां संख्याविषये तु महदन्तरं विद्यते। मन्त्रेषु पाठभेदस्तु न प्राप्यते। परन्तु मन्त्राणां संख्याविषये तु भेदो विद्यत एव। शाकले ये मन्त्राः खिलरूपेण पठिताः सन्ति तेषु केचित् मन्त्राः अत्र अनयोः शाखयोः मूलरूपेण स्वीकृताः सन्ति। एवमनयोः वर्गाणां संख्याऽपि अधिका संजाता। अनयोरपि खिलरूपेण स्वीकृतमन्त्राणाम् अथ खिलं इति खिलं इति रूपेण निर्देशमनमस्ति। संहितापाठपदपाठयोः अनुरूपत्वाद अनयोः शाखयोः प्रामाणिकताऽस्त्येव। एवं शाकलस्य समाप्तिः चतुष्षष्ठ्यध्याये एकोनपञ्चाशत् वर्गतो भवति। बाष्कले तु त्रिपञ्चाशत् वर्गाः सन्ति। शांखायने त्रिपष्टिवर्गाः तथाऽऽश्वलायने तु चतुष्षष्टिवर्गा विद्यन्ते। अनयोः शाखयोः संज्ञानसूक्तस्य अनन्तरं सप्तवर्गाणां स्थितिर्विधते। तथा 'विष्णावे महते करोमि' इतिमन्त्रेण अनयोः शाखयोः समाप्तिर्भवति। महानाम्नीसंज्ञकानाम् ऋचाम्

अनयोः शाखयोः स्थितिरिति विशेषतः उल्ल्लेखनीयं विद्यते। महानाम्नीऋक्षु नवमन्त्राः सन्ति। एते मन्त्राः ऐतरेयब्राह्मणे विलसन्ति। ऋग्वेदीयं ब्राह्मणमिदम्। अतः ऋग्वेदे अवश्यमेव एषां मन्त्राणां स्थितिर्भवितव्या। परन्तु शाकले एते मन्त्राः न सन्ति। आश्वलायनश्रौतसूत्रेतु एषां मन्त्राणां विनियोग निरूपितः। ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये सायणाचार्योऽस्मिन् विषये कथयति।

महानाम्नीष्वत्र स्तुवते शाक्वरेण साम्ना राथन्तरेऽहनि पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्॥ 22.2

विदा मघवन्नित्यादयो नवर्चो महानाम्नीसंज्ञकास्तासूद्गातारः शाक्वराख्येन साम्ना स्तुवते॥ 22.2

सायणाचार्यः आसामृचां नामकरणविषये एवं कथयति—

इन्द्रो वा एताभिर्महानात्मानं निरमिमीत तस्मान्महानाम्नोऽथो इमे वै लोका महानाम्न्य इते महान्त इति'। 22.2

आख्यायिकामप्येकां प्रस्तौति सः।

पुरा कदाचिदिन्द्रः स्वयमेवैश्यर्यादिगुणैर्महान् भविष्यामीति विचार्य विदामघवन्नित्यादिर्भिऋग्भिः स्वात्मानं गुणैर्महान्तं निर्मितवान्। तस्मान्महत्त्वनिर्माणसाधनत्वा न्महानाम्नीशब्दवाच्याः सम्पन्नाः। अपि च महानाम्नो भूरादिलोकत्रयस्वरूपा लोकाश्च महान्तस्तस्मादप्यासां महानाम्नीत्वम्।'

ऐतरेयब्राह्मणे स्थितां महानाम्नीऋचां स्थितिं शाकलेऽप्राप्य सायणाचार्यः 'कथितोपनिषत्सर्वा महानाम्न्याख्यमन्त्रकाः। अरण्याध्ययनार्था वै प्रोच्यन्तेऽथ चतुर्थके।।' अरण्याध्ययनार्था कथयति। पुनश्च समाधानमपि प्रस्तौति या एता महानाम्न्यः सन्ति ताः सीम्न ऊर्ध्वभाविनीः कृत्वा प्रजापतिरिभितः सृष्टवान्। अत एवेताः संहिताः संहितायां नाऽऽम्नायन्ते। किन्त्वारण्यकाण्ड आम्नायन्ते। अथवा नवैता ऋचस्त्रिवेदेभ्य उपरि स्थितत्वेन प्रयुज्यन्ते।.....22.2

आसामृचां शाकलेऽनुपलिब्धत्वादेव सायणाचार्यः एवं समाधानं प्रस्तुतवान्। परन्तु मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनाधेयम् इति वचनात् ब्राह्मणभागे स्थितत्वात् मन्त्रभागेऽपि आसां स्थितिरव्यश्यमेव भवितव्या।

एता महानाम्नीऋचः अनयोः आश्वलायनशांखायनशाखयोः विलसन्ति। एवमनयोः शाखयोः प्रामाणिकत्वमपि प्रकाशितं भवतिः। अनयोः शाखयोः प्रकाशनेन तुलनात्मकाध्ययेन महत्त्वपूर्णानि तथ्यानि सुप्रकाशितानि भविष्यन्ति। प्राचीनतमः शेवधिरेष संरक्षणीयः।

ग्रन्थ-विद्या

मूल-ग्रन्थ

1. अथर्ववेद, सं0 श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी (वलसाड)
2. ऋग्वेद, सं0 श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी (वलसाड)
3. शुक्ल यजुर्वेद : वासजनेयि माध्यन्दिन, स्वाध्यायमण्डल पारडी (वलसाड)
4. सामवेद, स्वाध्यायमण्डल पारडी (वलसाड)
5. ऋग्वेद हिन्दी व्याख्या; शर्मा, आचार्य मुंशीराम; रराटे, जनार्दनगङ्गाधर, मालवीय सुधाकर, भुवन वाणी ट्रस्ट, सीतापुर रोड, लखनऊ, वि0सं0 2049
6. यजुर्वेद हिन्दी व्याख्या, कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह, भुवनवाणी 1992
7. सामवेद हिन्दी व्याख्या, कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह, 1992
8. अथर्ववेद, शर्मा आचार्य मुंशीराम, कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह, 1992
9. ऋक्संहिता सायणाचार्यविरचितभाष्यसंहिता पदपाठयुता च, सं0 म0म0 बोडस राजारामशास्त्री शिवरामशास्त्री, गणपतकृष्णजी मुद्रणालय, मुम्बई, शक 1810
10. ऋग्वेदसंहिता-सायणभाष्यसमेता, सं0 नारायणशर्मा सोनटक्टे चिन्तामणिशर्मागणेश काशीकर वैदिक संशोधनमण्डल, पूना, अप्रैल 1946, द्वि0सं0 1983
11. ऋग्वेदसंहिता पदपाठ संहिता, सं0 भट्ट मोक्षमूलर, तृतीय संस्करण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1965
12. ऋग्वेदसंहिता हिन्दी भाषानुवाद, पं0 रामगोविन्दत्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1991, 9 भाग

13. ऋग्वेद-संहिता-माधवीय वेदार्थप्रकाशसंहिता, कृष्णदास संस्कृत सीरीज ग्रन्थ संख्या 37, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1983
14. ऋग्वेद; पदपाठसहित, स्कन्दस्वामी उद्‌गीथ वेंकटमाधवसायण मुद्‌गलवृत्ति, सं0 आचार्य विश्वबन्धु विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान, होशियारपुर, वि0सं0 2020, 1963, विश्वेश्वरानन्द भारतभारती ग्रन्थमाला 20
15. ऋग्वेद, भगवान् वेदः, सं0 म0म0 गङ्गेश्वरानन्द उदासीन, सद्‌गुरु गङ्गेश्वर जनकल्याणन्यास संस्कृत महाविद्यालय, ढुण्डिराज, वाराणसी, 1970
16. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, स्वामी दयानन्दसरस्वती, सं0 युधिष्ठिर मीमांसक, श्रीरामलालकपूर ट्रस्ट, अमृतसार, द्विसं0 1984
17. ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी अनुवाकानुक्रमणी, सं0 शर्मा उमेश चन्द्र, विवेक प्रकाशन, अलीगढ़, 1977
18. आश्वलायन गृह्यसूत्र, शर्मा, नरेन्द्रनाथ, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1976
19. आश्वलायनश्रौतसूत्रम्, शर्मा, गोपालप्रसाद, द भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 2018
20. आश्वलायनशाखीया ऋग्वेदसंहिता, सं0 चौबे ब्रजबिहारी, दो भाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र, दिल्ली, 2009
21. ईशादि नौ उपनिषद् (हिन्दी व्याख्या), गोयन्दका, हरिकृष्णदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, चतुर्थ सं0, वि0सं0 2019
22. ऐतरेय ब्राह्मण, हिन्दी व्याख्या, 2 भाग, मालवीय सुधाकर, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी, 1980
23. चरणव्यूहसूत्रम् महिदासभाष्यसहितम्, सं0 शास्त्री, अनन्दराम डोगरा, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, बनारस, 1995
24. निरुक्त हिन्दी व्याख्या, शास्त्री छज्जूराम, मेहरचन्द लक्ष्मनदास संस्कृत पुस्तकालय, दरियागंज, दिल्ली, 1963
25. मनुस्मृति, शास्त्री हरगोविन्द, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1970
26. महाभारत हिन्दी अनुवाद 6 खण्ड, गीताप्रेस, गोरखपुर, चतुर्थ सं0, वि0सं0 2044

27. शतपथब्राह्मण सायण भाष्य सहित, सं0 सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, 1993

28. श्रीमद्भगवद्गीता, हिन्दी व्याख्या : स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, 49वां सं0, संवत् 2055

29. शाङ्खायनशाखीया ऋग्वेदसंहिता, पदपाठसंवलिता 4 भाग, संपादक : सिंह, अमलधारी, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, रजत-जयन्ती पर्व, 2012-13

30. शाङ्खायनब्राह्मण सं0 भट्टाचार्य, श्रीहरिनारायण कलिकाता संस्कृतमहाविद्यालय, गवेषणग्रन्थमाला 63, 1970

31. शाङ्खायनब्राह्मण हिन्दी अनुवाद, राय, गङ्गासागर, रत्ना पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, 1987

32. शाङ्खायनारण्यकम् सं0 आपटे विनायक गणेश, आनन्दाश्रमसंस्कृत-ग्रन्थावलिः,90, पुण्याख्यपत्तने, 1922

33. शाङ्खायनश्रौतसूत्रम्, सं0 अल्फ्रेड हिलेब्रान्ट, मेहरचन्द लक्ष्मनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1981

34. शाङ्खायन गृह्यसूत्रम्, सं0 राय, गङ्गासागर, रत्ना पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, 1995

35. शाङ्खायनशाखीयो रुद्रपाठः, सं0 पाण्डेय, प्रकाश, इन्दिरागांधी राष्ट्रिय कलाकेन्द्र, नई दिल्ली, 2009

36. शाङ्खायनशाखीयो रुद्रपाठसंग्रहः, सं0 सिंह, अमलधारी, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठान, उज्जैन, 2011

37. अवस्थी विश्वम्भरदयाल, वैदिक संस्कृति और दर्शन, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, 1966

38. उपाध्याय, पं0 बलदेव, संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, प्रथम खण्ड वेद, सं0 चौबे, ब्रजबिहारी, उत्तरप्रदेश संस्कृतसंस्थान, लखनऊ, 1996

39. उपाध्याय, पं0 बलदेव, भारतीय दर्शन, सप्तम सं0 शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1999

40. उपाध्याय, पं0 बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा मन्दिर काशी, तृ0सं0 1967
41. कविराज, गोपीनाथ, भारतीय संस्कृति और साधना, दो भाग, पटना, 1964-65
42. गैरोला वाचस्पति, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति संवर्त्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969
43. गौड, रामदास, हिन्दुत्व, ज्ञानमण्डल मन्त्रालय, काशी वि0सं0 1995
44. पं0 भगवदत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, परिवर्द्धित सं0 सत्यश्रवा पंजाबी बाग, प्रणव प्रकाशन, नई दिल्ली, नवम्बर 1978
45. पाण्डेय, ओमप्रकाश, वैदिक साहित्य का इतिहास, ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर,1984
46. पाण्डेय, ओम प्रकाश, वैदिक खिलसूक्तमीमांसा, नाग पब्लिकेशर्स, दिल्ली, 2004
47. मीमांसक युधिष्ठिर, ऋग्वेद की ऋक्संख्या, आर्य साहित्यमण्डल, अजमेर, वि0सं0 2006
48. वर्मा, वीरेन्द्र कुमार, ऋग्वेद भाष्यभूमिका, हिन्दी व्याख्या, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1969
49. शर्मा, रघुनन्दन प्रसाद, वैदिक सम्पत्ति, बम्बई, सं0 2008
50. शशिप्रभा, कुमार, वैदिक विमर्श, जे0पी0 पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1996
51. स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती, वेद व विज्ञान, हिन्दी उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1992
52. **Maxmuller, The Vedas, Ghosh, U.N., Indological Book House, Varanasi, 1969**
53. **Sukthankar, V.S., Ghate's Lectures on Rigveda, Oriental Book Agency, Poona, 4th ed. 1966**
54. **Varma, Shri Ram; Vedas, The Source of Ultimate Science, Nag Publishers, Jawaharnagar, Delhi, 2005**

परिचयी चित्रवीथिका

अक्षयानन्तैश्वर्यसंविभूषितानां सम्पूज्यगुरुदेवानां येषामाशीर्वचनैर्निर्देशनै: सारस्वतमनुष्ठानमिदं

सम्पूर्णतां सम्प्राप्तम्

१- पद्मश्री प्रो० आद्याप्रसादमिश्रदेव:

२- पं० क्षेत्रेशचन्द्रचट्टोपाध्यायदेव:

३- डॉ० सूर्यकान्तदेव:

४- पं० गोपालचन्द्रमिश्रदेव:

५- कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंहदेव:

६- डॉ० फतहसिंहदेव:

७- पं० सुरजनदासस्वामिदेव:

८- म०म० श्रीश्रीगङ्गेश्वरानन्दस्वामिदेव:

९- डॉ० व्रजबिहारीचौबेदेव:

१०- डॉ० गिरिधारीशर्मदेव:

११- लाल राजेन्द्रबहादुरसिंहदेव:

सर्वेभ्य: श्रीमद्गुरुदेवेभ्यो नमो नम:

अमलधारीसिंहगौतम:

संस्कृतविद्या एवं सनातनी संस्कृति के मूर्धन्य मनीषी - ऋषिवर
आचार्यप्रवर पद्मश्री प्रो० आद्याप्रसाद मिश्रजी
पूर्वकुलपति : प्रयाग विश्वविद्यालय

जन्म : २१ मार्च, १९२१, द्रोणीपुर जौनपुर जनपद

विद्याधनसमृद्ध उत्तम द्विजकुल

शिक्षा दीक्षा : एम०ए०, डी०फिल् शांकर वेदान्त १९५० प्रयाग विद्यालय

शास्त्री गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज बनारस

अध्यापन कार्य : ३४ वर्ष, सागर तथा प्रयाग विश्वविद्यालय

आचार्य एवम् अध्यक्ष, संस्कृत एवं पालि विभाग,

अधिष्ठाता कलासङ्काय, कुलपति, प्रयाग विश्वविद्यालय

सारस्वत साधना : संस्कृत तथा संस्कृतिरक्षण के प्रति समर्पित जीवन

विशिष्ट ग्रन्थ सम्पत्ति

The Development and Place of Bhakti in Samkara Vedanta

सांख्यतत्त्व- कौमुदीप्रभा, सांख्यदर्शन की ऐतिहासिक परम्परा

सांख्यदर्शन पर्यालोचन, विष्णुसहस्रनामपर्यालोचन

भारतीय मनीषा, आद्याचतुःशती, लोक प्रचलित शब्दों के संस्कृत पर्याय: संस्कृत शब्दकोश, प्रभूत निबन्ध अभिनन्दन ग्रन्थों में

विशिष्ट सम्मान

विशिष्ट विद्वान् सम्मान - १९८५, उ०प्र० संस्कृत अकादमी

महामहिम राष्ट्रपति सम्मान - १९९४, उपाध्यक्ष अ० भा० प्रा० वि० अधिवेशन १९९६

महर्षिवाल्मीकि सम्मान - २००२, उ० प्र० संस्कृत संस्थान, पद्मश्री २००७

महर्षि बादरायण व्यास सम्मान २००८ दिल्ली संस्कृत अकादमी

विश्वभारती सम्मान २००९ उ० प्र० संस्कृत संस्थान

वेद तथा अवेस्ता के मूर्धन्य मनीषी
पं० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय जी
(१८९६-१९७४)
पूर्व अध्यक्ष : संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

२७ अक्टूबर १८९६ उत्तरी २४ परगना, बंगाल

सुप्रख्यात लेखक बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय जी से सम्बद्ध अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मण कुल में जन्म

शिक्षा-दीक्षा - कलकत्ता विश्वविद्यालय, क्वीन्स कालेज वाराणसी, प्रयाग विश्वविद्यालय

डॉ० गङ्गानाथ झा के श्रेष्ठ शिष्य

बाबू सुभाष चन्द्र बोस जी के अनन्य घनिष्ठ मित्र

अध्यापन कार्य : संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

निदेशक - शोधकार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयय

नाट्यकला मर्मज्ञ

अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन से सम्बद्ध - १९२४ से

महामहिम राष्ट्रपति सम्मान- १९६६

सम्पादन एवं प्रकाशन : सरस्वती भवन ग्रन्थमाला, सरस्वती सुषमा

वेद तथा अवेस्त विषयक

Vedic Religion : Studies in Vedic and Indo-Iranian Religion and Literature, 2 Vols.

विशिष्ट शिष्य -

पं० भगीरथप्रसाद त्रिपाठी वागीशशास्त्री

पं० विद्या निवास मिश्र, डॉ० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय,

डॉ० गोवर्द्धन राय, डॉ० कमलेश दत्त त्रिपाठी

वेदविद्या के मूर्धन्य मनीषी
डॉ० सूर्यकान्त जी
पूर्व अध्यक्ष : संस्कृत एवं पालि विभाग तथा
Principal College of Indology, BHU

1901–82

का०हि०वि, अलीगढ़ तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयों के संस्कृत विभाग के संवर्द्धक

डी० फिल० आक्सफोर्ड, डी० लिट्, पंजाब विश्वविद्यालय, विद्याभास्कर, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अत्यन्त तेजस्वी व्यक्तित्व

अंग्रेजी माध्यम से वेदाध्यापन

प्रभूत ग्रन्थ – सम्पत्ति एवम् अनुवाद

अथर्ववेद प्रातिशाख्य, ऋक्तन्त्र, काठकसंकलन कुमारसम्भव, वैदिक संस्कृतकोश, अथर्ववेद तथा गोपथब्राह्मण, हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रशस्त शिष्य परम्परा

डॉ० रसिक बिहारी जोशी, डॉ० सत्यव्रत शास्त्री, डॉ० रामगोपाल, डॉ० विश्वनाथ भट्टाचार्य, डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा, डॉ० सत्यप्रकाश सिंह, डॉ० रामायण प्रसाद दुबे, डॉ० रामाधार पाठक, डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय, डॉ० गङ्गासागरराय, डॉ० ब्रजविहारी चौबे, डॉ० मानसिंह, डॉ०कमलाप्रसाद सिंह, डॉ० अमलधारी सिंह

महान् वेदोद्धारक तपोमूर्ति वेदमूर्ति श्रद्धेयगुरुदेव
पं० गोपालचन्द्रमिश्र जी
(१९२४-८०)
पूर्व आचार्य एवम् अध्यक्ष, वेदविभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

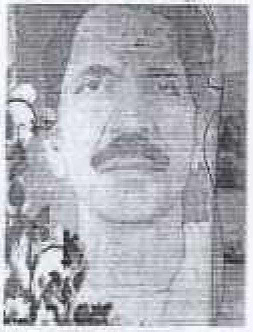

जन्म १९२४ परम्परागत विद्याधन अभिमण्डित सनातनी द्विजकुल

पितृश्री काशी की महनीय विभूति, वेदशास्त्रों के अप्रतिम आचार्य पं० भगवत्प्रसाद मिश्र जी, अध्यक्ष वेद विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

शिक्षा-दीक्षा : एम० ए० संस्कृत, आचार्य वेद, धर्मशास्त्र, मीमांसा, दर्शन

पी-एच०डी० (दर्शनशास्त्र)

अत्यन्त तेजस्वी प्रेरक व्यक्तित्व, विद्यादानी मानक गुरुदेव, वैदिक यज्ञीय प्रक्रिया के मर्मज्ञ आचार्य

वेदरक्षा - संस्कृतिरक्षा के प्रति समर्पित

अध्यापन कार्य - वेदविभाग, का०हि०वि० १९५३ से

आचार्य एवम् अध्यक्ष - वेद विभाग सं०सं० विश्वविद्यालय १९६७ से

सारस्वत साधना : प्रभूत ग्रन्थ - मौलिक एवं भाष्य टीका

पृथिवीसूक्त भाष्य, याज्ञिक न्यायमाला, सम्प्रदाय प्रबोधिनी, सूक्त रत्न संग्रह, नारदीयशिक्षा, पूजाभाव सुधा, पितृतत्त्व सुधा। म० म० गङ्गेश्वरानन्द सम्पादित भगवान् वेदः में सम्पादक शुक्ल यजुर्वेद राजस्थान अलवर पैलेस पुस्तकालय से प्राप्त आश्वलायन तथा शाङ्खायन की पाण्डुलिपियों की मौलिकता की पुष्टि प्रकाशनार्थ आशीर्वचन एवं निर्देशन, प्रधान संयोजक अखिलभारतीय प्राच्य विद्या अधिवेशन, वाराणसी १९६८ में

वेद - पुरोधा

संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी साहित्य के उद्भट आचार्य

डॉ० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह जी

पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, अधिष्ठाता कला संकाय, जोधपुर विश्वविद्यालय

(१९१०-९७)

शरत्पूर्णिमा १८ अक्टूबर १९१० पैसिया गाँव सीतापुर (उ०प्र०) कसमंडा राजवंश

शिक्षा : स्नातक लखनऊ विश्वविद्यालय, एम० ए० तथा डी० लिट् नागपुर विश्वविद्यालय

सेवा विवरण : युवराजदत्त कालेज लखीमपुर, बड़ौदा, जोधपुर, मगध विश्वविद्यालय

अत्यन्त तेजस्वी व्यक्तित्व, कारयित्री-भावयित्री प्रतिभा सम्पन्न ऋषिकल्प, सन्त हनुमद्भक्त

कवि-नाटककार - समीक्षक - अनुवादक

प्रभूतसाहित्य सम्पदा - समृद्ध

हिन्दी महाकाव्य : रामदूत, ऋषभदेव: संकटमोचन

श्रीमद्भागवत टीका ५ खण्ड

अन्वय - शब्दार्थ टिप्पणी सहित वेदों का काव्यानुवाद शुक्ल यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद टिप्पणी

भुवनवाणी ट्रस्ट मौसमबाग, सीतापुर रोड, लखनऊ से प्रकाशित १९९१

अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी समिति स्थापना, वाशिंगटन, अमेरिका, १८ अक्टूबर १९८०

भारतभारती सम्मान, उ० प्र० हिन्दी संस्थान

महान् वेदोद्धारक सिन्धुघाटी लिपिविशेषज्ञ ऋषिकल्प मूर्धन्य मनीषी

डॉ० फतह सिंह जी

पूर्व निदेशक : राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर

जन्म : ११ जुलाई १९१३, बीसलपुर, पीलीभीत, उ० प्र०

शिक्षा: काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एम०ए० संस्कृत में प्रथम डी०लिट् उपाधिधारक १९४६

अध्यापनकार्य : युवराजदत्तमहाविद्यालय लखीमपुर उ० प्र० राज० प्रिंसिपल व्यावर महाविद्यालय तथा कोटा, राजस्थान में संस्कृत शिक्षा के प्रधान उन्नायक, राजस्थान संस्कृत परिषद् के संरक्षक,

सारस्वत साधना :

पुरातन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रधान सम्पादकत्व रूप में प्रभूत ग्रन्थों का प्रकाशन

Vedic Etymology, वैदिक धर्म, वैदिक दर्शन, वेदविद्या का पुनरुद्धार, मानवता को वेदों की देन, भावी वेदभाष्य के सन्दर्भ सूत्र, ढाई अक्षर वेद के, कामायनी सौन्दर्य

आगमरहस्य २ भाग , सांख्यायनतन्त्र, सिंह सिद्धान्त सिन्धु

मन्त्रभागवतम्, पथ्या स्वस्ति, शकुन प्रदीप,नन्दोपाख्यान, कविकौस्तुभ, मधुमालती सचित्र कथा, स्वाहापत्रिका, संस्कृत एवं प्राकृत पाण्डुलिपियों का कैटलॉग, सिन्धुघाटी की लिपि में ब्राह्मण और उपनिषदों के प्रतीक। अलवर पैलेस लाइब्रेरी में सुरक्षित आश्वलायन तथा शाङ्खायन की पाण्डुलिपियों की मौलिकता की पुष्टि तथा संहिताओं के प्रकाशन की योजना प्रकल्पित

वैदिक वाङ्मय में महत्तम योगदान

राजस्थान में संस्कृत-शिक्षा के प्रमुख उन्नायक एवं संवर्द्धकमूर्धन्य आचार्य

वेदविद्या मार्तण्ड पं० सुरजनदासस्वामीजी महाराज

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय

(१९०७-१९९०)

शिक्षा : एम०ए० (संस्कृत), आचार्य (वेदान्तः व्याकरण : सांख्ययोगः साहित्य)

अध्यापन कार्य : जोधपुर विश्वविद्यालय, संस्कृत विभाग स्नातकोत्तर कक्षा के संस्थापक १९६६

विभाग समृद्धि : तपश्चर्या का फल

संकल्प : संस्कृत उन्नयन प्रचार प्रसार : शास्त्र रक्षणार्थ ग्रन्थ अध्ययन अनिवार्य

संस्कृत शिक्षा के प्रति समर्पित जीवन, अति उदारमना, छात्रों के संरक्षक,

समीक्षा चक्रवर्ती पं० मधुसूदन ओझा की वेद विज्ञान परम्परा के संवर्द्धक

सारस्वत साधना: प्रभूतग्रन्थ सम्पत्ति, मौलिक-सम्पादन - अनुवाद-निबन्ध प्रमुख रूप ग्रन्थ

वैदिकोपाख्यान, पदनिरुक्त, पथ्यास्वस्तिः, देवासुरख्याति, आधिदैविकाध्याय पुराणोत्पत्ति प्रसङ्ग, आशौचपञ्जिका, यज्ञोपवीत विज्ञान सन्ध्योपासना रहस्य, मन्वन्तरनिर्धार, सत्यकृष्णरहस्य, निरूढपशुबन्ध, रससिद्धान्तरहस्य अभिनवरसविवेचनम् शुक्लयजुर्वेदभाष्य , ऋषि छन्द व देवतास्वरूप विवेचन, छन्दसमीक्षा वैदिक धर्मविमर्श, वैज्ञानिकोपाख्यानं वैदिकोपाख्यानञ्च म० म० स्वामी गङ्गेश्वरानन्द सम्पादित भगवान् वेदः में सम्पादक

वेदों के विलक्षण अद्वितीय अप्रतिम पण्डित

महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्द जी महाराज (प्रज्ञाचक्षु)

१८८१ से १९९२ = १११ वर्ष का दिव्य जीवन,उदासीन सम्प्रदाय

जन्म पंजाब, कार्यक्षेत्र गुजरात, काशी, पुनः विश्वभ्रमण

प्रभूत ग्रन्थ सम्पत्ति = दश सहस्र पृष्ठों से अधिक

प्रमुख ग्रन्थ : अनुवाद सम्पूर्ण सामवेद, शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिन

अत्यन्त विशिष्ट महनीयकार्य = भगवान् वेदः कृष्णयजुर्वेद को छोड़कर ४ संहिताओं का एक जिल्द में प्रकाशन काशी १९७०, भौतिक भार २१ किलो

ग्रन्थ महिमा - महामहिम राज्यपाल श्रीमन्नारायण का हृदयोद्गार

The future generation would refuse to believe that such an owe inspiring edition of all the four vedas combined in a single volume is prepared by St. Swami Gangeshwaranandji who is प्रज्ञाचक्षुie bereft of physical eyes.

वैदिक संस्कृति के प्रचारार्थ विश्व भ्रमण, भगवान् वेदग्रन्थ का दान तथा पीठस्थापना विभिन्न दृष्टियों के वेदव्याख्या, श्रीराम तथा श्रीकृष्ण परक

वेद शब्द की निष्पत्ति = १- विद् ज्ञाने वेत्ति १०६४, विद्सत्तायां विद्यते ११७१

विद् विचारणे विन्ते १४५१, विद्लृलाभे विन्दति १४३३

विद्चेतनाख्याननिवासेषु वेदयते १७०९

राजस्थान अलवर पैलेस लाइब्रेरी से प्राप्त आश्वलायन तथा शाङ्खायन की पाण्डुलिपियों की प्रामाणिकता की पुष्टि १९७०

वेदो के अतिविशिष्ट आचार्य

प्रो० ब्रज बिहारी चौबेजी

१ जुलाई, १९४०, बलिया जनपद

शिक्षा दीक्षा : काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, एम० ए० १९६१, पी-एच०डी० १९६४

निदेशक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर

प्रभूत ग्रन्थ सम्पत्ति - समृद्ध

Treatment of Nature in the Rgveda

New Vedic Selections : 2 parts

वैदिक स्वर, स्वरित

सम्पादन : बाधूल श्रौतसूत्र

संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास : प्रथम वेदखण्ड, उ०प्र० संस्कृत संस्थान

आश्वलायनशाखीया ऋग्वेदसंहिता - दो भाग .

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र -२००९

वेदविद्या के प्रबल रक्षक प्रचारक ऋषिकल्प

डॉ० गिरिधारी शर्मा जी

सदस्य परियोजना समिति महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान

पूर्व हार्ट स्पेशलिस्ट सर्जन बाम्बे हास्पिटल

जन्म : २० मई १९३९ मण्डावा, झुंझुनु (राज०) पारम्परिक पाण्डित्यमण्डित द्विजकुल

पितृश्री पं० मुरलीधरशर्मा प्रस्थानत्रयी निष्णात

पितामहश्री पं० राधाकृष्णशर्मा: वेद-वेदान्त-व्याकरण एवम् आयुर्वेद के प्रतिष्ठित पण्डित

शिक्षा-दीक्षा : परम्परागत गुरुकुल पद्धति

शुक्लयजु शतपथ - बृहदारण्यक - कृष्णयजु० तैत्तिरीय तथा मैत्रायणी,

अग्निहोत्र विधि-विधान की पूर्ण शिक्षा

वाणी वैभव विभूषित अत्यन्त तेजस्वी अनुपम, व्यक्तित्व,

वेदमनीषी डॉ० फतह सिंह जी के श्रेष्ठ शिष्यकल्प, वेदमन्त्रों का सस्वरपाठ, वेद विद्या के प्रचारार्थ पूर्णतः समर्पित, जयपुर में वेदपारायणपरम्परा को पुनर्जीवित करना।

विशिष्ट व्याख्यान : विश्वविद्यालयों शिक्षणसंस्थानों तथा वेद सम्मेलनों में तथा निबन्ध : वेदाध्ययन संरक्षण की त्रिमूर्ति

विशिष्टसम्मान : पं० मधुसूदन ओझा वेदसम्मान २००९ राजस्थान संस्कृत अकादमी

ऋग्वेद की आश्वलायन तथा शाङ्खायन संहिताओं के प्रकाशन में महनीय योगदान

बैसवारा क्षेत्र के महान् शिक्षा-उन्नायक

अक्षय अनन्तश्री अभिमण्डित लाल राजेन्द्र बहादुर सिंह जी

कोट आलमपुर

पूर्वप्रबन्धक बैसवारा पी०जी० कालेज लालगंज, रायबरेली

जन्म : १० सितम्बर १९२१ : सुप्रख्यात सेमरपहा स्टेट

शिक्षा दीक्षा : उदय प्रताप कालेज वाराणसी, तालुकदारकाल्विन कालेज तथा

लखनऊ विश्वविद्यालय

अंग्रेजी साहित्य, अर्थशास्त्र, प्राचीन इतिहास,Anthropology

सुसंस्कारित शिष्ट मर्यादित जीवन, शिवोपासक मधुर प्रिय वाणी, शारीरिक सौष्ठवधनी

तेजस्वी व्यक्तित्व सत्संकल्पवान् दृढ़ निश्चयी कर्मपुरुषार्थी

शास्त्रीय चर्चा में विशेष अभिरुचि, मानकरूप स्वगुरुजनों की चर्चा

माध्यमिक से उच्च शिक्षा तक ४ संस्थाओं के संवर्द्धक, शिक्षा उन्नयन के प्रति समर्पित

महादानी : महाविद्यालय को १८ एकड़ तथा क्रीड़ा प्राङ्गण हेतु विशाल भूमिखण्ड

क्रीड़ा प्रेमी : प्रतिवर्ष प्रान्तीय फुटबाल टूर्नामेन्ट का आयोजन

अखिलभारतीय दर्शन परिषद् वेद सम्मेलन विश्वसंस्कृत प्रतिष्ठानम् अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी समिति

आदि साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन

जन जन सर्वजन - प्रिय, सम्मानित समुज्ज्वल सुकीर्ति विभूषित

शोध प्रकाशन विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
बी-4, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110016